शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
महाराष्ट्र

दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र

सत्र–5 पेपर 8 (DSE- E7)

साहित्यशास्त्र

सत्र–6 पेपर 13 (DSE- E132)

साहित्यशास्त्र और हिंदी आलोचना

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के नुसार सुधारित पाठ्यक्रम
(शैक्षिक वर्ष 2024-25 से)

बी. ए. भाग–3 हिंदी

© **कुलसचिव,** शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
प्रथम संस्करण : 2021
सुधारित संस्करण : 2024
बी. ए. भाग 3 (हिंदी : बीजपत्र–8 और 13)
सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ :

■

प्रकाशक :
डॉ. व्ही. एन. शिंदे
कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

मुद्रक :
श्री. बी. पी. पाटील
अधीक्षक,
शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

ISBN- 978-93-92887-25-3

★ दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी–
शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर–416 004. (भारत)

दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

■ सलाहकार समिति ■

प्रो. (डॉ.) डी. टी. शिर्के
कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) पी. एस. पाटील
प्र-कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) प्रकाश पवार
राज्यशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एस. विद्याशंकर
कुलगुरू, केएसओयू
मुक्तगंगोत्री, म्हैसूर, कर्नाटक-५७० ००६

डॉ. राजेंद्र कांकरिया
जी-२/१२१, इंदिरा पार्क,
चिंचवडगांव, पुणे-४११ ०३३

प्रो. (डॉ.) सीमा येवले
गीत-गोविंद, फ्लॅट नं. २, ११३९ साईक्स एक्स्टेंशन,
कोल्हापुर-४१६००१

डॉ. संजय रत्नपारखी
डी-१६, शिक्षक वसाहत, विद्यानगरी, मुंबई विश्वविद्यालय,
सांताक्रुझ (पु.) मुंबई-४०० ०९८

प्रो. (डॉ.) कविता ओझा
संगणकशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) चेतन आवटी
तंत्रज्ञान अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एम. एस. देशमुख
अधिष्ठाता, मानव्य विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एस. एस. महाजन
अधिष्ठाता, वाणिज्य व व्यवस्थापन विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) श्रीमती एस. एच. ठकार
प्रभारी अधिष्ठाता, विज्ञान व तंत्रज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्या (डॉ.) श्रीमती एम. व्ही. गुळवणी
प्रभारी अधिष्ठाता, आंतर-विद्याशाखीय अभ्यास विद्याशाखा
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. व्ही. एन. शिंदे
कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. ए. एन. जाधव
संचालक, परीक्षा व मूल्यमापन मंडळ,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्रीमती सुहासिनी सरदार पाटील
वित्त व लेखा अधिकारी,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) डी. के. मोरे (सदस्य सचिव)
संचालक, दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

■ हिंदी अध्ययन मंडल ■

अध्यक्ष

प्रो. डॉ. सातापा शामराव सावंत
विलिंग्डन कॉलेज, सांगली

सदस्य

- **प्रो. डॉ. नितीन चंद्रकांत धवडे**
  मुधोजी कॉलेज, फलटण, जि. सातारा
- **डॉ. मनीषा बाळासाहेब जाधव**
  आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, जि. सातारा.
- **प्रो. डॉ. श्रीमती वर्षाराणी निवृत्ती सहदेव**
  श्री विजयसिंह यादव कॉलेज, पेठ वडगाव,
  जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. हणमंत महादेव सोहनी**
  सदाशिवराव मंडलीक महाविद्यालय, मुरगुड, ता. कागल, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. अशोक विठोबा बाचुळकर**
  आजरा महाविद्यालय, आजरा, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. भास्कर उमराव भवर**
  कर्मवीर हिरे आर्टस, सायन्स, कॉमर्स ॲण्ड एज्युकेशन कॉलेज, गारगोटी, ता. भुदरगड, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. संग्राम यशवंत शिंदे**
  आमदार शशिकांत शिंदे महाविद्यालय, मेढा,
  ता. जावळी, जि. सातारा
- **प्रो. डॉ. अनिल मारुती साळुंखे**
  यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, करमाळा,
  जि. सोलापुर-४१३२०३
- **डॉ. गजानन सुखदेव चव्हाण**
  श्रीमती जी.के.जी. कन्या महाविद्यालय,
  जयसिंगपुर, ता. शिरोळ, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत**
  प्रा. डॉ. एन. डी. पाटील महाविद्यालय, मलकापुर,
  जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. उत्तम लक्ष्मण थोरात**
  आदर्श कॉलेज, विटा, जि. सांगली
- **डॉ. परशराम रामजी रगडे**
  शंकरराव जगताप आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज,
  वाघोली, ता. कोरेगाव, जि. सातारा

अपनी बात

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर की दूरशिक्षा योजना के अंतर्गत बी. ए. भाग-3 हिंदी विषय के छात्रों के लिए निर्मित अध्ययन सामग्री नियमित रुप से प्रवेश न ले पाने वाले छात्रों की असुविधा को दूर करने के संकल्प का सुफल है। इसमें एक ओर विश्वविद्यालय की सामाजिक संवेदनशीलता दिखाई देती है, तो दूसरी ओर शिक्षा से वंचित छात्रों को अध्ययन सामग्री सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्धता। बी. ए. 1, 2 तक की अध्ययन सामग्री से दूरशिक्षा योजना के छात्र जिस तरह लाभान्वित हुए हैं, उसी तरह बी. ए. 3 के छात्र भी प्रस्तुत स्वयं-अध्ययन सामग्री से लाभान्वित होंगे, यह विश्वास है।

दूरशिक्षा के छात्रों का महाविद्यालयों तथा अध्यापकों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से कोई संबंध नहीं आता। उनकी इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्ययन सामग्री को सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र का स्वरुप तथा अंक-वितरण को ध्यान में रखकर अध्ययन-सामग्री को आवश्यकतानुसार विस्तृत तथा सूक्ष्म रुप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हमें आशा ही नहीं, बल्कि विश्वास भी हैं कि प्रस्तुत अध्ययन सामग्री बी. ए. 3 के छात्रों के लिए उपादेय सिद्ध होगी।

प्रस्तुत सामग्री सामूहिक प्रयास का फल है। इकाई लेखकों ने अपनी-अपनी इकाईयों का लेखन समय पर पूरा कर इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शिवाजी विश्वविद्यालय के मा. कुलगुरू, कुलसचिव, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय विकास मंडल के संचालक, दूरशिक्षा विभाग के संचालक एवं उनके सभी सहयोगी सदस्यों ने समय-समय पर आवश्यक सहयोग दिया। अतः इन सभी के प्रति आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

धन्यवाद।

– संपादक

	सत्र 5	सत्र 6
★ **डॉ. नितीन विठ्ठल पाटिल** विठ्ठलराव पाटील महाविद्यालय, कळे, ता. पन्हाळा, जि. कोल्हापुर	**1**	**-**
★ **प्रा. डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत** चंद्राबाई शांताप्पा शेंडूरे कॉलेज, हुपरी ★ **प्रा. डॉ. मिलिंद नामदेव साळवे** विश्वासराव नाईक कला, वाणिज्य आणि बाबा नाईक विज्ञान महाविद्यालय, शिराळा	**2** **2**	**-** **-**
★ **श्री. मारुफ समशेर मुजावर** कला व वाणिज्य महाविद्यालय, पुसेगांव, ता. खटाव	**3**	**-**
★ **डॉ. संदिप किर्दत** छत्रपती शिवाजी कॉलेज, सातारा, जि. सातारा	**4**	**-**
★ **डॉ. आरिफ शौकत महात** विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर	**-**	**1**
★ **डॉ. सुवर्णा नरसू कांबळे** आर्टस अॅण्ड कॉमर्स कॉलेज, शुक्रवारपेठ, सातारा, जि. सातारा	**-**	**2**
★ **श्रीमती मानसी शिरगावकर** कन्या महाविद्यालय, शिवाजी रोड, शिवाजीनगर, मिरज, जि. सांगली	**-**	**3**
★ **डॉ. गोरखनाथ किर्दत** यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, उरुण इस्लामपुर, जि. सांगली	**-**	**4**

■ **सम्पादक** ■

डॉ. गजानन सुखदेव चव्हाण
श्रीमती गंगाबाई खिवराज घोडावत कन्या महाविद्यालय, जयसिंगपुर, जि. कोल्हापुर

प्रो. डॉ. सुनील बापू बनसोडे
तुळजाराम चतुरचंद कॉलेज, बारामती-पुणे

अनुक्रमणिका

इकाई	पाठ्यविषय	पृष्ठ
	सत्र–5 पेपर 8 : साहित्यशास्त्र	
1.	काव्य/साहित्य : स्वरूप, तत्त्व, भारतीय प्रयोजन	1
2.	शब्दशक्ति, काव्य–गुण, काव्य–दोष	25
3.	रस : स्वरूप, रस के अंग, रस के भेद	40
4.	अलंकार : शब्दालंकार, अर्थालंकार	69
	सत्र–6 पेपर 13 : साहित्यशास्त्र और हिंदी आलोचना	
1.	महाकाव्य, प्रगीत और गजल	87
2.	उपन्यास, नाटक और व्यंग्य	117
3.	संस्मरण, साक्षात्कार और रिपोर्ताज के स्वरूप एवं विशेषताएँ	137
4.	आलोचना : स्वरूप, आलोचक के गुण और आलोचना के प्रकार	155

हर इकाई की शुरूआत उद्देश्य से होगी, जिससे दिशा और आगे के विषय सूचित होंगे-

(१) इकाई में क्या दिया गया है।

(२) आपसे क्या अपेक्षित है।

(३) विशेष इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको किन बातों से अवगत होना अपेक्षित है।

स्वयं-अध्ययन के लिए कुछ प्रश्न दिए गए हैं, जिनके अपेक्षित उत्तरों को भी दर्ज किया है। इससे इकाई का अध्ययन सही दिशा से होगा। आपके उत्तर लिखने के पश्चात् ही स्वयं-अध्ययन के अंतर्गत दिए हुए उत्तरों को देखें। आपके द्वारा लिखे गए उत्तर (स्वाध्याय) मूल्यांकन के लिए हमारे पास भेजने की आवश्यकता नहीं है। आपका अध्ययन सही दिशा से हो, इसलिए यह अध्ययन सामग्री (Study Tool) उपयुक्त सिद्ध होगी।

इकाई –1

काव्य/साहित्य : स्वरूप, तत्त्व, भारतीय प्रयोजन

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय – विवेचन

1.3.1 काव्य / साहित्य : स्वरूप

1.3.1.1 संस्कृत आचार्यों के काव्य–लक्षण

1.3.1.2 प्राचीन हिंदी आचार्यों के काव्य–लक्षण

1.3.1.3 आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य–क्षण

1.3.1.4 पाश्चात्य विद्वानों के काव्य–लक्षण

1.3.1.5 निष्कर्ष

1.3.2 काव्य / साहित्य : तत्त्व

1.3.2.1 भाव तत्त्व

1.3.2.2 कल्पना तत्त्व

1.3.2.3 बुद्धि तत्त्व

1.3.2.4 शैली तत्त्व

1.3.2.5 निष्कर्ष

1.3.3 काव्य : प्रयोजन

1.3.3.1 संस्कृत आचार्य : काव्य प्रयोजन

1.3.3.2 प्राचीन हिंदी आचार्य : काव्य प्रयोजन

1.3.3.3 आधुनिक हिंदी विद्वान : काव्य प्रयोजन

1.3.3.4 निष्कर्ष

1.4 स्वयं - अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयं - अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

1. काव्य (साहित्य) शब्द के अर्थ और स्वरूप से परिचित होंगे।
2. भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा बताए गए काव्य (साहित्य) के लक्षणों को पढकर साहित्य का स्वरूप समझने में सक्षम होंगे
3. काव्य (साहित्य) के विभिन्न तत्त्वों से परिचित होंगे।
4. काव्य प्रयोजनों से परिचित होंगे।
5. काव्य (साहित्य) के महत्त्व को समझ सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना :

साहित्य के सम्यक अनुशीलन का कार्य साहित्यशास्त्र के अंतर्गत होता है। जिसमें साहित्य की विभिन्न विधाओं का शास्त्रीय दृष्टि से सांगोपांग विवेचन किया जाता है। 'शास्त्र' शब्द संस्कृत 'शास्' धातु से बना हुआ है, जिसका अर्थ है अनुशासन। साहित्यशास्त्र हमें साहित्य के विषय में अनुशासित करता है। साथ ही साहित्य निर्माण के नियमों की जानकारी भी प्रदान करता है। साहित्यशास्त्र के लिए 'काव्यशास्त्र', काव्यालोचन और काव्यमीमांसा जैसे शब्द भी प्रचलित है। प्राचीन काल में तो इसके लिए 'अलंकार शास्त्र' का भी प्रयोग होता था। कालांतर में इस शब्द की व्याप्ति संकुचित होती गयी और इसी स्थान पर साहित्यशास्त्र नाम रूढ होता चला गया।

विश्व की लगभग सभी भाषाओं के साहित्य में काव्यशास्त्र पर विचार हुआ है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसके भारतीय तथा पाश्चात्य दो भेद किए जाते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर भरतमुनि को काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य माना जाता है। उनका 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ

भारतीय काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रंथ माना जाता है। अत: इसमें काव्यशास्त्र के विभिन्न अंगों का विवेचन-विश्लेषण मिलता है।

मनुष्य को उचित दिशा निर्देशन करने का काम काव्य के माध्यम से ही होता है। काव्य समाज की विभिन्न उलझनों को वाणी प्रदान करने का काम करता है। लेकिन किसी भी रचना को जन्म देते समय रचनाकार को साहित्यशास्त्र के नियमों का पालन करना अत्यंत आवश्यक होता है। आज हमारी भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा अत्यंत समृद्ध और विकसित नजर आती है। इस परंपरा को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विभिन्न कालों में विभाजित किया गया है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा भी बहुत ही पुरानी हैं। आरंभ में उसका विकास यूनान में हुआ और फिर रोम में । प्लेटो, अरस्तू, लौंजाइनस, होरेस तथा क्विंटीलियन इस प्राचीन परंपरा के निर्माता रहे हैं।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में काव्य के लिए 'वाङ्मय' शब्द का प्रयोग मिलता है। काव्य शब्द 'कवि' से प्रचलित है। साथ ही वह अंग्रेजी शब्द 'Poetry' का अनुवाद है। साहित्य अंग्रेजी शब्द 'Literature' का पर्यायवाची माना जाता है। जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द Letter से हुई है। साहित्य शब्द का प्रयोग सातवीं-आठवीं शताब्दी से मिलता है। इससे पूर्व साहित्य शब्द के लिए 'काव्य' शब्द का प्रयोग होता था। आज 'काव्य' शब्द केवल पद्य रचनाओं के लिए ही प्रयुक्त होने लगा है।

काव्य के सृजन में भाव तत्त्व, कल्पना तत्त्व, बुद्धि तत्त्व और शैली तत्त्व का योगदान महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत के आचार्यों से लेकर आज तक के आचार्यों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार काव्य के विभिन्न रूपों का उल्लेख किया है। काव्य निर्माण के पीछे कवि का कोई न कोई उद्देश्य निहित रहता ही है। बिना उद्देश्य के किसी रचना का का सृजन होता ही नहीं है। केवल समय के अनुसार उद्देश्य बदलते रहते हैं।

पाठ्यक्रम में साहित्य का स्वरूप, तत्त्व और प्रयोजनों का समावेश किया गया है। इसके अंतर्गत हमें विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं के द्वारा काव्य के स्वरूप को समझ लेना है। साथ ही काव्य के विभिन्न तत्त्वों की जानकारी लेते हुए विभिन्न विद्वानों के काव्य प्रयोजन संबंधी विचारों का अध्ययन करना है।

1.3 विषय – विवेचन :

अब हम काव्य के स्वरूप, काव्य के तत्त्व और काव्य के प्रयोजन का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

1.3.1 काव्य / साहित्य का स्वरूप :

साहित्यशास्त्र के अंतर्गत काव्य और साहित्य एक ही अर्थ में प्रयुक्त किए जाते हैं। प्राचीन काल में केवल काव्य रचनाओं का ही सृजन किया जाता था। उस समय गद्य का विकास नहीं हुआ था। गद्य का विकास आधुनिक काल की देन मानी जा सकती है। इसके बाद विभिन्न विधाओं का जन्म होने लगा। अब सभी विधाओं के लिए 'साहित्य' शब्द प्रयुक्त होने लगा है। 'काव्य' शब्द केवल पद्य रचनाओं तक सीमित रह गया। आज 'साहित्य' शब्द बहुप्रचलित और व्यापक बन गया है। लेकिन कई लोग वर्तमान समय में भी 'साहित्य' शब्द की जगह 'काव्य' शब्द का इस्तेमाल करते हुए नजर आते हैं। यहाँ हम 'काव्य' शब्द का

अर्थ साहित्य की सभी विधाओं के प्रतिनिधि के रूप में ले रहे हैं। इस प्रकार जो 'साहित्य' का लक्षण है, वही 'काव्य' का लक्षण भी माना जाएगा।

मनुष्य को आनंदानुभूति प्रदान करने में काव्य का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है। कवि कल्पनाओं और भावनाओं का आधार लेकर मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को अलग-अलग रूप में अंकित करने की कोशिश करता है। काव्य जितना व्यापक है, उतना सूक्ष्म भी है। प्राचीन काल से ही काव्याचार्य काव्य के स्वरूप एवं लक्षण को निरूपित करने का प्रयास करते रहे हैं। 'काव्य लक्षण' या काव्य स्वरूप का आशय उस परिभाषा से है, जो सब ओर से सुसंगत तथा काव्य की विशिष्टता की परिचायक हो। इस संबंध में प्रत्येक काल में आचार्यों के चिंतन तथा दृष्टिकोण में पर्याप्त अंतर रहा है। आज मनुष्य का जीवन गतिमय बन चुका है। वह भौतिक सुख-सुविधाओं के पिछे अंधी दौड लगाता हुआ नजर आने लगा है। लेकिन ऐसे समय में भी साहित्य का महत्त्व थोडा-सा भी कम नहीं हुआ है। आज भी मनुष्य आंतरिक भावनाओं के प्रकटीकरण के लिए काव्य का ही सहारा लेता हुआ नजर आने लगा है।

काव्य मनुष्य जीवन की भावनाओं और संवेदनाओं को व्यक्त करने का काम करता है। काव्य मनुष्य को हर समय उचित दिशा-निर्देशन करता रहता है। वह इन्सान में जीवन जीने की एक ललक और उमंग पैदा करता है। बुद्धि तथा हृदय का समन्वय काव्य में होता है। साहित्य का आधार सत्यम्, शिवम और सुंदरम् होता है। संसार में एकता स्थापित करने का कार्य साहित्य के माध्यम से ही होता है। वह मानव के बाह्य और आंतरिक जगत् का वर्णन करता है। काव्य के स्वरूप को स्पष्ट रूप में समझने के लिए हमें भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के काव्य लक्षणों को देखना बहुत ही जरूरी है।

1.3.1.1 संस्कृत आचार्यों के काव्य-लक्षण :

- **आचार्य भरतमुनि**

भरतमुनि को संस्कृत काव्यशास्त्र का आदि आचार्य माना जाता है। उनका 'नाट्शास्त्र' ग्रंथ संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रंथ है। आचार्य भरतमुनि ने इस ग्रंथ में नाटक में काव्य की स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है -

> **''मृदु ललित पदाढ्यं गूढं शब्दार्थहीन,**
>
> **जनपद सुख बोध्यं युक्ति मन्नृत्ययोज्यम्**
>
> **बहुकृतरसमार्ग संधिसन्धानयुक्त**
>
> **स भवति शुभ काव्य नाटक प्रेक्षकाणाम्।।''**

अर्थात, नाटक को देखने वालों के लिए शुभ काव्य वह होता है, जिसकी रचना कोमल ललित पदों में की गई हो, जिसमें शब्द और अर्थ गूढ न हो, जिसको जनसाधारण सरलता से समझ सके, जो तर्कसंगत हो, जिससे नृत्य की योजना की जा सके, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के रस स्वीकार किए गए हो और जिसमें कथानक संधियों का पूरा निर्वाह किया गया हो।

इसमें नाटक के तत्त्वों का उल्लेख है, लेकिन भरतमुनि ने लालित्य, प्रसाद, रस आदि तत्त्वों को काव्य रूप में स्वीकार किया है।

- **अग्निपुराण :**

अग्निपुराण के निर्माण के समय के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि काव्य का लक्षण सर्वप्रथम अग्निपुराण में ही उपलब्ध होता है।

''**संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।**

काव्य स्फुरदलंकार गुणवद्दोषवर्जितम्।।''

अर्थात, अभीष्ट अर्थ को संक्षेप में प्रकट करनेवाली पदावली काव्य कहलाती है। जिसमें अलंकार प्रकट हो और जो दोषरहित और गुणयुक्त हो। इसमें काव्य को बाह्य सीमाओं में बाँधने का प्रयत्न किया गया है, पर उसका मुख्य प्रभावकारी स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता है।

- **आचार्य भामह :**

इनका काल छठी शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है। भामह ने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में काव्य-लक्षण देते हुए लिखा है -

''**शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्**''

अर्थात, शब्द और अर्थ का सहित भाव काव्य या साहित्य है। यह परिभाषा अत्यंत व्यापक है क्योंकि इसके क्षेत्र में काव्य के अतिरिक्त शास्त्र, इतिहास, वार्तालाप आदि सभी आ जाते हैं। इसमें अतिव्याप्ति दोष के साथ-साथ काव्य के बाह्य स्वरूप का ही स्पष्टीकरण है। यह परिभाषा उचित नहीं है।

- **आचार्य दण्डी :**

दण्डी का काल सातवीं शताब्दी माना जाता है। इन्होंने 'काव्यादर्श' ग्रंथ में लिखा है -

''**शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली**''

इन्होंने इष्ट का वर्णन करने के लिए अभिप्रेत अर्थ से युक्त शब्द को काव्य का शरीर कहा है। अग्निपुराण की परिभाषा की तरह इसमें भी इष्ट अर्थ अपेक्षित है, जो अस्पष्ट और व्याख्यासापेक्ष है। अत: यह परिभाषा भी अस्पष्ट है।

- **आचार्य रूद्रट :**

'काव्यालंकार' में रूद्रट ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार की है -

''**ननु शब्दार्थौ काव्यम्**''

अर्थात, रूद्रट ने शब्द और अर्थ के संबंध को ही काव्य माना है।

प्रस्तुत परिभाषा भामह की परिभाषा की तरह अतिव्याप्ति दोष से युक्त है। अत: यह लक्षण अस्पष्ट है।

- **आचार्य मम्मट :**

आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' ग्रंथ में कविता का लक्षण इस प्रकार दिया है –

''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि।''

यहाँ पर काव्य दोषहीन, गुणयुक्त और कभी-कभी अलंकार से रहित शब्दार्थ काव्य है, ऐसा कहा गया है। प्रस्तुत परिभाषा में प्रयुक्त 'अदोषौ' शब्द सार्थक नहीं है, क्योंकि सर्वथा निर्दोष रचना असंभव है। 'सगुण' शब्द भी काव्य की कोई महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रकट नहीं करता, क्योंकि गुण बडा व्यापक अर्थ देनेवाला शब्द है। अतः यह लक्षण अस्पष्ट है।

- **आचार्य विश्वनाथ :**

रस संप्रदाय के आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ 'साहित्यदर्पण' में काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है-

''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्''

अर्थात, रसात्मक वाक्य ही काव्य है।

विश्वनाथ जी रसवादी आचार्य होने के कारण रस को प्रमुखता दी है, किंतु रस की सत्ता स्वीकार कर लेने के बाद अन्य सभी तत्त्व गौण हो जाते हैं।

- **आचार्य पंडितराज जगन्नाथ :**

आचार्य पंडितराज जगन्नाथ संस्कृत काव्यशास्त्र परंपरा के अंतिम आचार्य है। उन्होंने अपना काव्य लक्षण इस प्रकार दिया है –

''रमणीयार्थ प्रतिपादक : शब्द : काव्यम्।''

अर्थात, रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्द 'काव्य' है।

शब्द में सदैव अर्थ की रमणीयता होना असंभव है। कुछ विद्वान शब्द की जगह वाक्य का प्रयोग करना चाहते हैं। अतः रमणीय अर्थ देनेवाला वाक्य, काव्य होना चाहिए। यह लक्षण पर्याप्त सरल और सुबोध है।

1.3.1.2 प्राचीन हिंदी आचार्यों के काव्य-लक्षण :

संस्कृत के आचार्यों की तरह प्राचीन हिंदी आचार्यों ने भी काव्य-लक्षण बतलाने का प्रयास किया है, लेकिन हिंदी के सभी प्राचीन आचार्यों पर किसी-न-किसी प्रकार संस्कृत आचार्यों का ही प्रभाव दिखाई देता है।

- **आचार्य केशवदास :**

केशवदास अलंकारवादी आचार्य थे। अलंकारविहीन काव्य को वे शोभारहित नारी के समान मानते थे। उन्होंने काव्य-लक्षण इस प्रकार दिया है –

''जद्यपि सुजाति सुलच्छनी; सुबरन सरस सवृत्त।

भूषण बिनु न विराजयी, कविता बनिता मित्त।।''

अर्थात, कविता और नारी बिना आभूषण (अलंकार) के सुशोभित नहीं हो पाती। चाहे उसमें कितने भी अच्छे गुण हो। केशव के विचार से रस, छंद और शब्द-सौंदर्य के साथ अलंकार का होना आवश्यक है। इनकी परिभाषा अव्याप्ति दोष से युक्त है।

◆ **आचार्य श्रीपति :**

आचार्य श्रीपति ने अपने 'काव्य-सरोज' में लिखा है -

''शब्द अर्थ बिन दोष गुण अलंकार रसवान।

ताको काव्य बखानिए श्रीपति परम सुजान।।''

अर्थात, दोष रहित, गुण सहित, अलंकारों से विभूषित सरल शब्दार्थ को काव्य कहते हैं।

प्रस्तु परिभाषा पर संस्कृत आचार्य मम्मट का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इस परिभाषा में प्रस्तुत 'बिन-दोष' शब्द निषेधात्मक है।

◆ **आचार्य चिंतामणि :**

अपने ग्रंथ 'कवि कुलकल्पतरू' में काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है -

''सगुन अलंकारन सहित, दोष रहित जो होई।

शब्द अर्थ ताको कवित्त कहत बिबुध सब कोई।।''

अर्थात, सगुण, सालंकार और दोष रहित शब्दार्थ को काव्य कहते हैं। यह मम्मट की परिभाषा का ही हिंदी रूपांतर है। केवल इस परिभाषा में अलंकार अनिवार्य माने गए हैं। काव्य सर्वथा दोष रहित नहीं हो सकता। अत: यह परिभाषा असंगत है।

◆ **आचार्य कुलपति मिश्र :**

कुलपति मिश्र ने 'रस रहस्य' में मम्मट तथा विश्वनाथ दोनों के काव्य-लक्षण का खंडन करते हुए अपना निजी काव्य-लक्षण इस प्रकार दिया है -

''जगते अद्‌भुत सुख सदन, शब्दरू अर्थ कवित्त।

यह लच्छन्न मैंने कियो, समुझि ग्रंथ बहु चित्त।।''

अर्थात, अलौकिक आनंद देनेवाले शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।

कुलपति ने विलक्षण आनंद या सुख देनेवाली रचना को काव्य कहा है। लेकिन संसार से विलक्षण आनंद कैसे समझा जाए? यह प्रश्न है। अत: यह लक्षण अस्पष्ट है।

- **महाकवि देव :**

देव ने अपने 'काव्य-रसायन' ग्रंथ में काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है -

'सब्द जीव तिहि अरथ मन, रसमय सुजस सरीर।

चलत वहै जुग छंद गति, अलंकार गंभीर।।''

अर्थात, शब्द जीव है, अर्थ मन है, रस से युक्त यशस्वी उसका शरीर है। दोनों प्रकार छंद उसकी गति है और अलंकार उस गति की गंभीरता है।

देव की धारणा विलक्षण है, जिसमें शब्द को शरीर न मानकर रस को शरीर माना है। गति की गंभीरता भावों पर निर्भर करती है अलंकारों पर नहीं। अत: गंभीरता को अलंकार पर आश्रित करना भी युक्तिसंगत नहीं। अत: काव्य के स्वरूप को समझने में इससे कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है।

- **आचार्य सोमनाथ :**

आचार्य सोमनाथ ने काव्य-लक्षण देते हुए लिखा है -

''सगुन पदारथ दोष विनु, पिंगल मत अविरूद्ध।

भूषण जुत कवि कर्म जो, सो कवित्त कहि बुद्ध।।''

अर्थात, काव्य वह कवि कर्म है जिसमें शब्द और अर्थ गुण सहित, दोष रहित और पिंगल (छंद) के अनुसार हो।

इन्होंने काव्य की परिभाषा में छंद का समावेश किया है। प्रस्तुत परिभाषा पर मम्मट का प्रभाव है।

1.3.1.3 आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य-लक्षण :

आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य-लक्षण काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए सहायता करते हैं। इनके काव्य-लक्षण अधिकांश रूप में संस्कृत तथा पाश्चात्य काव्य लक्षणों से प्रभावित है।

- **महावीरप्रसाद द्विवेदी :**

''मनोभाव शब्दों का रूप धारण करते है, वही कविता है, चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक।''

इससे स्पष्ट है, समस्त मनोभावों का प्रकाशन कविता में हो जाता है, चाहे किसी भी प्रकार से प्रकट हो। अत: यह लक्षण उपयुक्त नहीं है।

- **आचार्य रामचंद्र शुक्ल :**

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक और निबंधकार रामचंद्र श्रुल ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है-

''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।''

इस परिभाषा में आचार्य शुक्ल ने 'रस तत्त्व' को सर्वोपरि महत्ता प्रदान की है। यह परिभाषा पर्याप्त प्रसिद्‌ध रही है।

- **जयशंकर प्रसाद :**

छायावाद के आधारस्तम्भ जयशंकर प्रसाद ने काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है –

''काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है।''

इस परिभाषा में आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति में स्पष्टता नहीं है। विज्ञान से संबंध न बताते हुए भी आगे प्रसाद जी ने काव्य को अनुभूति ही माना, जबकि वास्तव में वह अभिव्यक्ति है।

- **महादेवी वर्मा :**

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है –

''कविता कवि-विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय में अविर्भूत होती है।''

यह परिभाषा गीतिकाव्य तक ही सीमित रह जाती है। कवि मन में उठनेवाली भावनाएँ दूसरे के मन में भी उत्पन्न हो यह आवश्यक नहीं है। साथ ही इसमें बुद्‌धि तथा कल्पना तत्त्व की उपेक्षा की गई है।

- **सुमित्रानंदन पंत :**

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत ने लिखा है –

''कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।''

प्रस्तुत परिभाषा में परिपूर्ण क्षण किस वक्त को कहे इसके स्पष्ट संकेत नहीं मिलते हैं। अत: यह परिभाषा अस्पष्ट है।

- **डॉ. श्यामसुंदर दास :**

डॉ. श्यामसुंदर दास ने कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है-

''काव्य वह है जो हृदय में अलौकिक आनंद या चमत्कार की सृष्टि करें।''

इस परिभाषा में रस, ध्वनि और अलंकार को समाहित करने का प्रयास किया गया है।

1.3.1.4 पाश्चात्य विद्‌वानों के काव्य-लक्षण :

काव्य-लक्षण के संबंध में पाश्चात्य विद्‌वानों ने अनेक विचार प्रकट किए हैं। इन्होंने काव्य के लिए कल्पना, बुद्‌धि, भाव और शैली तत्त्व की आवश्यकता को स्वीकार करके काव्य या साहित्य के लक्षण निर्धारित किए हैं। वे अन्य कलाओं के सदृश्य कविता को भी अनुकृत मानते हैं। पाश्चात्य विद्‌वानों के काव्य-लक्षण निम्न प्रकार के हैं-

- **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका** (Encyclopedia Britanika) **:**

"Poetry is articulate music"

अर्थात, कविता सुस्पष्ट संगीत है।

यह परिभाषा सर्वत्र सत्य नहीं। संगीत, कविता का एक पक्ष है, परंतु संगीत तत्त्व काव्य का अनिवार्य अंग नहीं। सभी कविताओं में तो संगीत नहीं रहता। यह परिभाषा अव्याप्ति दोष से युक्त है।

- **वर्डस्वर्थ :**

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्डस्वर्थ ने लिखा है –

"Poetry is the spontaneous overflow of Powerful feelings, it takes its origin from emotions recollected in tranquillity."

अर्थात, कविता प्रबल अनुभूतियों का सहज उद्रेक है, जिस का स्त्रोत शांति के समय में स्मृत मनोवेगों से फूटता है।

वर्डस्वर्थ की परिभाषा तथ्यपूर्ण है; क्योंकि यह भावानुभूति और अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को स्पष्ट करती है। इस लक्षण में भी आपत्ति उठाई जा सकती है। शांति के समय में भी अपने मनोवेगों को स्मरण करते हैं और अपने प्रबल भावों को प्रकट भी करते हैं; क्या वह सब काव्य हो जाता है? यहाँ पर अभिव्यक्ति कला और उसके प्रभाव का उल्लेख नहीं है। हम अपने सुख-दुःखपूर्ण क्षणों का स्मरण कर हँसते हैं और रोते हैं, पर सभी का वह उल्लास और विलाप सदैव कविता नहीं बन जाता। कविता के लिए उस सहज अभिव्यक्ति में सौंदर्य, संयम और प्रभाव की आवश्यकता है; परंतु इसमें संदेह नहीं कि प्रतिभा और अभिव्यक्ति-कौशल से युक्त कवियों की काव्याभिव्यक्ति की प्रक्रिया यहाँ पर अवश्य स्पष्ट हुई है।

- **कॉलरिज :**

"Poetry is the best words in their best order."

अर्थात, सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम क्रम में कविता है।

इस परिभाषा में कुछ बातें अस्पष्ट प्रतीत होती है। सर्वोत्तम शब्द कौनसे हैं और उनका सर्वोत्तम क्रम कौनसा है? स्वर्ग, सोना, पुष्प, सौंदर्य, अमृत आदि शब्द उत्तम होने चाहिए। ऐसी दशा में मृत्यु, कीचड, नरक आदि शब्द बुरे होंगे और काव्य के क्षेत्र से उन्हें निकाल देना पडेगा। पर इन शब्दों और उनके पर्यायों का उत्तम काव्य में खूब व्यवहार होता है। दूसरी बात शब्दों के क्रम की, शब्दों का कभी एक क्रम और कभी दूसरा क्रम काव्य की पंक्तियाँ बन जाता है। इसलिए यह लक्षण अस्पष्ट और भ्रामक है।

- **शैली** (Shelley) **:**

काव्य के लक्षण पर विचार करते हुए इन्होंने लिखा है –

"Poetry is the record of the best and happiest moments of the happiest and best minds."
अर्थात, सर्वसुखी और सर्वोत्तम मनों के सर्वोत्तम और सर्वाधिक सुखपूर्ण क्षणों का लेखा कविता है।

यहाँ पर यह प्रश्न पडता है कि सबसे सुखी और सबसे उत्तम मनों को परखने की कसौटी क्या है? दूसरे उनके सर्वोत्तम और सबसे सुखी क्षण कौनसे हैं? उनका लेखा सदैव कविता होगी, यह संदिग्ध है। सुखपूर्ण क्षणों से अधिक काव्य के बीज तो विषादपूर्ण क्षणों में उगते हैं, जैसे कि स्वयं शैली का ही विचार है कि हमारे सबसे मधुर गान वे हैं जिनमें विषादपूर्ण भाव व्यक्त किए जाते हैं। अत: यह परिभाषा भावुकतापूर्ण ही है। काव्य को लेखा कहना उचित नहीं, क्योंकि इससे कल्पना और भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, तटस्थ लेखा नहीं।

- **डॉ. जॉनसन** (Dr. Johnson) **:**

डॉ. जॉनसन कविता को कला के रूप में स्वीकार करते हुए लिखते हैं –

"Poetry is the art of uniting pleasure with thruth by calling imagination to the help of reason."

अर्थात, कविता वह कला है जो कल्पना की सहायता से युक्ति के द्वारा सत्य को आनंद से समन्वित करती है।

इस परिभाषा में डॉ. जॉनसन ने काव्य का प्रधान स्वरूप स्पष्ट किया है। सत्य के प्रकाशन में आनंद का समावेश, रमणीयता और रोचकता के गुण का संकेत करता है और कल्पना का तो इस प्रकार के कार्य में प्रमुख हाथ रहता ही है। युक्तिसंगत होना, सत्य के स्वरूप का आधार है। वास्तविकता का आभास और विश्वसनीयता, कविता के प्रभावशाली होने के लिए अत्यंत आवश्यक है। ऐसी दशा में डॉ. जॉनसन की धारणा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है; परंतु इसमें कविता के कलात्मक पक्ष पर अधिक जोर है।

- **मैथ्यू आरनॉल्ड** (Mathew Arnold) **:**

मैथ्यू आरनॉल्ड कविता को परिभाषित करते हुए लिखते हैं–

"Poetry is at bottom, a criticism of life."

अर्थात, कविता अपने मूल रूप में जीवन की आलोचना है।

इस परिभाषा में उत्तम काव्य की विशेषता स्पष्ट हुई है। परंतु यह कोई विशिष्ट लक्षण नहीं माना जा सकता। जीवन की समीक्षा साहित्य के अन्य रूपों में भी हो सकती है, केवल कविता में ही नहीं। अत: यह आरनॉल्ड के निजी काव्यादर्श का संकेत करनेवाली उक्ति है, कविता की परिभाषा नहीं।

- **चैम्बर्स कोश** (Chambers Dictionary) **:**

"Poetry is the art of expressing in melodious words thoughts which are the creations of imagination and feelings."

अर्थात, कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों को मधुर शब्दों में अभिव्यक्त करने की कला कविता है।

इस परिभाषा में काव्य के समस्त तत्त्वों का उल्लेख हुआ है। काव्य के भीतर अभिव्यंजना कौशल रहता ही है। साथ ही कल्पना और अनुभूति तथा विचार तत्त्व भी काव्य में आवश्यक है। इस परिभाषा में केवल

एक दोष है अव्याप्ति का। काव्य के लिए आवश्यक नहीं कि वह सदैव संगीतमय मधुर शब्दों के रूप में ही हो। काव्य में वीरता, क्रोध, भय आदि भाव भी प्रकट होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पाश्चात्य विद्वानों का एक वर्ग काव्य को जीवन से अलग मानता है, तो दूसरा वर्ग कविता को जीवन की ही अभिव्यक्ति मानता है। इन विद्वानों द्वारा काव्य परिभाषाओं में काव्य के तत्त्वों की ही चर्चा मिलती है। वास्तव में श्रेष्ठ काव्य वही है, जिसमें काव्य के सभी तत्त्वों का सुंदर सामंजस्य निहित होगा।

1.3.1.5 निष्कर्ष :

इस तरह काव्य को परिभाषित करने के प्रयास अनवरत और अविच्छिन्न गति से चलते आ रहे हैं। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने तरीके से काव्य-लक्षण प्रस्तुत करते हुए काव्य के स्वरूप को बेहतर रूप में पेश करने की कोशिश की है। साथ ही काव्य में उपयुक्त तत्त्वों की चर्चा करते हुए काव्य को सुंदर बनाने के संकेत भी दिए हैं। इन सभी विद्वानों में एक नए विचार तथा धारणा को प्रस्तुत करने की प्रबल इच्छा दिखाई देती है। अंत में हम कह सकते हैं कि मनुष्य जीवन के अंतरंग और बहिरंग को अभिव्यक्त करनेवाला माध्यम ही कविता है।

1.3.2 काव्य / साहित्य – तत्त्व :

साहित्य को व्यवस्थित रूप से समझने के लिए उनके तत्त्वों की जानकारी लेना अत्यंत आवश्यक है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उनके तत्त्वों का उल्लेख भी किया है। जिसमें उन्होंने भाव तत्त्व, कल्पना तत्त्व, बुद्धि तत्त्व और शैली तत्त्व पर जोर दिया है। काव्य के सृजन में तथा उसके अस्तित्व से जुडे जो तत्त्व होते है; उन्हें ही काव्य के तत्त्व कहा जाता है। पाश्चात्य विद्वान विचेंस्टर ने पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में काव्य के मूल विधायक तत्त्वों का सर्वप्रथम उल्लेख किया था।

1.3.2.1 भाव तत्त्व (The Element of Emotion) :

साहित्य में सबसे प्रमुख तत्त्व के रूप में भाव तत्त्व को जाना जाता है। भाव तत्त्व साहित्य में सबसे अधिक प्रभाव उत्पन्न करनेवाला साहित्य का प्राण तत्त्व है। भाव ही कवि की कल्पना शक्ति को जागृत करते हैं। भाव के कारण ही कविता योग्य आकार ग्रहण करती है। भाव कविता को शक्ति प्रदान करने का काम करते हैं। भाव तत्त्व के अभाव से काव्य निष्प्राण एवं नीरस होता है। शब्द, अर्थ और कल्पना भाव को साकार रूप देते हैं। कवि अपने हृदयगत भावों को कविता में अभिव्यक्त करता है। उसमें उत्पन्न होनेवाले तीव्र भावों से ही काव्य का जन्म होता है। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि वर्डस्वर्थ ने भावों का योगदान स्पष्ट करते हुए लिखा है – ''काव्य प्रबल संवेदना का सहज उद्रेक है।'' भावों की सृष्टि कवि करता है, इसलिए कवि काव्य जगत् का विधाता है।

आचार्य विश्वनाथ जी ने काव्य में रस के महत्त्व को अंकित करते हुए लिखा है – ''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।'' इस काव्य-लक्षण में विश्वनाथ जी ने रस का संबंध भावों से जोड दिया है। स्पष्ट है कि भावों के बिना रस नहीं और रस के बिना काव्य नहीं। चित्त की स्थायी और अस्थायी वृत्तियों का नाम भाव है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी भी इस संबंध में लिखते हैं कि, ''अंत:करण की वृत्तिङ्गों के चित्र का नाङ्क कविता है।'' ङ्गहाँ पर उन्होंने अंत:करण की वृत्तियों का संबंध भावात्मकता से जोड दिया है। भावों की गहराई ही कविता को उच्च स्तर पर ले जाती है। कविता के मूल में संवेदना है, राग तत्त्व है। सुमित्रानंदन पंत जी कविता का जन्म वियोग तथा दु:ख से मानते हैं। इस संदर्भ में वे लिखते हैं -

''वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान,
निकल कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।''

इन पंक्तियों में मनुष्य के हृदय में स्थित दु:खगत भावों से ही कविता का जन्म माना है। हृदय की पुकार ही कविता है। मन में उठने गिरनेवाली असंख्य धाराएँ ही कविता का सागर बन जाती है। काव्य में सरसता, स्पष्टता और व्यापकता भावों के कारण ही आती है।

भाव तत्त्व से ही काव्य में प्रभावात्मकता और संप्रेषणीयता आ जाती है। लेकिन काव्य को पूर्ण रूप से प्रभावी बनाने के लिए भावों में विविधता का होना अत्यंत आवश्यक है। भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में भावों को स्थायी भाव और संचारी भाव में विभाजित किया है। भाव तत्त्व साहित्य का अनिवार्य तत्त्व होते हुए भी उसकी स्थिति प्रत्येक विधा में अलग प्रकार से प्रकट होगी। प्रगीत में भाव तत्त्व प्रखर रूप में अभिव्यक्त होता है। उतना अन्य विधा में नहीं हो पाता है।

1.3.2.2 कल्पना तत्त्व (The Element of Imagination) :

कल्पना शब्द की व्युत्पत्ति 'कलृप' धातु से हुई है। कल्पना अंग्रेजी शब्द Imagination का पर्यायवाची है। जिसका शाब्दिक अर्थ सृष्टि करना, सृजन करना है।। 'Imagination' का निर्माण Image शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है - मानसिक बिंब या चित्र। साहित्य में भावनाओं का चित्रण कल्पना के द्वारा ही संपन्न हो जाता है। सुंदरम की प्रतिष्ठा का श्रेय कल्पना तत्त्व को ही है। जीवन के विविध अंगों का प्रस्तुतीकरण कल्पना के द्वारा ही संभव हो पाता है। इसी कल्पना के सहारे कवि दूसरों के सुख-दु:ख और अनुभूतियों का चित्रण इस प्रकार करता है कि वह हमारा सुख-दु:ख बन जाता है। कवि काव्य कौशल्य के सहारे अप्रत्यक्ष घटना को प्रत्यक्ष रूप में और सूक्ष्म भाव को स्थूल रूप में अंकित करने की कोशिश करता हैं। यह कौशल्य उसे कल्पना शक्ति से ही प्राप्त हो जाता है। काव्य में सौंदर्य की सृष्टि और चमत्कारिता उत्पन्न करने का काम कल्पना के द्वारा ही संभव हैं। लौकिक वर्णन को अलौकिक रूप में प्रस्तुत करने का कार्य कवि कल्पना के सहारे ही कर पाता है।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अंतर्गत कविता में कल्पना तत्त्व को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। एडिसन, काण्ट, कॉलरिज, क्रोंचे आदि प्रख्यात विचारकों ने कल्पना का प्रभूत विवेचन किया है। इन विद्वानों के अनुसार कल्पना मस्तिष्क की सौंदर्य बोधात्मक प्रवृत्ति की प्रक्रिया है। पाश्चात्य विद्वान रस्किन ने लिखा है, ''कविता कल्पना के द्वारा मनोवेगों के लिए रमणीय क्षेत्र प्रस्तुत करती है।'' कल्पना तत्त्व अमूर्त भाव को

मूर्त रूप प्रदान करता है। हिंदी के आधुनिक विद्वानों ने भी कल्पना संबंधी अपने मौलिक विचार प्रकट किए हैं। डॉ. रामदहिन मिश्र जी कल्पना के संबंध में लिखते हैं – ''अनुपस्थित वस्तु की मानस प्रतिभा खडी करने की शक्ति का नाम कल्पना है।'' शून्य या अज्ञात वस्तु को कवि कल्पना के सहारे आकार देता है। बाबू श्यामसुंदर दास जी के अनुसार, ''विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो सृष्टि है, वही कविता में कल्पना है।''

आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने कल्पना के दो भेद किए हैं – विधायक कल्पना और ग्राहक कल्पना। विधान के लिए कवि में विधायक कल्पना अपेक्षित होती है तथा संपर्क ग्रहण के लिए पाठक या श्रोता में ग्राहक कल्पना। अचेतन को सचेतन करने की बडी शक्ति कवि में कल्पना से आती है। कवि कल्पना के द्वारा नए संसार की रचना करता है। वह एक साधारण घटना को कल्पना के बल पर असाधारण रूप में पेश करता है। नवीनता तथा रोचकता जैसे गुण काव्य में कल्पना के द्वारा ही समाविष्ट होते हैं। कल्पना तत्त्व का महत्त्वपूर्ण काम मानव जीवन के अनेक दृश्यों को सम्मुख प्रस्तुत करना होता है। विचारों को उत्तेजित करने की शक्ति कल्पना में होती है। असल में कल्पना का सामर्थ्य ही कवि की प्रतिभा है।

1.3.2.3 बुद्धि तत्त्व (The Element of Intellect) :

बुद्धि तत्त्व में विचार की प्रधानता होने के कारण इसे विचार तत्त्व के नाम से भी जाना जाता है। बुद्धि का संबंध तथ्यों, विचारों और सिद्धांतों से हैं। कवि किसी विशिष्ट प्रयोजन हेतु काव्य का निर्माण करता है। वह अपने पाठकों को एक विशिष्ट विचार प्रदान करना चाहता है। यही विचार काव्य में बुद्धि तत्त्व कहलाते हैं। बुद्धि तत्त्व का संबंध अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों से हैं। काव्य में विचारों और तत्त्वों का प्रतिपादन बुद्धि तत्त्व के द्वारा ही होता है। बुद्धि तत्त्व के कारण काव्य सुसंगत तथा प्रभावशाली बन जाता है। कल्पना और भाव को सत्य बनाने का काम बुद्धि तत्त्व का होता है। साथ ही कल्पना, भाव और शब्दों का संयोजन औचित्यपूर्ण होने के लिए बुद्धि तत्त्व का सहारा लेना पडता है। साहित्य की प्रत्येक विधा में कथा संयोजन, चरित्र-चित्रण और भाव निरूपण का कार्य साहित्यकार बुद्धि के आधार पर ही करता है। बुद्धि तत्त्व से हीन कोई भी वर्णन हास्यास्पद हो जाता है। संत तुलसीदास के शब्द प्रयोगों के औचित्य और विचारपूर्णता पर न जाने कितनी व्याख्याएँ हुई हैं और बराबर हो रही हैं।

बुद्धि तत्त्व साहित्यकार को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है। घटनाओं का संग्रह और घटनाओं का चुनाव इस प्रकार करना कि इसका उपयुक्त प्रभाव पडे और कर्म के अनुरूप फल दिखाने के लिए बुद्धि तत्त्व का प्रयोग होता है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने बुद्धि तत्त्व को महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में स्वीकारा है। काव्य में भावों पर अंकुश लगाने का काम बुद्धि तत्त्व के द्वारा ही होता है। निबंध विधा में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता होती है। काव्य में योग्य-अयोग्य का चयन बुद्धि ही करती है।

साहित्य का उद्देश्य केवल कोरा मनोरंजन करना नहीं है, तो एक वैचारिक शक्ति प्रदान करना भी है। उसके लिए साहित्य में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता रहती है। काव्य में संतुलन की बागडोर बुद्धि तत्त्व पर ही निर्भर रहती है। लेकिन काव्य में विचारों की अधिकता काव्य को बोझिल बना सकती है। इसी कारण भाव और विचारों का तादाम्य काव्य के लिए अनिवार्य होता है।

1.3.2.4 शैली तत्त्व :

शैली तत्त्व काव्य के कलापक्ष से संबंधित तत्त्व है। इसे काव्य का शरीर भी कहा जाता है। प्रत्येक कवि की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है। जिसके आधार पर कवि अपने काव्य को पूर्ण रूप दे पाता है। साहित्यकार जिस भाषा, जिस प्रणाली और रूप का इस्तेमाल कर अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करता है, उसे शैली कहा जाता है। इसके अंतर्गत शब्द चयन, अलंकारों का प्रयोग तथा साहित्य के स्वरूप का समावेश होता है। शैली का संबंध काव्य के बाह्यांगों से संबंधित होता है। लेकिन भावों और विचारों की संप्रेषणीय और प्रभावशाली अभिव्यक्ति शैली से ही संभव होती है। इस तत्त्व का प्रमुख आधार भाषिक संरचना है। जिस प्रकार शरीर के बिना आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार भाषा आदि के बिना काव्य की कल्पना भी असंभव है।

काव्य को मधुर, उत्साहवर्धक और आकर्षक बनाने के लिए शैली का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में शैली के लिए 'रीति' शब्द प्रचलित है। 'रीति' का अर्थ काव्य लेखन की विशिष्ट पद्धति से जोडा जाता है। आचार्य वामन विशिष्ट पद रचना को रीति कहते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने शैली का संबंध कवि के व्यक्तित्व से माना है। वर्तमान समय में साहित्य में वर्णनात्मक शैली, हास्यव्यंग्यात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, सरस शैली, ललित शैली, उदात्त शैली आदि का प्रयोग किया जाता है।

1.3.2.5 निष्कर्ष :

संक्षेप में क़हा जा सकता है कि, इत सब तत्त्व एक दूसरे से जुडे हुए हैं। किसी एक तत्त्व के आधारपर काव्य निर्माण असंभव-सा प्रतीत होता है। भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली तत्त्व के संगठित और समन्वित रूप से ही साहित्य का सृजन हो सकता है। किसी भी एक तत्त्व की उपेक्षा पूरे काव्य के स्वरूप को हानि पहुँचा सकती है।

1.3.3 भारतीय काव्य प्रयोजन :

मनुष्य के प्रत्येक कार्य के पीछे कोई-न-कोई उद्‌देश्य अवश्य रहता है। संसार में बिना उद्‌देश्य के मंदबुद्धि वाला व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है। उसी तरह कवि भी बिना उद्‌देश्य के रचना को जन्म नहीं देता है। काव्य-प्रणयन में कवि के जो उद्‌देश्य रहते हैं, वे ही काव्य प्रयोजन कहलाते हैं। काव्य को 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा गया है। अत: इसके निर्माण के मूल में प्रयोजनों का होना अत्यंत स्वाभाविक है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के प्रयोजनों पर गंभीरता से विचार किया है। यहाँ महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है -

1.3.3.1 संस्कृत आचार्य : काव्य प्रयोजन -

- **आचार्य भरतमुनि :**

संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भरतमुनि के काल तक काव्य और नाटक में कोई भेद नहीं माना जाता था। भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में नाट्य प्रयोजनों का उल्लेख करते हुए काव्य प्रयोजन की ओर इस प्रकार संकेत किया है -

''धर्म्यं यशस्यमायुष्यहितं बुद्धिविवर्द्धनम्।

लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद भविष्यति।।''

अर्थात, भरतमुनि के अनुसार धर्म, यश, आयु, हितोपदेश, जनहित आदि नाट्य के प्रयोजन हैं।

- **आचार्य भामह :**

भामह ने अपने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में काव्य के निम्नलिखित प्रयोजन बताए हैं –

''धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्य निबन्धनम्।।''

अर्थात, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति, कलाओं में निपुणता, कीर्ति और प्रीति काव्य के प्रयोजन हैं। भामह ने पहली बार चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति को काव्य प्रयोजनों में स्थान प्रदान किया, जिसे आगे चलकर प्राय: सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है।

- **आचार्य वामन :**

वामन के काव्य के दो प्रयोजन बताए हैं –

''काव्यं सद्दृष्टादृष्टार्थ प्रीतिकीर्ति हेतुत्त्वात''

अर्थात, काव्य के दो प्रयोजन है, एक है प्रीति या आनंद साधना जो दृष्ट प्रयोजन है और दूसरा है कीर्ति जो अदृष्ट प्रयोजन है।

- **आचार्य मम्मट :**

आचार्य मम्मट का संस्कृत काव्यशास्त्र में विशेष स्थान है। इनके बताए हुए काव्य प्रयोजनों पर पूर्ववर्ती आचार्यों का प्रभाव दिखाई देता है। साथ ही साथ अपनी मौलिकता का परिचय भी दिया है। आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' ग्रंथ में निम्न छ: प्रयोजनों की विशद चर्चा की है –

''काव्य यशसे अर्थकृत व्यवहारविदे शिवेनरक्षयते।

सद्यः परिनिर्वृत्तये कांतासम्मिततयोपदेशयुजे।।''

अर्थात, काव्य यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अमंगल का नाश, अलौकिक आनंदानुभूति और कांतासम्मित उपदेश के लिए होता है। मम्मट की काव्य प्रयोजन विषयक धारणा सर्वोत्तम और परिपूर्ण मानी जाती है। इनके काव्य प्रयोजनों का संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है –

अ) यश-प्राप्ति :

यश की कामना मनुष्य की एक सहज प्रवृत्ति है। प्रत्येक व्यक्ति यश प्राप्ति के लिए लालायित रहता है। बहुत सारे साहित्यकार भी यश-प्राप्ति की आकांक्षा से साहित्य सृजन में प्रवृत्त होते हैं। अंग्रेजी कवि मिल्टन के अनुसार यश मानव की अंतिम और उदात्ततम कामना है। विश्वविख्यात महाकवि कालिदास, भवभूति, शेक्सपियर आदि ने यश की कामना से ही काव्य रचना की है। रूद्रट ने लिखा है – ''महाकवि सरस काव्य

की रचना करता हुआ, अपने तथा नायक के प्रत्यक्ष युगांत तक रहनेवाले जगद्व्यापी यश का विचार करता है।''

स्वपक्ष और पर पक्ष यह यश प्रयोजन के दो पक्ष हैं। भास और भवभूति जैसे कवियों ने काव्य रचना करके अपने यश का विस्तार किया है, तो रीतिकालीन कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से आश्रयदाताओं का गुणगान किया है।

ब) अर्थ–प्राप्ति :

सांसारिक जीवन में अर्थ (धन) को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इसी वजह से प्रत्येक मनुष्य अर्थोपार्जन के लिए कुछ न कुछ उद्योग करता है। काव्य रचना का एक प्रयोजन अर्थ–प्राप्ति भी रहा है। लगभग सभी संस्कृत तथा हिंदी आचार्यों ने इस प्रयोजन का समर्थन किया है। संस्कृत के कवि धावक ने महाराज श्री हर्ष से एक–एक श्लोक पर लक्ष मुद्रा प्राप्त की थी। रीतिकाल के कवि अपनी रचनाओं में आश्रयदाताओं की प्रशंसा करते और उससे धन प्राप्त करते थे। रीतिकाल में अर्थ–प्राप्ति करना काव्य का मुख्य प्रयोजन था। आज भी अनेक साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से राजनेताओं की प्रशंसा करते हुए दिखाई देते हैं। इसके पीछे इनका उद्देश्य केवल धन कमाना ही है।

हिंदी के रीतिकालीन कवि बिहारी के बारे में यह प्रसिद्ध है कि उन्हें राजा जयसिंह ने एक–एक दोहे के लिए एक–एक अशर्फी दी थी। कहा जाता है कि अंग्रेजी उपन्यासकार स्कॉट ने भी ऋण चुकाने के लिए उपन्यायस लिखे थे।

क) व्यवहार ज्ञान :

मम्मट ने व्यवहार ज्ञान की शिक्षा को भी काव्य का एक प्रयोजन माना है। काव्य के द्वारा लौकिक व्यवहार की शिक्षा भी दी जाती है। काव्य सृजन से कवि और पाठक दोनों को भी व्यवहार ज्ञान प्राप्त होता है। संस्कृत साहित्य में बहुत सारे ग्रंथ इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही लिखे गए हैं। आचार्य कुंतक ने इस प्रयोजनसंबंधी लिखा है – ''सत्काव्य में औचित्य से युक्त व्यवहार चेष्टा का निदर्शन प्रधान रहता है।'' महाभारत, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि काव्यों से व्यवहार ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह प्रयोजन जीवन की वास्तविकताओं को जानने – समझने के लिए एक दृष्टि प्रदान करता है। साथ ही उचितानुचित व्यवहार का ज्ञान भी इस प्रयोजन से प्राप्त होता है।

ड) शिवेतरक्षयते :

शिवेतरक्षयते का अर्थ है अमंगल का नाश। इस प्रयोजन को संस्कृत और हिंदी आचार्यों ने मान्यता दी है। साहित्य केवल मनोरंजन तक सीमित कभी नहीं रहा; बल्कि उसका लक्ष्य लोकहित ही रहा है। अनिष्ट के निवारण हेतु बहुत सारा साहित्य लिखा गया है। भक्तिकाल के सुप्रसिद्ध कवि तुलसीदास ने स्वङ्कं की बाहु पीडा से मुक्ति पाने के लिए 'हनुमान बाहुक' ग्रंथ की रचना की थी। मयूर कवि ने सूर्य से कोढ निवारण की प्रार्थना करते हुए 'सूर्यशतक' की रचना की थी।

भक्तिकाल के कबीर, रैदास जैसे कवियों ने जाति–पाँति की अमंगल प्रथा का विरोध किया। रीतिकाल में भूषण ने लोकहित को ध्यान में रखते हुए मुगल शासन की दमणकारी नीति के खिलाफ रचनाएँ लिखी। आधुनिक काल के कवियों ने अंग्रेजी शासन के अन्याय से मुक्ति पाने के लिए अनेक रचनाओं का सृजन किया। साथ ही इन कवियों ने भारत में चलती आ रही अनेक अनिष्ठ प्रथाओं का विरोध करने के प्रयोजन से रचनाएँ लिखी।

इ) सद्य: परिर्निर्वृत्तये :

सद्य: परिनिर्वृत्तये का अर्थ है आनंद की प्राप्ति। इस आनंद का संबंध अलौकिक आनंद से हैं। सभी संस्कृत आचार्यों ने इसे सर्वोत्कृष्ट तथा प्रमुख प्रयोजन के रूप में स्वीकारा है। काव्य के आस्वादन से जो रस रूपी आनंद मिलता है, उससे कवि और पाठक दोनों को आनंदानुभूति होती है। इस आनंद को 'ब्रह्मानंद सहोदर' भी कहा गया है। इससे मनुष्य के जीवन में वेदना तथा विषमता का नाश होकर शांति का मनोराज्य स्थापित हो जाता हैं। कष्टों से मुक्ति पाकर अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है।

ई) कांतासम्मित उपदेश :

शास्त्रों के अंतर्गत उपदेश–शैली तीन प्रकार की बताई गई है – प्रभु सम्मित, सुहृदय सम्मित और कांता सम्मित। काव्य में कांता सम्मित उपदेश को महत्त्व दिया गया है। कांता सम्मित अर्थात् प्रिया द्वारा मधुर शैली में कही गई बात या भेजा गया संदेश। जिस प्रकार पत्नी अपने मधुर वचनों से पति को मुग्ध करके अनर्थ से बचाती है, उसी प्रकार काव्य भी मधुर कथा और ध्वनि के सहारे मनुष्य को उच्च आदर्शों की शिक्षा देता है। उसका प्रभाव भी शीघ्रता से होता है। सुंदर, कोमल अऔर आकर्षक भाषा काव्य को रोचक बनाती है। कवि बिहारी का निम्न दोहा इस प्रयोजन का उत्तम उदाहरण है। जिसने राजा जयसिंह को काफी प्रभावित किया था।

''नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।

अलि, कली ही सौं बन्ध्यौ, आगे कौन हवाल।''

1.3.3.2 प्राचीन हिंदी आचार्य : काव्य प्रयोजन –

हमारे प्राचीन हिंदी आचार्यों ने काव्य प्रयोजन संबंधी महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ आचार्यों के काव्य प्रयोजन इस प्रकार से है –

- **गोस्वामी तुलसीदास :**

महाकवि तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' में काव्य प्रयोजन संबंध में लिखा है–

''कीरति भनिनि भूति भल सोई।

सुरसरि सम सब कहँ हित होई।''

अर्थात कीर्ति, कविता और ऐश्वर्य - वैभव वही श्रेष्ठ है जो गंगा नदी के समान सब का हित करनेवाला है। भावार्थ यह है कि तुलसीदास जी ने गंगा नदी की पवित्रता तथा उपकारी भावना से जोडकर लोक मंगल की स्थापना करना ही काव्य का प्रयोजन सिद्ध किया है।

- **आचार्य कुलपति :**

आचार्य कुलपति ने काव्य प्रयोजन के विषय में लिखा है -

''**जस सम्पत्ति आनन्द अति दुरितन डारै खोई।**

होत कवित्त ते चतुराई जगत राम बस होई।।''

अर्थात, यश, संपत्ति, अलौकिक आनंद, दु:खों का नाश और व्यवयहार ज्ञान काव्य के प्रयोजन हैं। कुलपति ने अपने इस दोहे में मम्मट के काव्य प्रयोजनों को ही दोहराया है।

1.3.3.3 आधुनिक हिंदी विद्वान : काव्य प्रयोजन -

हिंदी साहित्य के आधुनिक कवियों, आचार्यों तथा आलोचकों ने युग की बदलती हुई काव्य विषयक मान्यताओं को ध्यान में रखकर अपने-अपने काव्य प्रयोजनों का निरूपण किया है।

- **महावीर प्रसाद द्विवेदी :**

इन्होंने ज्ञान का विस्तार और मनोरंजन को ही काव्य प्रयोजन स्वीकार किया है।

- **मैथिलीशरण गुप्त :**

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने काव्य के दो प्रयोजन माने हैं - मनोरंजन और उपदेश।

''**केवल मनोरंजन न कवि का, कर्म होना चाहिए।**

उसमें उचित उपदेश का भी, मर्म होना चाहिए।''

- **डॉ. नगेंद्र :**

डॉ. नगेंद्र काव्य का प्रयोजन कवि की आत्माभिव्यक्ति की भावना को मानते हैं। उनके अनुसार, ''साहित्य का प्रयोजन आत्माभिव्यक्ति है। कवि या लेखक के हृदय में जो भाव या विचार उठते हैं, उन्हें वह प्रकाशित करना चाहता है।

1.3.3.4 निष्कर्ष :

उपर्युक्त काव्य प्रयोजनों का विस्तृत विवेचन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि संस्कृत-आचार्यों द्वारा उल्लेखित काव्य प्रयोजन विस्तृत और सूक्ष्म दिखाई देते हैं। इसमें मम्मट द्वारा प्रस्तुत काव्य प्रयोजन को सबसे अधिक मान्यता मिलती हुई दिखाई देती है। हिंदी विद्वानों के काव्य प्रयोजनों पर संस्कृत और पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव देखने को मिलता है। पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य को कला के अंतर्गत रखा है। इन विद्वानों में भी काव्य प्रयोजन संबंधी अनेक मत-मतांतर दिखाई देते हैं। लेकिन उनका समन्वित

रूप अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। संक्षेप में उल्लेखित सभी काव्य प्रयोजन एक दूसरे के पूरक है, विरोधी नहीं। किसी भी एक काव्य प्रयोजन से काव्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाएगा।

1.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों में दि गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रंथ .... माना जाता हैं

(क) काव्यादर्श (ख) नाट्यशास्त्र (ग) काव्यप्रकाश (घ) काव्यशास्त्र

2) Literature शब्द .... से बना है।

(क) Lecture (ख) Poet (ग) Letter (घ) Write

3) 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'' .... का काव्य लक्षण है।

(क) भामह (ख) दण्डी (ग) भरतमुनि (घ) वामन

4) 'ननु शब्दार्थो काव्यम्' परिभाषा .... ने दी है।

(क) रूद्रट (ख) राजेशखर (ग) विश्वनाथ (घ) मम्मट

5) 'साहित्यदर्पण' के रचनाकार .... है।

(क) भामह (ख) विश्वनाथ (ग) भरतमुनि (घ) कुंतक

6) 'काव्यालंकार' के रचयिता .... है।

(क) आनंदवर्धन (ख) मम्मट (ग) भामह (घ) जगन्नाथ

7) कविता हमारे .... क्षणों की वाणी है।

(क) उत्कृष्ट (ख) परिपूर्ण (ग) सीमित (घ) सारपूर्ण

8) 'रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम' परिभाषा .... की है।

(क) जगन्नाथ (ख) विश्वनाथ (ग) राजेशखर (घ) मम्मट

9) 'काव्यप्रकाश' के रचयिता .... है।

(क) भामह (ख) रूद्रट (ग) राजेशखर (घ) मम्मट

10) विंचेस्टर ने साहित्य के .... तत्त्व माने हैं।

(क) दो (ख) चार (ग) तीन (घ) पाँच

11) कांतासम्मित उपदेश को काव्य प्रयोजन .... ने माना है।

(क) आनंदवर्धन (ख) विश्वनाथ (ग) मम्मट (घ) वामन

12) Poetry is at bottam a criticism of life .... ने कहा है।

(क) कॉलरिज (ख) ड्राइडन (ग) शेक्सपियर (घ) मैथ्यू आरनॉल्ड

13) साहित्य का प्राण तत्त्व .... है।

(क) भाव (ख) शैली (ग) बुद्‌धि (घ) कल्पना

14) .... तत्त्व में विचार की प्रधानता होती है।

(क) शैली (ख) बुद्‌धि (ग) कल्पना (घ) भाव

15) 'काव्य रसायन' के रचयिता .... है।

(क) बिहारी (ख) भूषण (ग) देव (घ) घनानंद

16) Imagination शब्द .... से बना है।

(क) Image (ख) Photo (ग) Intellet (घ) Copy

17) शैली तत्त्व काव्य के .... पक्ष से संबंधित है।

(क) भाव (ख) कला (ग) विचार (घ) बुद्‌धि

18) भारततीय काव्यशास्त्र में शैली के लिए .... शब्द प्रचल्लित है।

(क) ध्वनि (ख) वक्रोक्ति (ग) रीति (घ) अलंकार

19) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने .... को काव्य प्रयोजन माना है।

(क) आत्महित (ख) विवेक जागृति (ग) आत्माभिव्यक्ति (घ) हृदय की मुक्तावस्था

20) कविता सुस्पष्ट संगीत है .... ने कहा है।

(क) कार्लाइल (ख) ड्राइडन (ग) अरस्तू (घ) वर्डसवर्थ

आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

1. 'वाक्य रसात्मक काव्यम' परिभाषा कौनसे आचार्य की है?
2. आचार्य भामह के ग्रंथ का नाम क्या है?
3. 'शब्दार्थौ रहितौ काव्यम्' परिभाषा कौनसे आचार्य की है?
4. 'कविकुलकल्पतरू' ग्रंथ के लेखक कौन है?
5. 'काव्य सरोज' ग्रंथ के लेखक कौन है?
6. 'तद्‌दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुन: क्वापि' यह काव्य लक्षण कौन से आचार्य का है?
7. सुमित्रानंदन पंत की काव्य परिभाषा कौनसी है?
8. Poetry is at bottom a criticism of life परिभाषा किसने दी है?
9. महावीर प्रसाद द्‌विवेदी की काव्य परिभाषा कौनसी है?
10. 'रत्नावली' ग्रंथ के रचयिता का नाम क्या है?
11. साहित्य के मूल तत्त्व कौनसे हैं?

12. बुद्धि तत्त्व का दूसरा नाम क्या है?

13. 'काव्यादर्श' के रचयिता कौन है?

14. कौनसे अंग्रेजी उपन्यासकार ने ऋण से मुक्ति पाने के लिए उपन्यास लिखा?

15. 'काव्य प्रकाश' के रचयिता कौन है?

16. आचार्य वामन के अनुसान काव्य प्रयोजन कितने हैं?

17. जयशंकर प्रसाद की काव्य परिभाषा कौनसी है?

18. आचार्य मम्मट ने कितने प्रयोजनों की चर्चा की है?

19. महावीर प्रसाद द्विवेदी के काव्य प्रयोजन कौनसे हैं?

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. प्रवर्तक – संस्थापक
2. अशर्फी – सोने की मुहर
3. अतिव्याप्ति – किसी भी कथन के अंतर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तु के आ जाने को न्याय में अतिव्याप्ति दोष कहते हैं।
4. भावात्मक – भावनाओं से युक्त
5. अली – भ्रमर
6. वियोग – दूर होने की अवस्था
7. आलोचना – गुण-दोषों का विवेचन
8. प्रयोजन – उद्‌देश्य
9. प्रचलन – प्रथा, रिवाज
10. अंत:करण – मन, अंतरात्मा

1.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

अ) उचित पर्याय

1. नाट्यशास्त्र	2. Letter	3. भामह	4. रूद्रट
5. विश्वनाथ	6. भामह	7. परिपूर्ण	8. जगन्नाथ
9. मम्मट	10. चार	11. मम्मट	12. मैथ्यू आरनॉल्ड
13. भाव	14. बुद्धि	15. देव	16. Image
17. कला	18. रीति	19. हृदय की मुक्तावस्था	20. ड्राइडन

आ) एक वाक्य में उत्तर –

1. 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' परिभाषा आचार्य विश्वनाथ की है।
2. आचार्य भामह के ग्रंथ का नाम 'काव्यालंकार' है।
3. 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम' परिभाषा भामह की है।
4. 'कविकुलकल्पतरू' ग्रंथ के लेखक आचार्य चिंतामणी है।
5. 'काव्य सरोज' ग्रंथ के लेखक आचार्य श्रीपति है।
6. 'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि' यह काव्य लक्षण आचार्य मम्मट का है।
7. सुमित्रानंदन पंत की परिभाषा है, ''कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी हैं।''
8. Poetry is at bottom a criticism of life परिभाषा मैथ्यू आरनॉल्ड की है।
9. महावीर प्रसाद द्विवेदी की परिषाषा है, ''मनोभाव शब्दों का रूप धारण करते हैं, वही कविता है, चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक।''
10. 'रत्नावली' ग्रंथ के रचयिता धावक है।
11. भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली साहित्य के मूल तत्त्व हैं।
12. बुद्धि तत्त्व का दूसरा नाम विचार तत्त्व है।
13. 'काव्यादर्श' के रचयिता आचार्य दण्डी है।
14. अंग्रेजी उपन्यासकार स्कॉट ने ऋण से मुक्ति पाने के लिए उपन्यास लिखा था।
15. 'काव्यप्रकाश' के रचयिता आचार्य मम्मट है।
16. आचार्य वामन के अनुसार काव्य के दो प्रयोजन हैं।
17. जयशंकर प्रसाद की काव्य परिभाषा है, ''काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से है।''
18. आचार्य मम्मट ने छः काव्य प्रयोजनों की चर्चा की है।
19. महावीर प्रसाद द्विवेदी के ज्ञान का विस्तार और मनोरंजन यह दो प्रयोजन हैं।

1.7 सारांश :

- साहित्यशास्त्र में काव्य और साहित्य एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द माने गए हैं। आज साहित्य की अनेक विधाएँ हमारे सामने प्रस्तुत हो रही है। काव्य शब्द आज पद्यात्मक रचनाओं के लिए ही प्रयुक्त होने लगा है।
- भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी–अपनी दृष्टि से काव्य को परिभाषित करने की कोशिश की है। संस्कृत आचार्यों के काव्य लक्षण अत्यंत मौलिक है और हिंदी विद्वानों के काव्य लक्षणों पर संस्कृत और पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। काव्य को हम मनुष्य के अंतरंग और बहिरंग को अभिव्यक्त करनेवाला सशक्त माध्यम मान सकते हैं।

- भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली ये साहित्य के प्रमुख तत्त्व है। भाव तत्त्व को काव्य का प्राण तत्त्व माना है। काव्य में सौंदर्य की प्रतिष्ठा करने में कल्पना तत्त्व कार्य करता है, तो विचारों का प्रतिपादन बुद्धि तत्त्व के माध्यम से होता है। शैली तत्त्व काव्य के कलापक्ष से संबंधित है। जिससे कोई भी रचना मधुर और रोचक बनती है।
- संस्कृत आचार्यों में मम्मट की काव्य प्रयोजन विषयक धारणा को सर्वोतम और परिपूर्ण माना गया है। इन्होंने काव्य के छ: काव्य प्रयोजनों की चर्चा की है। विशेष बात यह है कि समय और परिस्थिति के अनुरूप काव्य प्रयोजन संबंधी विचारों में बदलाव आया है।

1.8 स्वाध्याय :

1) संस्कृत आचार्यों के काव्य लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
2) पाश्चात्य विद्वानों की काव्य परिभाषाओं पर प्रकाश डालिए।
3) काव्य के तत्त्वों को विशद कीजिए।
4) काव्य के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
5) मम्मट द्वारा प्रतिपादित काव्य-प्रयोजनों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
6) काव्य के प्रयोजनों पर प्रकाश डालिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

- किसी साहित्यकार से मिलकर काव्य के स्वरूप पर विचार-विमर्श कीजिए।
- काव्य के तत्त्वों के बारे में जानकारी हासिल कीजिए।
- किसी रचना से पढकर उसमें प्रयोजन ढूँढिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र
2) भारतीय साहित्यशास्त्र - बलदेव उपाध्याय
3) शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत (भाग 1 और 2) - डॉ. गोविंद त्रिगुणाराय
4) भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा - सं. डॉ. नगेंद्र
5) काव्यशास्त्र के विविध आयाम - सं. मधु खराटे
6) साहित्य विवेचन - सुमन मल्लिक
7) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. यतींद्र तिवारी
8) काव्यशास्त्र - डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी
9) भारतीय काव्यशास्त्र - डॉ. विजयपाल सिंह
10) साहित्यशास्त्र - डॉ. नारायण शर्मा
11) साहित्य रूप : शास्त्रीय विश्लेषण - डॉ. ज्ञानराज गायकवाड

❑❑❑

इकाई –2
शब्दशक्ति, काव्य–गुण और काव्य–दोष

अनुक्रम

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय–विवेचन

2.3.1 शब्दशक्ति

2.3.1.1 अभिधा

2.3.1.2 लक्षणा

2.3.1.3 व्यंजना

2.3.2काव्य–गुण

2.3.2.1 माधुर्य गुण

2.3.2.2 ओज गुण

2.3.2.3 प्रसाद गुण

2.3.3काव्य–दोष

2.3.3.1 पद्गत दोष (पद दोष)

2.3.3.2 अर्थगत दोष (अर्थ दोष)

2.3.3.3 रसगत दोष (रस दोष)

2.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य :

1. काव्य एवं साहित्य से परिचित होंगे।
2. शब्दशक्ति के प्रकारों से परिचित होंगे।
3. अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के भेद समझ सकेंगे।
4. काव्य-गुणों का महत्त्व और भेद समझ सकेंगे।
5. काव्य-दोषों का स्वरूप और भेदों से परिचित होंगे।

2.2 प्रस्तावना :

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण वह अपने विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए अपनी-अपनी भाषा का प्रयोग करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में भाषा का हर शब्द किसी न किसी 'अर्थ' का वाचक होता है। विशिष्ट प्रयोजन के लिए 'शब्द' का जब विशिष्ट प्रयोग किया जाता है, तो मूल अर्थ से अलग अन्य अर्थ स्पष्ट होने लगता है। इस पाठ्यक्रम में काव्य एवं उसके प्रकारों आदि का सामान्य परिचय अपेक्षित है। साथ ही काव्य-गुण और काव्य-दोश के अंतर्गत उसके भेदों का परिचय देखेंगे।

2.3 विषय - विवेचन :

शब्दशक्ति काव्य-गुण, काव्य-दोष का स्वरूप समझने के लिए हमें काव्य का स्वरूप, उससे तात्पर्य, काव्य-गुण का स्वरूप, काव्य-दोष का स्वरूप तथा उसके भेदों से परिचित होना आवश्यक है।

शब्द और अर्थ का परस्पर संबंध रहा है। सार्थक वर्णो के समुह को 'शब्द' कहते हैं। अत: अर्थपूर्ण ध्वनिसमूह को 'शब्द' कहा जाता है। संस्कृत आचार्यों ने शब्द और अर्थ पर बल देकर ही काव्य का स्वरूप स्पष्ट किया है। शब्द और अर्थ को पानी और लहर की उपमा देते हुए तुलसीदास कहते हैं -

''गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।''

अर्थात् पानी में उठनेवाली लहर पानी से अलग दिखाई देती है। वास्तविक रूप में अलग नहीं, बल्कि वह पानी का एक अंग है। तात्पर्य शब्द का महत्त्व तथा अस्तित्व उसके अर्थ पर निर्भर करता है।

2.3.1 शब्दशक्ति

हिंदी व्याकरण में किसी वाक्य के भाव का समझने के लिए प्रयुक्त अर्थ को शब्दशक्ती कहा जाता है। इसि आधार पर उस वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के प्रकार, शक्ति और व्यापकता के आधार पर उसे विभिन्न प्रकार अविभक्त किया जाता है।

2.3.1.1 अभिधा

अभिधा शब्दशक्ति के द्वारा शब्दों के मुख्यार्थ अथवा साक्षात् संकेतित अर्थ का बोध होता है। मुख्य या प्रथम अर्थ का बोध कराने के कारण 'अभिधा' को **'मुख्या'** या **'अग्रिमा'** भी कहते हैं। **डॉ. भगीरथ मिश्र** ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है -

''अभिधा वह शब्दशक्ति या शब्द का व्यापार है, जिसमें साक्षात् संकेतित या मुख्य अर्थ का बोध होता है।''

प्रस्तुत परिभाषा में 'संकेतित' शब्द विशेष अर्थ रखता है। भाषा वैज्ञानिक मानते हैं कि शब्द और अर्थ के बीच एक स्थायी संबंध होता है, उसे 'संकेत ग्रह' कहते हैं। जैसे - 'पुस्तक' शब्द का पुस्तक वस्तु से या 'गाय' शब्द का गाय प्राणि से संकेत संबंध है। जब हम किसी शब्द का उच्चारण करते हैं, तो तत्काल उसका अर्थ श्रोता के मानस पटल पर अंकित हो जाता है। इस संबंध का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है। यह केवल समाज की इच्छा या परंपरा है। अत: संकेत को 'यादृच्छिक' भी कहा गया है।

अत: '**संकेतित अर्थ**' से तात्पर्य उस अर्थ से है, जिसका प्रयोग हम सामान्य जीवन में दैनिक कार्यों के संचालन के लिए करते हैं। संक्षेप में लोगों में प्रचलित कोश सम्मत अर्थ ही 'संकेतित अर्थ' कहलाता है। उदा.

''कनक, कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।
वा खाए बौराय जग, या पाए बौराय।''

इन पंक्तियों में 'कनक' (धतूरा), 'कनक' (सोना), 'मादकता' (नशा) सभी शब्दों का कोश-सम्मत एवं लोक-प्रचलित अर्थ (संकेतित अर्थ) ही लिया गया है। इसलिए यहाँ पर अभिधा शक्ति मानी जाएगी।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस संकेतित अर्थ का ज्ञान हमें कैसे होता है ? उत्तर है, शब्द-बोध के साधनों से हमें शब्द के संकेतित अर्थ का बोध होता है। विद्वानों ने इन साधनों की संख्या आठ निर्धारित की है - (१) व्याकरण, (२) उपमान, (३) कोश, (४) आप्तवाक्य, (५) व्यवहार, (६) प्रसिद्ध पद का सानिध्य, (७) वाक्य शेष और (८) विवृत्ति।

संक्षेप में अभिधा शक्ति के द्वारा शब्द के जिस अर्थ का बोध होता है, उसे **वाच्यार्थ, मुख्यार्थ, संकेतार्थ या अभिधेयार्थ** कहा जाता है। यह प्रसिद्ध अर्थ होता है, जो साधारण व्यवहार, कोश, व्याकरण आदि में मिलता है। वाच्यार्थ अथवा मुख्य अर्थ का बोध कराने वाले शब्द '**वाचक शब्द**' कहलाते हैं।

अभिधा शक्ति द्वारा जिन वाचक शब्दों का बोध कराया जाता है, वे वाचक शब्द तीन प्रकार के होते हैं- (१) रूढ़ (२) यौगिक (३) योगरूढ़।

रूढ़ शब्द - रूढ़ या रूढ़ि शब्द वे हैं, जिनकी कोई व्युत्पत्ति न हो सके; जैसे, घर, तरू, चंद्र, घोडा, पशु, घड़ा, जल, पेड़, पत्ता, लड्डू, पौधा आदि।

यौगिक शब्द - यौगिक वे शब्द हैं, जिनकी व्युत्पत्ति हो सकती है अर्थात् जो प्रकृति और प्रत्यय के योग से बनते हैं। इनका अर्थ व्युत्पत्ति के अनुसार ही होता है; जैसे, 'विद्यालय' यह एक शब्द है, किंतु इसके दो अवयव हैं - विद्या + आलय। यहाँ पर 'ज्ञानार्जन का स्थान' अर्थ 'विद्या और आलय' अवयवों के अर्थों के साथ संगत बैठता है। अत: यह यौगिक शब्द है। अन्य उदाहरण - देवराज, दिवाकर, सहायक, तरूजीवी, पशुतुल्य, नरपति आदि।

योगरूढ़ शब्द – योगरूढ़ या योगरूढ़ि वे शब्द हैं, जो यौगिक होते हैं फिर भी उनका अर्थ रूढ़ होता है। अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय का अलग-अलग अर्थ तो निकलता है, पर उससे शब्द का वास्तविक अर्थ न निकलकर एक विशिष्ट अर्थ निकलता है; जैसे, 'पंकज' (पंक + ज)। यहाँ 'पंक' का अर्थ 'कीचड़' और 'ज' का अर्थ 'उत्पन्न' होता है। किंतु कीचड़ से केवल कमल ही नहीं, अन्य वनस्पतियाँ और दुर्गंध आदि भी उत्पन्न होते हैं, पर सभी को 'पंकज' नहीं कहते, 'कमल' को ही कहते हैं। इसी प्रकार 'गिरिधर' शब्द 'गिरि' और 'धर' दो अवयवों के मिश्रण से बना यौगिक शब्द है। लेकिन इसका प्रत्येक गिरि धारण करने वाले के लिए प्रयोग न करके केवल भगवान श्रीकृष्ण के अर्थ में ही यह शब्द रूढ़ हो गया है। अत: 'पंकज' और 'गिरिधर' योगरूढ़ शब्द हैं। अन्य उदाहरण – निलकंठ, चक्रधर, पशुपति, जलज, गणनायक, गणेश आदि।

2.3.3.2 लक्षणा

आ. मम्मट ने **'काव्य-प्रकाश'** में लक्षणा की परिभाषा इन शब्दों में की है –

''मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढ़ितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थों लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया।।''

अर्थात् मुख्य अर्थ में बाधा होने पर, रूढ़ि अथवा विशेष प्रयोजन के कारण जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाले अन्य अर्थ की प्रतीति होती है, उस शब्दशक्ति को 'लक्षणा' कहते हैं। लगभग यही परिभाषा आ. विश्वनाथ ने भी प्रस्तुत की है। लक्षणा शब्दशक्ति के द्वारा जो शब्द अपना वास्तविक अर्थ प्रकट करते हैं, उन्हें **'लक्षक'** अथवा **'लाक्षणिक शब्द'** कहते हैं और लक्षणा शक्ति के द्वारा जो अर्थ प्रकट होता है, उसे **'लक्ष्यार्थ'** कहते हैं।

आ. मम्मट के अनुसार लक्षणा की तीन विशेषताएँ हैं – (१) मुख्यार्थ या वाच्यार्थ में बाधा, (२) मुख्यार्थ से कुछ न कुछ संबंध (३) रूढ़ि या प्रयोजन द्वारा अन्य अर्थ का बोध।

१) मुख्यार्थ या वाच्यार्थ में बाधा – जब शब्दों के वाच्यार्थ में वांछित अर्थ की उपलब्धि न हो, तो मुख्यार्थ में बाधा मानी जाएगी। उदा. यदि कहा जाए कि, 'घनश्याम गधा है' तो इसमें पशु रूप गधे के मुख्यार्थ में बाधा है; क्योंकि घनश्याम गधे के समान चार पैरों वाला नहीं है।

२) मुख्यार्थ से कुछ न कुछ संबंध – मुख्यार्थ में बाधा होने पर जो अन्य अर्थ लगाया जाता है, उसका मुख्यार्थ से थोडा-बहुत संबंध अवश्य होता है। जैसे उपर्युक्त उदाहरण में घनश्याम यद्यपि गधे के समान चार पैरों वाला नहीं है, लेकिन एक बात में संबंध अवश्य है कि उसकी मूर्खता गधे से समानता रखती है।

३) रूढ़ि या प्रयोजन द्वारा अन्य अर्थ का बोध – लाक्षणिक प्रयोग या तो रूढ़ होता है या ऐसे प्रयोग करने का कोई न कोई प्रयोजन होता है। उक्त वाक्य 'घनश्याम गधा है' में रूढ़ि लक्षणा है। क्योंकि किसी को मूर्ख बताने के लिए उसे 'गधा' कहना रूढ़ हो गया है।

लक्षणा के भेद –

रूढ़ि और प्रयोजन के आधार पर लक्षणा के दो भेद होते हैं – (१) रूढ़ि लक्षणा (२) प्रयोजनवती लक्षणा।

१) रूढ़ि लक्षणा – रूढ़ि लक्षणा में शब्द के नियत और संकेतित अर्थ से भिन्न किसी दूसरे अर्थ का बोध होता है तथा अर्थ की यह भिन्नता किसी रूढ़ि अथवा परंपरा के कारण होती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जिस लक्षणा में रूढ़ि या परंपरा के कारण मुख्यार्थ को छोड़कर उससे संबंध रखने वाला अन्य अर्थ ग्रहण किया जाए, उस स्थान पर रूढ़ि लक्षणा होती है।

उदा. *'राम चौकन्ना है।'*

प्रस्तुत वाक्य में 'चौकन्ना' पद लाक्षणिक है। 'चौकन्ना' का पहले अभिधेय अर्थ (मुख्यार्थ) लिया – 'चार कानों वाला।' इस मुख्यार्थ का वाक्य के 'राम' शब्द के मुख्यार्थ – 'दो कानों वाला व्यक्ति विशेष' के साथ मेल नहीं बैठता। अत: मुख्यार्थ में बाधा हुई। मुख्यार्थ में बाधा होने पर 'लक्षणा' शक्ति से अन्य अर्थ 'सावधान' की प्रतीति हुई। अत: अर्थ निकला – राम दो कानों वाला होते हुए भी चार कानों वाले व्यक्ति के समान (जो चारों ओर की सुन ले) सावधान है। इस अर्थ के बोध होने पर वाक्य में इसकी संगति बैठ गई। अत: यह लाक्षणिक प्रयोग है। 'चौकन्ना' शब्द का मुख्यार्थ से भिन्न 'सावधान'अर्थ में प्रयोग रूढ़ या प्रसिद्ध हो गया है। अत: यह रूढ़ि लक्षणा का उदाहरण हुआ। इसी प्रकार कुशल, प्रवीण, अनुकूल, प्रतिकूल आदि शब्द भी अपने लक्ष्यार्थ के लिए रूढ़ हो जाने के कारण रूढ़ि लक्षणा के उदाहरण हैं।

रूढ़ि लक्षणा में लक्षणा की विशेषता नहीं रह जाती। मुख्य अर्थ की यद्यपि बाधा होती है, परंतु प्रचलन और प्रयोग–प्रवाह के कारण लक्ष्यार्थ इसी प्रकार निकल आता है, जैसे कि यह मुख्यार्थ या वाच्यार्थ हो। अत: इसे लक्ष्यार्थ कहना भी केवल रूढ़ि है। उदा. *मुँह में ताला लगाओ।*

२) **प्रयोजनवती लक्षणा** – जहाँ वाच्यार्थ का परित्याग और लाक्षणिक अर्थ का ग्रहण किसी विशिष्ट प्रयोजन से किया जाता है, वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जब किसी शब्द के निश्चित अर्थ को न लेकर किसी अन्य अर्थ को, किसी विशेष प्रयोजन से, ग्रहण किया जाता है, तब प्रयोजनवती लक्षणा होती है।

उदा. *'गंगा में आश्रम है।'*

प्रस्तुत वाक्य में 'गंगा' पद लाक्षणिक है। 'गंगा' शब्द का मुख्यार्थ है – 'निश्चित पथ से प्रवहमान जल विशेष'। जल में या जल पर आश्रम नहीं हो सकता। अत: यहाँ पर 'गंगा' शब्द के मुख्यार्थ का 'आश्रम' शब्द के मुख्यार्थ के साथ मेल नहीं बैठता। अत: मुख्यार्थ में बाधा हुई। मुख्यार्थ में बाधा होने पर 'लक्षणा' शक्ति से अन्य अर्थ 'गंगा का तट' की प्रतीति हुई। फलत: इस अर्थ की वाक्यार्थ के साथ संगति बैठ गई; किंतु इससे लाभ क्या हुआ? इसे 'गंगा के तट पर आश्रम है' ऐसा कहा जा सकता था; किंतु इससे प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि 'तट' तो दूर–दूर तक की भूमि को अपने में समेटे रहता है।

अत: 'तट' शब्द के प्रयोग से आश्रम की 'शीतलता एवं पवित्रता' का बोध संभव नहीं था। इसलिए गंगा शब्द का लाक्षणिक प्रयोग किया गया जिससे निकट-नैकट्र्य भाव संबंध होने के कारण उससे अतिशय शीतलता एवं प्रवित्रता का प्रयोजन व्यक्त होता है। अत: यहाँ पर प्रयोजनवती लक्षणा है।

प्रयोजनवती लक्षणा के भी दो भेद होते हैं -(अ) गौणी (आ) शुद्धा ।

(अ) गौणी लक्षणा - जहाँ पर मुख्य अर्थ की बाधा होने पर सादृश्य संबंध के आधार पर अर्थात् समान रूप, गुण या धर्म के द्वारा अन्य अर्थ ग्रहण किया जाए, वहाँ पर 'गौणी लक्षणा' होती है।

उदा. *'लाला लजपतराय पंजाब-केसरी थे।'*

प्रस्तुत वाक्य में लाला लजपतराय को केसरी अर्थात् सिंह कहा गया है; अतएव मुख्यार्थ में बाधा है; क्योंकि कोई मनुष्य सिंह नहीं होता। किंतु 'केसरी' शब्द के प्रयोग से लालाजी के शौर्य, पराक्रम, वीरता आदि गुणों का उल्लेख अभीष्ट है; अतएव लालाजी में और केसरी में समानता अभिप्रेत है।

(आ) शूद्धा लक्षणा - जहाँ पर मुख्य अर्थ की बाधा होने पर सादृश्य के अतिरिक्त अन्य संबंधों के द्वारा दूसरा अर्थ ग्रहण किया जाए, वहाँ पर 'शुद्धा लक्षणा' होती है। ये अन्य संबंध अनेक होते हैं; जैसे - सामीप्य, तात्कर्म्य, अंगांगि, आधाराधेय, कार्यकारण आदि।

उदा. ' *'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।*
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ।।''

यहाँ आँचल में दूध होना बाधित है; अत: सामीप्य संबंध के द्वारा स्तन में दूध लक्ष्यार्थ है।

अन्य उदा.-१) *मेरे सिर पर क्यों बैठते हो ?*	सामीप्य संबंध
२) *पानी में घर बनाया है, तो सर्दी लगेगी ही !*	
३) *वह मेरे लिए राजा है।*	तात्कर्म्य संबंध
४) *इस घर में नौकर मालिक है।*	
५) *राखी सजी पर कलाई नहीं है।*	अंगांगि संबंध
६) *ये चरण मेरे लिए कल्याणकारी है।*	
७) *जंगल में मचान बोलते हैं।*	
८) *दीवारों के भी कान होते हैं।*	आधाराधेय संबंध
९) *सारा घर तमाशा देखने गया है।*	
१०) *सम्पत्ति ही सुख है।*	कार्य-कारण संबंध
११) *सत्संगति ही मोक्ष है।*	

2.3.3.3 व्यंजना

व्यंजना का शब्दार्थ है – विशेष रूप से स्पष्ट करना, खोलना या विकसित करना। अभिधा और लक्षणा शक्तियों के अपना अर्थबोध कराने के बाद जिस शक्ति से अन्य अर्थ का बोध होता है, उसे **'व्यंजना'** कहते हैं। ऐसे शब्द को **'व्यंजक'** और अर्थ को **'व्यंग्यार्थ'** कहा जाता है।

व्यंजना शब्द-शक्तियों में सर्वाधिक बलवती शक्ति मानी जाती है। इसके कुछ कारण हैं –

१) व्यंजना शक्ति एक ऐसी शक्ति है, जिसके लिए शब्द में निहित अर्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती। 'अभिधा' शब्द के मुख्यार्थ का बोध कराती है, तो 'लक्षणा' मुख्यार्थ से किसी-न-किसी रूप में सम्बद्ध अर्थ का बोध कराती है; किंतु व्यंजना मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ का बोध कराती है।

२) अभिधा और लक्षणा तो केवल शब्द में ही निहित रहती हैं, जबकि व्यंजना शब्द और अर्थ दोनों में विद्यमान रहती है।

३) अभिधा और लक्षणा का व्यापार तो एक ही बार होता है, जबकि व्यंजना का व्यापार एक से अधिक बार होता है।

व्यंजना एक उदाहरण दृष्टव्य है –

एक मित्र ने दूसरे से कहा, ''मीत, तिहारे मुख पै शठता अति दरसात।''
दूसरे मित्र ने उत्तर दिया, ''मेरो मुख दरपन भयो, अब जानी यह बात।''

यहाँ 'मुख-दर्पण' का अर्थ बताने में अभिधा असमर्थ है। लक्षणा से यह अर्थ हुआ कि मेरे मुख में तुम्हारा मुख दीखता है। इसके बाद भी वांछित अर्थ नहीं निकला, जो व्यंजना द्वारा ही निकलता है; वह यह कि शठता जो तुम्हें दिखाई देती है, वह तुम्हारी ही है, जो मेरे दर्पण के समान मुख में प्रतिबिंबित होती है; क्योंकि तुम सामने खडे हो। वास्तव में मैं शठ नहीं, तुम शठ हो।

व्यंजना के भेद –

व्यंजना शक्ति का शब्द और अर्थ दोनों में प्रवेश रहता है। इसी आधार पर व्यंजना के दो भेद किए जाते हैं- (१) शाब्दी व्यंजना (२) आर्थी व्यंजना।

१) शाब्दी व्यंजना – जहाँ पर शब्द की प्रधानता है अर्थात् जहाँ पर शब्द विशेष के कारण व्यंग्यार्थ निकलता है और उस शब्द के स्थान पर अन्य शब्द रखने से अर्थ न निकले; वहाँ पर 'शाब्दी व्यंजना' होती है।

उदा. *''चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर*
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।।''

बिहारी के इस दोहे का सरलार्थ है कि राधा-कृष्ण की जोड़ी चिरंजीवी हो; उनका पारस्परिक प्रेम गहरा है। इस विषय में कोई भी किसी से कम नहीं। यदि राधा वृषभानुसुता है, तो कृष्ण भी हलधर अर्थात् बलराम के भाई हैं। परंतु इसके बाद जो अर्थ निकलता है (वृषभ + अनुजा = बैल की छोटी बहन अर्थात् गाय और 'हलधर के बीर' अर्थात् बैल के भाई बैल), उसका व्यंग्यार्थ हुआ कि राधा-कृष्ण की जोड़ी बिलकुल ठीक है। इन दोनों में गहरा प्रेम है और प्रेम भी बराबर है; क्योंकि एक तो बैल का भाई है, दूसरी बैल की छोटी बहन। यदि उक्त दोहे में 'वृषभानुजा' और 'हलधर' शब्दों के स्थान पर इनके पर्यायवाची शब्द रख दिए जाए, तो व्यंग्यार्थ नहीं रहेगा। अत: यहाँ शाब्दी व्यंजना है।

२) **आर्थी व्यंजना** - जब व्यंग्यार्थ शब्द में न रह कर अर्थ में निहित रहता है, तब आर्थी व्यंजना होती है। व्यंजना शक्ति की यही विशेषता है कि वह शब्द और अर्थ, दोनों में निहित रहती है; जबकि अभिधा और लक्षणा केवल शब्द तक ही सीमित रहती हैं। अत: स्पष्ट है कि अभिधा और लक्षणा केवल शब्द शक्तियाँ ही हैं, जबकि व्यंजना शब्द शक्ति के साथ-साथ 'अर्थ शक्ति' भी है। आर्थी व्यंजना वक्ता, वाक्य, अन्यसन्निधि, वाच्य, प्रकरण, देश-काल आदि की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराती है। वक्ता की विशेषता का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

''सागर कूल मीन तड़पत है, हुलसि होत जल पीन।''

यह कथन सामान्यत: कोई महत्त्व नहीं रखता; परंतु जब इस बात का पता चल जाता है कि इसको कहने वाली गोपिकाएँ हैं, तब इसका यह अर्थ निकलता है कि हम कृष्ण के समीप होते हुए भी, मछली के समान तड़प रही हैं। कृष्ण के दर्शन से हमें वैसा ही आनंद प्राप्त होगा, जैसा कि मछली को पानी में जाने से होता है।

प्रकरण या प्रसंग की विशेषता का एक अन्य उदाहरण देखिए -

''नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौ बंध्यौ, आगे कौन हवाल।।''

उक्त उदाहरण में व्यंग्यार्थ का प्रसार पूरे प्रकरण या प्रसंग तक है। इसमें 'अली' और 'कली' का व्यंग्यार्थ- जिसका संबंध महाराजा जयसिंह एवं उनकी नवविवाहिता पत्नी से है - प्रसंग पर आधारित है। अत: जब तक प्रसंग का ज्ञान न होगा, तब तक इसके व्यंग्यार्थ का बोध भी नहीं रहेगा। प्रस्तुत पद का वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ इस प्रकार है -

वाच्यार्थ - ''हे भौरे ! तू जिस कली के प्रति इतना आसक्त है, उसमें अब तक न तो मधुर मधु ही है और न ही परागकण; क्योंकि अभी तक उसका पूरा विकास नहीं हुआ है। अभी तुम्हारी यह स्थिती है, तो जब इस कली का फूल बन जाएगा, तो तुम्हारी क्या स्थिति होगी?''

व्यंग्यार्थ – ''हे मिर्जाराजा जयसिंह ! तू जिस नवविवाहिता रानी के प्रति इतना आसक्त है, उसके यौवन का अभी तक पूर्ण विकास नहीं हुआ है। अभी तुम्हारी यह स्थिति है, तो जब उसके यौवन का पूर्ण विकास हो जाएगा, तब तुम्हारी क्या स्थिति होगी?''

2.3.2 काव्य–गुण :

काव्य-सर्जना में कुछ तत्त्व सक्रिय रहते हैं, जिनका उपयोग कवि या रचनाकार करता है। शब्द और अर्थ तो काव्य के शरीर होते हैं तथा रस ही उसकी आत्मा के स्थान पर रहता है। रस ही काव्य में मुख्य होता है और 'गुण' इस मुख्य रस के ही धर्म होते हैं और काव्य में रस के साथ गुण का साक्षात् सम्बन्ध रहता है।

रस को काव्य की आत्मा और अलंकारों को कविता का बाह्य सौंदर्य बढानेवाला धर्म स्वीकारने वाले आचार्यो ने गुण का उल्लेख रस और अलंकार दोनों के संदर्भ में किया है। आचार्य मम्मट ने गुण की परिभाषा दी है –

''ये रसस्यादिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।

उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥''

अर्थात् जिस तरह मनुष्य के शरीर में शौर्य आदि गुणों की स्वाभाविक स्थिति होती है, वैसे ही कविता में रस को उत्कर्ष प्रदान करनेवाले धर्म को गुण कहा जाता है।

'अग्निपुराण' में कहा गया है कि किसी नारी के शरीर पर स्वाभाविक सौंदर्य आदि गुणों के अभाव में जिस तरह हार आदि आभूषण भार लगते हैं, वैसे ही अलंकारों से युक्त होकर भी काव्य–गुण के अभाव में आनंद प्राप्त नहीं हो सकता है। आचार्य दंडी ने गुण को काव्य का प्राण रूप माना है। गुणों की संख्या के बारे में साहित्यशास्त्रियों के बीच प्रारंभ में मतभेद रहे हैं। लेकिन अंततः काव्य–गुणों की संख्या दस मानी हैं।

1) श्लेष 2) प्रसाद 3) समता 4) समाधि 5) माधुर्य 6) ओज 7) सुकुमारता 8) अर्थव्यक्ति 9) उदारता 10) कान्ति।

अधिकांश आचार्यों ने (दंडी, मम्मट, कुंतक, हेमचंद्र, विश्वनाथ, आनंदवर्धन आदि) माधुर्य, ओज एवं प्रसाद इन तीन गुणों को प्रमुख माना है। आचार्य मम्मट तथा विश्वनाथ ने इन्हीं तीन गुणों में अन्य का समावेश स्वीकृत किया है। हिन्दी के अधिकतर आचार्यों ने भी इन्हीं तीन गुणों को महत्त्वपूर्ण माना है। इन गुणों का परिचयात्मक विश्लेषण निम्नलिखित हैं –

2.3.2.1 माधुर्य गुण :

जिस काव्य की रचना से अन्तःकरण आनंद से भर जाय, वहाँ माधुर्य गुण होता है। कविता में माधुर्य गुण के समावेश के कारण श्रृंगार आदि रसों की प्रस्तुति में आकर्षण का समावेश होता है। इसमें मधुरता–

व्यंजक शब्द तथा वर्ण आदि का प्रयोग किया जाता है। अत: कविता में लगातार रसात्मकता और मधुरता का बोध होता रहे।

माधुर्य गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(अ) इसमें ट, ठ, ड, ढ का प्रयोग न हो।

(ब) वर्गान्त्य वर्णों के प्रयोग से सुकुमारता बढती है।

(क) र, ण वर्ण भी माधुर्य – व्यंजक होते हैं।

(ड) इसमें बहुत छोटे–छोटे समास प्रयुक्त हो।

उदा. : *''कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।*
कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही।। (रामचरितमानस)

2.3.2.2 ओज गुण :

जिस काव्य–गुण के कारण चित्त में स्फूर्ति एवं मन में तेज उत्पन्न हो, उसे ओज कहा गया है। ओजपूर्ण कविता के सुनने मात्र से मन में जोश और आवेग उत्पन्न हो जाता है। इसीकारण वीर, बीभत्स और रौद्र जैसे रसों के लिए ओज गुण की योजना की जाती है। वक्र अर्थवाले लम्बे सामासिक पदों और कठोर वर्णों से बने काव्य द्वारा ओज गुण की प्रस्तुति की जाती है।

ओज गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(अ) ऊपर–नीचे रेफ युक्त वर्णों का प्रयोग हो।

(ब) ट, ठ, ड, ढ तथा श, ष वर्णों का प्रयोग ओजवर्धक होता है।

(क) इसमें दीर्घ समासवाली रचना होनी चाहिए।

(ड) इसकी पद योजना या रचना औचित्यपूर्ण हो।

उदा. : *''इंद्र जिमि जंभ पर बाडव सुअंभ पर*
रावन–सदंभ पर रघुकुल राज है,
पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाहु पर,
ज्यों सहस्त्रबाहु पर राम द्विजराज हैं। (कवि भूषण)

2.3.2.3 प्रसाद गुण :

आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि सूखे ईंधन में अग्नि के समान या धुले हुए वस्त्र में पानी की भाँति तत्काल मन में व्याप्त हो जानेवाला गुण प्रसाद है। यह गुण ऐसा सरल और सुबोध अर्थ व्यक्त करता है कि पंक्तियों से गुजरते ही कविता साकार हो उठती है।

प्रसाद गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(अ) प्रसाद गुण के लिए कोई वर्ण संघटना नहीं है।

(ब) प्रसाद गुण के लिए कोई वर्ण त्याज्य या सीमित नहीं है।

(क) सभी रसों में तत्काल अर्थ प्रदान करता है।

(ड) प्रसाद गुण व्याप्त एवं प्रसन्नता देता है।

उदा. : *''चारूचन्द्र की चंचल किरणे, खेल रहीं हैं जल–थल में।*
बिमल चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अंबरतल में।
पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से।
मानो झीम रहे हैं तरू भी मन्द पवन के झोंको से।।'' (पंचवटी)

2.3.3 काव्य–दोष :

आचार्य भरत ने जब महान निर्दोषिता को काव्य–गुण की संज्ञा दी थी, तब दोषरहित काव्य–सृजन की पहल की थी। आचार्य भामह ने लिखा है कि काव्य–सृजन न करना कोई अपराध नहीं है, लेकिन सदोष काव्य– रचना करना तो साक्षात् मृत्यु है।

काव्य में दोषों को टालना कविता की प्रारंभिक अनिवार्यता के रूप में अनेक साहित्यशास्त्रियों ने मान्यता दी हैं। मम्मट ने तो काव्य की परिभाषा में ही दोषों का विरोध किया है –

''तद्दोषौ शब्दार्थों सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि।''

आचार्य भरत एवं वामन ने काव्य–दोष को काव्य–गुण का विपर्य माना है। काव्य–दोषों की संख्या पर काफी विचार–विमर्श विविध विद्वानों ने किया हैं। आचार्य विश्वनाथ ने दोष की परिभाषा देते हुए लिखा है – ''रसापकर्षका दोषा:'' मतलब 'दोष' वे हैं, जो रस या काव्य के आत्म तत्त्व के अपकर्षक होते हैं। लेकिन सभी मतों का सार रूप स्वीकार करें, तो आज काव्य–दोष के तीन भेद स्वीकार किए गये हैं – शब्द दोष, अर्थ दोष, रस दोष।

2.3.2.1 शब्द दोष (पद दोष) :

काव्य में आनंद प्रदान करनेवाला प्रारंभिक अवयव शब्द या पद होता है। इस नाते यदि शब्दों के संघटन में ही दोष हो, तो संपूर्ण कविता का प्रभाव तथा आनंद समाप्त होता है। इसीलिए जहाँ शब्द या पद रचना और प्रयोग के कारण काव्यार्थ की प्रतीति में बाधा उत्पन्न होती है, वहाँ पद्गत दोष या पद दोष कहा जाता है। आचार्य मम्मट ने पद दोष के १६ प्रकार बताए हैं। उनमें से कुछ दोषों का विवेचन निम्न प्रकार से हैं–

(अ) श्रुति कटुत्व : काव्य रचना करते समय सुनने में मधुर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। रस के विपरित कानों को खटकनेवाले कठोर वर्ण प्रयोग से श्रुति कटुत्व दोष होता है।

उदा. : *''ठाट है सर्वत्र घर या घाट है।*

लोक-लक्ष्मी की विलक्षण हाट है।''

इन पंक्तियों में ट, ठ जैसे कठोर वर्ण प्रयोग के कारण श्रुति कटुत्व आया है।

(ब) अश्लीलता : यह दोष किसी ऐसे पद के प्रयोग के कारण होता है, जिससे अभिप्रेत अर्थ निकलने के साथ ही कोई लज्जा, घृणा और अमंगलकारी अर्थ भी निकलते हैं।

उदा. : *''गिर जाय कहीं यदि किसी से मूल्यवान वस्तु*
लोभ से उठाना उसे चाटना है नाक का।''

यहाँ 'नाक का चाटना' घृणा व्यंजक होने के कारण अश्लीलता प्रकट करता है।

शब्द या पद दोषों के माध्यम से यही सूचित होता है कि कविता में सरल, सहज एवं बोध गम्य शब्दों का प्रयोग होना चाहिए।

2.3.3.2 अर्थगत दोष (अर्थ दोष) :

काव्य में शब्दों का अर्थ-ग्रहण ही आनंद एवं प्रभाव उत्पन्न करता है। जहाँ अर्थ ग्रहण में बाधा होती है, वहाँ अर्थ दोष पाए जाते हैं। आचार्य मम्मट ने २३ प्रकार के अर्थ दोषों का उल्लेख किया है। अर्थ समझने में किसी प्रकार के कष्ट नहीं होने चाहिए। अर्थ में परस्पर विरोध नहीं होने चाहिए। अर्थ प्रकटीकरण में नवीनता आनी चाहिए। अर्थ को जान लेने पर चित्त में न तो अमंगल की भावना होनी चाहिए और न उद्वेग भी उत्पन्न होना चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार किसी पद के मुख्य अर्थ के अनुपकारी होने पर अपुष्ट दोष होता है। जिस पद की अनुपस्थिति पर भी अर्थ को हानि नहीं पहुँचती हो।

उदा. : *''सारे उपवन के विशाल वायुमण्डल में*
प्रेमी प्रीति-संभव के मंगल मनाते हैं।''

इस पद में विशाल विशेषण निरर्थक है; क्योंकि वायु मंडल तो विशाल होता ही है। जहाँ एक ही शब्द और अर्थ की बार-बार आवृत्ति हो, वहाँ पुनरुक्त अर्थ दोष होता है। इससे कवि के शब्द दारिद्र्य का पता चलता है।

उदा. : *''धन्य है कलंक हीन जीना एक क्षण का*
युग-युग जीना सकलंक धीक्कार है।''

स्पष्ट है कि पुनरूक्त अर्थ दोष के कारण कविता वे प्रभाव और आनंद में बाधा उपस्थित हुई है।

2.3.3.3 रसगत दोष (रस दोष) :

रस कविता का अनिर्वचनीय आनन्द है, लेकिन जहाँ रसास्वाद में बाधा उत्पन्न हो जाती है - वहाँ विद्वानों ने विविध रस दोषों को स्वीकृत किया है। वैसे देखा जाय तो कविता में रस का स्पष्ट उल्लेख अपने आप में एक दोष है। कई कवियों ने रस के स्थायी, संचारी और व्याभिचारी भावों को स्वयं वर्णित कर रस

के स्वाभाविक उद्रेक को बाधित किया है। आचार्य मम्मट ने तेरह प्रकार के रस दोषों की चर्चा की है। स्वशब्द वाच्यता तो सर्वप्रमुख रस दोष है।

उदा. : *''आह कितना सकरूण मुख था,*
आर्द्र सरोज अरुण मुख था।''

इन पंक्तियों में करुण रस का कवि स्वयं उल्लेख करता है।

जहाँ रस स्थायीभाव या व्यभिचारी भाव की पुष्टि उनसे सम्बन्धित भावों का वर्णन किए बिना ही उनके शब्दश: कथन से की जाए, वहाँ रस दोष होता है।

उदा. : *''ज्यों ही चूमा प्रिय ने उसको*
लज्जा मन आयी।''

रसों के पारस्परिक विरोध की एक पंक्ति निम्नलिखित रूप ङ्कें दृष्टव्ङ्क है -

उदा. *''इस पार प्रिये तुम हो मधु है*
उस पार न जाने क्या होगा?''

कुल मिलाकर दोषपूर्ण काव्य निंदा का पात्र होता है। चाहे उसमें शब्द, अर्थ और रस दोष में से कोई भी एक हो। कविता का अपकर्ष करनेवाले दोषों से बचकर ही कोई श्रेष्ठ कवि हो सकता है।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. शब्दशक्ति के प्रमुख .... प्रकार हैं।

   (अ) दो (ब) तीन (क) पाँच (ड) एक

2. अभिधा और लक्षणा शक्तियों से अपना अर्थबोध कराने के बाद जिस शक्ति से अन्य अर्थ का बोध होता है, उसे .... कहते है।

   (अ) व्यंजना (ब) अभिधा (क) लक्षणा (ड) मुख्यार्थ

3. गद्य और पद्य के मिले-जुले रूप को .... कहा जाता है।

   (अ) नाटक (ब) एकांकी (क) चंपू काव्य (ड) पद्य

4. कविता की आत्मा .... होती है।

   (अ) रस (ब) शब्द (क) अर्थ (ड) अलंकार

5. अधिकतर विद्वान काव्य में प्रमुख .... गुण मानते हैं।

   (अ) पाँच (ब) तीन (क) दो (ड) एक

6. ओज गुण मन में .... उत्पन्न करता है।

   (अ) तेज (ब) निराशा (क) आनंद (ड) क्रोध

7. जहाँ अर्थ ग्रहण में बाधा होती है वहाँ .... दोष होता है।

(अ) पद (ब) अर्थ (क) शब्द (ड) श्रुति

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. **अभिधा–** स्पष्ट उक्ति
2. **लक्षणा –** सामान्य अर्थ से भिन्न अर्थ देनेवाली शक्ति
3. **व्यंजना –** भाव प्रकट करने की एक शब्द शक्ति
4. **योग –** व्युत्पत्ति
5. **तरू –** वृक्ष
6. **संध्या –** शाम
7. **चिरजीवि –** अमर
8. **जोरी –** जोडी
9. **वृषभ –** बैल
10. **नूपुर –** पायल
11. **चारू –** सुंदर
12. **तरू –** वृक्ष, पेड
13. **बिमल –** स्वच्छ, पवित्र
14. **उपवन –** बगिचा
15. **अरूण –** लाल रंग

2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ) उचित पर्याय.

1. (ब) 2. (अ) 3. (क) 4. (अ) 5. (ब) 6. (अ) 7. (ब)

2.7 सारांश :

1. काव्यशास्त्र के अंतर्गत काव्य और साहित्य एक-दूसरे के समानार्थी समझे गए हैं।
2. शब्दशक्ति के तीन भेद अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का विवेचन करना उपयुक्त है।
3. काव्य-गुण मुख्य रस के धर्म होते हैं। काव्य में रस के साथ गुण का साक्षात् सम्बन्ध रहता है।
4. काव्य-दोष के तीन भेद स्वीकार किए गये हैं - शब्द दोष, अर्थ दोष, रस दोष।

5. काव्य-सर्जना में शब्द, अर्थ तथा रस आदि कुछ तत्त्व सक्रिय रहते हैं, जिसका उपयोग कवि या उचनाकार करता है।

2.8 स्वाध्याय :

निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिए।

1. अभिधा।
2. लक्षणा।
3. व्यंजना।
4. काव्य-गुण की विवेचना।
5. माधुर्य गुण।
6. ओज गुण।
7. प्रसाद गुण।
8. काव्य-दोष की विवेचना।
9. पदगत दोष।
10. अर्थगत दोष।
11. रसगत दोष।

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. ग्रंथों आदि से प्रयुक्त काव्य, के शब्दशक्ति प्रकारों का वर्गीकरण कीजिए।
2. विविध कविताओं में माधुर्य, ओज, प्रसाद गुण ढूँढकर लिखिए।
3. विविध कविताओं में पद्‌गत, अर्थगत, रसगत दोष लिखिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र
2. काव्यशास्त्र - डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी
3. काव्यशास्त्र - डॉ. बालेन्दु तिवारी, डॉ. सुरेश माहेश्वरी
4. साहित्यशास्त्र - डॉ. भरत सगरे
5. हिंदी भाषा और साहित्यशास्त्र - डॉ. माधव सोनटक्के

❑❑❑

इकाई –3
रस : स्वरूप, रस के अंग, रस के भेद

अनुक्रम

3.1 उद्‌देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय – विवेचन

3.3.1 रस : स्वरूप

आचार्य भरतमुनि

आचार्य विश्वनाथ

आचार्य मम्मट

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

डॉ. दशरथ ओझा

रस की विशेषताएँ

3.3.2 रस के अंग

स्थायी भाव

विभाव

अनुभाव

संचारी भाव/व्याभिचारी भाव

3.3.3 रस के भेद

श्रृंगार रस

वीर रस

हास्य रस

रौद्र रस

भायानक रस

बीभत्स रस

करूण रस

अद्‌भुत रस

शांत रस

वात्सल्य रस

भक्ति रस

3.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 क्षेत्रीय कार्य

3.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्‌देश्य :

प्रस्तुत इकाई पढने के पश्चात् आप,

1. रस के महत्त्व से परिचित होंगे।
2. रस की विभिन्न परिभाषाओं से अवगत होंगे।
3. रस के विभिन्न अंगों से परिचित होंगे।
4. रस के विभिन्न भेदों से परिचित होंगे।
5. काव्य में प्रयुक्त रस पहचानने में सक्षम होंगे।

3.2 प्रस्तावना :

'रस' शब्द भारतीय संस्कृति और साहित्य के चरम विकास से संबंधित है। भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में 'रस' शब्द का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट तत्त्व के लिए होता है। फलों का रस, औषधि का रस, परमात्मा के भाव से उत्पन्न रस, संगीत द्‌वारा उत्पन्न रस आदि रस के विभिन्न अर्थ दिखाई देते हैं। जीवन के सुव्यवस्थित निर्माण के लिए रस अनिवार्य है। अत: इससे स्पष्ट होता है कि रस आस्वाद्‌य तत्त्व और द्रवत्त्व के रूप में दिखाई देता है।

'रस' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत में इस प्रकार दी है, ''रसस्यतेऽ सौ इति रस:'' अर्थात जिससे आस्वाद मिले वही रस है। रस शब्द साहित्य में ही नहीं, बल्कि जीवन के हर पहलुओं में भिन्न-भिन्न अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यानुभूति को 'रस' संज्ञा से अभिहित किया गया है। काव्य का लक्ष्य तथा उद्देश्य पाठक को आनंदानुभूति प्रदान करना है। इस काव्यजन्य आनंद का ही दूसरा नाम रस है।

साहित्य में रस को आत्मा की संज्ञा से अभिहित किया है। रस रहित काव्य सफल काव्य नहीं होता। अत: काव्यानंद को ही रस कहा गया है।

3.3 विषय विवेचन :

अब हम रस का स्वरूप, रस की परिभाषाएँ, रस के अंग तथा रस के भेदों का अध्ययन करेंगे। अत: भारतीय साहित्य में रस के स्वरूप पर विविध कोनों से विचार-विमर्श हुआ। उन्होंने अपनी-अपनी दृष्टि से रसांगों पर विवेचन दिया। कई आचार्यों-मनीषियों द्वारा रस पर सम्यक विवेचन मिलता है। निम्नांकित आचार्यो द्वारा दी हुई परिभाषाओं से रस के स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है।

3.3.1 रस का स्वरूप :

आचार्य भरतमुनि :

रस सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि माने जाते हैं। उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' में रस के विभिन्न अवयवों का विवेचन किया है। भरतमुनि के कार्य को भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक, अभिनव गुप्त, भोजराज, विश्वनाथ आदि परवर्ती आचार्यों ने आगे बढाया। आगे चलकर हिंदी के रीतिकालीन आचार्यों ने भी रस सिद्धांत का महत्त्व स्वीकार किया है। तथा रस को परिभाषित करने का प्रयास किया है। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में रस की परिभाषा इस प्रकार दी है...

''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगा द्रस निष्पत्ति:''

उनके मतानुसार विभाव अनुभाव और व्याभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस रस सूत्र में रस निष्पत्ति के लिए आवश्यक विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव इन तीन अंगों का निर्देश किया गया है। भरतमुनि के रस-सूत्र पर काफी विचार-विमर्श हुआ। कई आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रूप में इसे परिभाषित करने का प्रयास भी किया है। स्वयं भरतमुनि ने अपने रस-सूत्र की व्याख्या देते हुए लिखा है - ''जिस प्रकार नाना व्यंजनों, औषधियों और द्रव्यों के संयोग से रस (भोज्यरस) की निष्पत्ति होती है, उसी प्रकार नाना भावों के उपरांत वो स्थायी भाव रस रूप को प्राप्त होते हैं।'' अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्याभिचारी भावों के संयोग से सामाजिक में स्थित स्थायी भावों का उद्रेक होता है और वे ही स्थायी भाव रस रूप को प्राप्त होता है।

आचार्य अभिनव गुप्त:

भरमुनि के रस-सूत्र के व्याख्याता अभिनव गुप्त ने रस को 'विषय' से निकालकर 'विषयी' में समाविष्ट करने का सफल प्रयास किया है। वे रस को 'अस्वाद्य' न मानकर 'आस्वाद्य' मानते हैं। सामाजिक किसी विशिष्ट प्रसंग के साथ एकाकार होकर आत्म-विभोर हो जाता है। यही आनंदमयी चेतना रस है।

आचार्य विश्वनाथ:

अभिनव गुप्त के पश्चात् रस के स्वरूप का सर्वांग विवेचन आचार्य विश्वनाथ ने किया है। वे कहते हैं-

''सत्त्वोद्रेक अखण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः।
लोकोत्तर चमत्कार प्राणः कैश्चिद् प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्त्वेनायमास्वाद्यते रसः।।''

अर्थात् चित्त में सत्वोद्रेक की स्थिति में विशिष्ट संस्कारों से युक्त सहृदय, अखंड, स्वप्रकाशानंद, चिन्मय, अन्य सभी प्रकार के ज्ञानों से विमुक्त, ब्रह्मानंद सहोदर, लोकोत्तर चमत्कार, प्राण रस के निज स्वरूप से अभिन्न होकर अस्वादन करते हैं।

आचार्य मम्मट :

आचार्य मम्मट के अनुसार, ''विभावादि के संयोग से निष्पन्न होनेवाली आनंदात्मक चित्तवृत्ति ही रस है।''

आचार्य रामचंद्र शुक्ल :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने रस को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''सत्त्वोद्रेक या हृदय की मुक्तावस्था ही 'रस' है।''

डॉ. दशरथ ओझा :

इन्होंने रस की परिभाषा देते हुए लिखा है, ''काव्य के पढने या नाटक के देखने से हमारे हृदय में जो क्रोध, घृणा, प्रेम आदि भाव जगते हैं, उसे 'रस' कहते हैं।''

डॉ. भगीरथ मिश्र :

डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार, ''रस एक विशेष प्रकार का आनंद है, जो काव्य के मनन, पठन, श्रवण और अभिनय देखने से सामाजिक को प्राप्त होता है।''

उपरोक्त परिभाषओं से स्पष्ट होता है कि, आचार्य मम्मट से लेकर नगेंद्र तक आचार्यों ने रस को इसी रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार 'स्व' पर की भावना से रहित, देश-काल के बंधनों से मुक्त सामाजिक जब एक आनंदमयी स्थिति में पहुँच जाता है, तब उस स्थिति को रसासक्ति कहते हैं। अर्थात् किसी सामाजिक का किसी विशिष्ट आनंदमयी घटना से आनंदमयी स्थिति में पहुँच जाना तथा अत्म-विभोर होना ही रस है।

रस की विशेषताएँ :

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि, रस आस्वादरूप है। सहृदय सामाजिक जिसका रसन या भोग करता है। रस निर्विघ्न तथा अखंड होता है। रस चिन्मय, स्वप्रकाश और अन्य ज्ञानरहित होता है। रस आस्वादन के समय अन्य किसी प्रकार के ज्ञान का स्पर्श नहीं होता। रस

लोकोत्तर चमत्कार प्राण है। रस की स्थिति अपने स्वरूप से भिन्न रूप होती है। काव्य के पठन, श्रवण से तथा नाटक को दृष्य रूप में देखने से सामाजिक रसानंद प्राप्त करता है। अत: रस ब्रह्मानंद सहोदर होता है।

3.3.2 रस के अंग :

''विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:'' भरतमुनि के इस रस-सूत्र के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। अत: इन्हें ही रस के अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। परंतु भरतमुनि के रस सूत्र में रस के केवल तीन ही अंगों का उल्लेख है। इसमें स्थायी भाव का उल्लेख नहीं मिलता है। अत: स्थायी भाव को मिलाकर रस के चार अंग माने जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. स्थायीभाव
2. विभाव
3. अनुभाव
4. व्याभिचारी भाव

रस के इन चार अंगों का विवेचन निम्न प्रकार किया जा सकता है -

1. स्थायी भाव :

भरतमुनि से लेकर आज तक के आचार्यों द्वारा किए गए विचार विमर्श और निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'सहृदय' सामाजिक के हृदय में जन्मजात वासना रूप में वे अनुभूतियाँ हैं, जो स्थायी रूप से विद्यमन रहती है। इन अनुभूतियों को वृत्तियाँ भी कहा जाता है। ये वृत्तियाँ और अनुभूतियाँ अन्य अनुभूतियों और वृत्तियों की तुलना में अधिक तीव्र, गतिशील एवं सूक्ष्म होती है। इन्हें मूल वृत्ति, मौलिक मनोवेग या स्थायी भाव भी कहा जाता है।

स्थायी भाव सहृदय के हृदय में उद्दिप्त होकर संचारी भाव की सहाय्यता से रस रूप में परिणत होते हैं। इनका विकास धीरे-धीरे होता है और ये सहृदय के हृदय में देर तक अस्तित्व में रहते हैं। स्थायी भाव मानव चित्त की भावना अथवा संस्कार है। स्थायी भाव सहृदय के हृदय में छिपे रहते हैं, जो विभाव और अनुभाव से उद्दिप्त होते हैं। स्थायी भावों की अभिव्यक्ति मनोविकारों और भौतिक या शारीरिक प्रतिक्रियाओं के रूप में होती है।

स्थायी भावों की संख्या को लेकर विद्वानों में विवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार स्थायी भावों की संख्या नौ है, तो कुछ विद्वानों के अनुसार स्थायी भावों की संख्या ग्यारह है। मूलत: स्थायी भाव नौ ही माने जाते हैं, लेकिन कुछ विद्वानों के अनुसार वत्सल और भगवत् प्रेम की गनना भी स्थायी भावों में की जाती है। अत: वत्सल और भगवत् प्रेम को जोडकर स्थायी भावों की संख्या ग्यारह मानी जाती है। स्थायी भावों के नामकरण इस प्रकार किये जाते हैं -

1. रति	2. उत्साह	3. हास
4. क्रोध	5. भय	6. जुगुप्सा
7. शोक	8. विस्मय	9. निर्वेद
10. वत्सल	11. भगवत् प्रेम	

सामाजिक में वासना रूप में विद्यमान इन्हीं स्थायी भावों से व्युत्पन्न ग्यारह रस इस प्रकार हैं –

1. श्रृंगार रस	2. वीर रस	3. हास्य रस
4. रौद्र रस	5. भयानक रस	6. बीभत्स रस
7. करूण रस	8. अद्भुत रस	9. शांत रस
10. वात्सल्य रस	11. भक्ति रस	

2. विभाव :

आचार्य भरतमुनि ने अपने 'रससूत्र' में प्रथम विभाव का ही उल्लेख किया है। भरतमुनि के अनुसार विभाव का अर्थ विज्ञान है। वे व्यक्ति या पदार्थ जो भावोत्तेजना के मूल कारण हैं, वे विभाव कहलाते हैं। वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनय के सहारे चित्तवृत्तियों का विशेष रूप से विभाजन अर्थात् ज्ञापन करनेवाले हेतु कारण अथवा निमित्त को ही विभाव कहा जाता है। विभाव के दो भेद माने जाते हैं –

(अ) आलंबन विभाव

(आ) उद्दीपन विभाव

(अ) आलंबन विभाव :

किसी भी भाव का उद्गम जिस मुख्य भाव या वस्तु के कारण होता है, वह काव्य में आलंबन है। आलंबन विभाव के कारण आश्रम में स्थायी भाव उद्दीप्त हो जाता है, अर्थात् स्थायी भाव जिसके विषय में होता है, उसे आलंबन विभाव कहा जाता है।

उदा. पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता को देखकर सीता के प्रति राम के हृदय में रति स्थायी भाव जागृत होता है। यहाँ सीता आलंबन है, उसी के कारण तथा उसी के प्रति राम का रति स्थायी भाव जागृत होता है।

आलंबन के कारण जिसके हृदय में स्थायी भाव जागृत होता है, वह आश्रय कहलाता है। प्रस्तुत उदाहरण में राम आश्रय है।

(आ) उद्दीपन विभाव :

आलंबन का रूप एवं उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव कहलाती हैं। आलंबन का रूप और उसके द्वारा की गयी चेष्टाएँ आश्रय के हृदय में उद्बुद्ध स्थायी भाव को इसी प्रकार उद्दीप्त करती हैं, जिस प्रकार लकडियों द्वारा जलाई गयी अग्नी घी डालने से और भी उद्दीप्त हो जाती है।

उदा. उपर्युक्त पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता की मोहक सुंदरता, मधुर वाणी, आकर्षक वेषभूषा, केशभूषा, मुस्कुराना आदि के कारण आश्रय राम के हृदय में वासना रूप में स्थित रति स्थायी भाव अधिक-से-अधिक उद्‌बुद्‌ध होता है। तथा रति स्थायी भाव को अधिक उत्तेजित करने में तथा पुष्ट करने में सीता की मोहक सुंदरता तथा सजना-सँवरना सहायक होता है।

आलंबन के संदर्भ में और एक बात कही जा सकती है कि, कुछ स्थायी भावों के आलंबन निश्चित होते हैं, तो कुछ ऐसे हैं जिनका आलंबन देश कालानुसार कोई भी हो सकता है।

3. अनुभाव :

'अनु' का अर्थ है 'पीछे' अर्थात् स्थायी भाव के पश्चात् प्रकट होनेवाले मनोविकार और आश्रय की चेष्टाएँ अनुभाव कहलाती है। अनुभाव स्थायी भाव और विभाव के पश्चात् आश्रय में प्रकट होते हैं। अनुभाव में आश्रय के मानसिक विकार और शारीरिक क्रियाएँ दृष्टिगत होती हैं। अर्थात् जिनसे भावों का अनुभव होता है, वह अनुभाव है। आचार्य विश्वनाथ ने आलंबन उद्‌दीपन आदि कारण से उत्पन्न भावों को बाहर प्रकाशित करनेवाले कार्य को अनुभाव कहा है। अनुभाव वाणी तथा अंग संचालन आदि के कारण आश्रय के हृदय में जागृत होते हैं।

उदा. पुष्पवाटिका प्रसंग में राम आश्रय के हृदय में आलंबन सीता के कारण तथा सीता से प्रकट उद्‌दीपन विभाव के कारण रति स्थायी भाव प्रकट होता है। तथा उत्तरोत्तर उसमें वृद्‌धि होती है। उसके पश्चात् आश्रय राम के द्‌वारा जो चेष्टाएँ या कार्य किए जाएँगे, उन्हें ही अनुभाव संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

विद्‌वानों ने अनुभाव के चार भेद माने हैं -

(क) आंगिक अनुभाव (ख) वाचिक अनुभाव (ग) आहार्य (घ) सात्विक

(क) आंगिक अनुभाव :

इसे कायिक अनुभाव भी कहा जाता है। आश्रय की शरीर संबंधी चेष्टाएँ आंगिक या कायिक अनुभाव कहलाती है। इसके अंतर्गत शारीरिक कृत्रिम चेष्टाओं का समावेश किया जाता है, जैसे - कटाक्ष, भृकुटि भंग, पलकों का उठना, गिरना। नायिका के संदर्भ में होंठ काटना, पैरों से जमीन कुरेदना, पल्लू के साथ खेलना आदि शारीरिक अनुभाव आंगिक या कायिक अनुभाव के अंतर्गत आते हैं।

(ख) वाचिक अनुभाव :

वाणी से संबंधित अनुभाव वाचिक अनुभाव कहलाते हैं। आश्रय की वाणी की मृदुता अथवा उग्रता वाचिक अनुभाव कहलाती है।

(ग) आहार्य :

भाव-व्यंजक अनुभावों में आश्रय की विशिष्ट वेशभूषा और साज-सज्जा आदि को आहार्य अनुभाव के अंतर्गत रखा जाता है।

(घ) सात्त्विक अनुभाव :

सात्विक अनुभाव ही अयत्नज अनुभाव भी कहलाते हैं। इनकी अभिव्यक्ति सहज अर्थात अपने आप होती है। इसके लिए आश्रय को कोई क्रिया करने की आवश्यकता नहीं होती है। इनका उद्रेक सहज ही होता है। इनकी संख्या आठ मानी जाती है।

1. स्तंभ	2. स्वेद	3. रोमांच	4. स्वरभंग
5. कंप	6. वैवर्ण्य	7. अश्रु	8. प्रलय

1. **स्तंभ :** प्रेम, शोक, भय, क्रोध आदि के कारण शरीर की गति का रूक जाना स्तंभ कहलाता है।
2. **स्वेद :** प्रेम, भय, लज्जा आदि के कारण पसीना आना स्वेद कहलाता है।
3. **रोमांच :** प्रेम, हर्ष, भय आदि के कारण शरीर के रोओं का खडा होना रोमांच कहलाता है।
4. **स्वरभंग :** प्रेम, शोक, भय आदि के कारण वाणी का अवरूद्ध होना स्वरभंग कहलाता है।
5. **कंप :** प्रेमाधिक्य, भय व क्रोध के कारण शरीर का कंपित होना कंप कहलाता है।
6. **वैवर्ण्य :** भय, शोक, शंका आदि के कारण मुखमंडल का कांतिहीन होना वैवर्ण्य कहलाता है।
7. **अश्रु :** हर्षातिरेक या शोक के कारण आश्रुओं का आना।
8. **प्रलय :** विरह, दु:ख, शोक, भय, क्रोध आदि के कारण इंद्रियों का चेतनाशून्य होना प्रलय होता है।

4. संचारी भाव तथा व्यभिचारी भाव :

संचारी भाव वे मानोवेग या शारीरिक प्रतिक्रियाएँ हैं, जो स्थायी भावों की पुष्टि के लिए संचरणशील होते हैं। भरतमुनि ने इसे व्यभिचारीभाव की संज्ञा से अभिहित किया है। किसी एक भाव के साथ इनका नियत संबंध न रहने के कारण इन्हें व्यभिचारी भाव कहा जाता है। इनकी प्रवृत्ति चंचल होती है। इनकी संचरणशील अर्थात् घुमते रहने की प्रवृत्ति, इन्हें संचारी कहलाती है।

संचारी भाव आश्रय के हृदय में उद्दीप्त स्थायी भाव के साथ बीच-बीच में प्रकट होकर उस स्थायी भाव को अधिक पुष्ट बनाने में सहायता करते हैं। यह उद्दीप्त होने पर तुरंत लुप्त हो जाते हैं, अर्थात् संचारी भाव क्षणजीवी होते हैं।

उदा. सागर में लहरें उत्पन्न होती हैं और सागर ही में विलीन हो जाती हैं। वैसे ही स्थायी भाव में संचारी भाव उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं। संचारी भाव स्थायी भाव के पोषक होते हैं।

संचारी भावों की संख्या को लेकर मतभेद हैं। इनकी संख्या समयानुरूप परिवर्तित होती है। फिर भी कुछ विद्वान इनकी संख्या तैंतीस मानते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार संचारी भाव निम्नलिखित हैं -

निर्वेद, आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जडता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, आलसता, अमर्ष, हर्ष, अवहित्य, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, व्याधि, संत्रास, लज्जा, असूया, ग्लानि, धति, विदा, चिंता, दैन्य, उग्रता, चपलता, वितर्क।

निष्कर्ष :

रस की निष्पत्ति के लिए स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव इन रस के अंगों का परस्पर संयोग होना अनिवार्य प्रक्रिया है। इस संयोगात्मक प्रक्रिया से ही रस की निष्पत्ति अर्थात सहृदय को रस की अनुभूति हो सकती है। उद्दीपन विभाव के कारण आश्रय के हृदय में रस की गति बढ जाती है और संचारी भावों के कार्यान्वित होने से रस अधिक पुष्ट बन जाता है और सामाजिक अधिक - से - अधिक रसानंद प्राप्त कर सकते हैं।

3.3.3 रस के भेद :

रस अखंड होता है। फलत: अखंड वस्तु के भेदोपभेदों की चर्चा करना उचित नहीं है। फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से रस को समझने और समझाने के लिए उसके भेदोपभेदों की चर्चा करना अनिवार्य है। जब हम रस के भेदों की चर्चा करते हैं, तब हमारा तात्पर्य रस भेदों से न होकर स्थायी भावों के भेदों से होता है, जो विभावादि के संयोग से एक नवीन रूप में उपस्थित होते हैं।

जैसे, प्रकाश एक ही होता है, लेकिन उसे समझने के लिए ट्यूब लाईट, बल्ब लाईट, मरक्यूरी लाईट आदि में उसको विभाजित किया जाता है। तथा अन्न (आहारादि) को हलवा, पूरी, सीरा, रोटी, रबडी आदि एक ही अन्न के घटक है। अपितु समझने तथा समझाने के लिए उसे विविध भेदों में विभाजित किया जाता है। रस भी प्रकाश तथा अन्न के समान एक ही है। अपितु उसके अध्ययन तथा अध्यापन के लिए अर्थात् समझने और समझाने के लिए स्थायी भावों के आधार पर विविध भेदों में विभाजित किया जाता है।

✻ रसों की संख्या :

रसों की संख्या या भेदों को लेकर विद्वानों में एकमत नहीं है। रस संप्रदाय के प्रवर्तक भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में श्रृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स केवल इन चार रसों का ही प्रमुख रूप से उल्लेख किया है। इन्हीं से क्रमश: हास्य, करूण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति मानी है। इस प्रकार भरतमुनि ने नाटक में केवल आठ रस माने हैं। काव्य के लिए प्रारंभ में रसों की संख्या नौ मानी गयी थी। श्रृंगार, वीर, करूण, हास्य, अद्भुत, भयानक, बीभत्स, रौद्र और शांत रस। आगे चलकर हिंदी साहित्य की भक्ति काव्यधारा के प्रवाह से सरसित होकर वात्सल्य और भक्ति रस के रूप में प्रतिष्ठित हुए। फिर भी प्रमुखतया शास्त्रीय विधि से मान्य नौ रस ही है। इन नौ रसों के विश्लेषन के साथ हम वात्सल्य और भक्ति रस का भी विवेचन स्थायी भाव के आधार पर करेंगे।

स्थायी भाव के आधार पर रसों का विवेचन इस प्रकार किया जाता है -

	स्थायी भाव	रस
1.	रति	श्रृंगार रस
2.	उत्साह	वीर रस
3.	हास	हास्य रस
4.	क्रोध	रौद्र रस
5.	भय	भयानक रस
6.	जुगुप्सा	बीभत्स रस
7.	शोक	करूण रस
8.	विस्मय	अद्‌भुत रस
9.	निर्वेद	शांत रस
10.	वत्सल	वात्सल्य रस
11.	भगवत् प्रेम	भक्ति रस

स्थायी भावों के आधार पर सर्वमान्य इन ग्यारह रसों का सोदाहरण विवेचन निम्न प्रकार से किया जाता है–

1. श्रृंगार रस :

'श्रृंगार' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है – 'श्रृंग' और 'आर'। 'श्रृंग' का अर्थ है काम और 'आर' का अर्थ होता है – वृद्धि, गति या प्राप्ति। अत: श्रृंगार का अर्थ हुआ – कामोद्रेक की प्राप्ति या वृद्धि। विभाव अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से परिपक्व अवस्था में पहुँचा हुआ रति स्थायी भाव श्रृंगार रस में परिणत होता है।

श्रृंगार रस को अधिकांश आचार्यों ने 'रस – राजत्व' की उपाधि दी है। इसका प्रमुख कारण है – श्रृंगार भावना की व्यापकता। श्रृंगार का प्रभाव आश्रय पर तुरंत पडता है।

श्रृंगार रस के.....

देवता : विष्णु माने गए हैं।

वर्ण : वर्ण श्याम माना गया है।

स्थायी भाव : रति है।

आलंबन : नायक या नायिका आदि।

उद्दीपन : ऋतु - सौंदर्य, चांदनी रात, सरिता तट, उपवन, एकांत स्थान, वियोग में दु:खद बातें आदि हैं।

अनुभाव : देखना, मुस्कुराना, गुनगुनाना, सिमटना, आँखें झुकाना, ओठों का कंपित होना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : औत्सुक्य, हर्ष, लज्जा, जडता, ग्लानि, उन्माद आदि संचारी माने जाते हैं।

श्रृंगार रस के दो भेद होते हैं -

(क) संयोग श्रृंगार

(ख) वियोग श्रृंगार

संयोग श्रृंगार को संभोग श्रृंगार तथा वियोग श्रृंगार को विप्रलंब श्रृंगार भी कहा जाता है।

(क) संयोग (संभोग) श्रृंगार : संयोग श्रृंगार वहाँ होता है, जहाँ नायक और नायिका की मिलन अवस्था का वर्णन होता है। इसमें नायक-नायिका के परस्पर हास-विलास, आलिंगन, स्पर्श, चुंबन आदि का वर्णन होता है। खासकर परस्पर अवलोकन तथा संभाषण को अधिक पसंद किया जाता है। क्योंकि चुंबनादि तो नग्नता की परिभाषा में आ जाते हैं। इसमें नायक या नायिका तथा स्थिति एक-दूसरे के भाव के आलंबन हो सकते हैं। उद्दीपन विभाव बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के होते हैं।

संयोग श्रृंगार के.....

आश्रय : नायक या नायिका कोई भी हो सकते हैं।

आलंबन : आश्रय की तरह आलंबन भी नायक या नायिका में से कोई भी हो सकता है।

उद्दीपन :

बाह्य विभाव के अंतर्गत - चाँदनी रात, उपवन, सरिता, तट, एकांत स्थान, वसंत, वर्षा आदि ऋतुएँ, सुगंधित पदार्थ आदि आते हैं।

आंतरिक विभाव के अंतर्गत - आंतरिक उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आलंबन की शारीरिक बनावट, प्रेम से देखना, मुस्कराना, गुनगुनाना आदि बातें आती हैं।

संचारी भाव : इसके संचारी भावों के अंतर्गत हर्ष, लज्जा, औस्तुक्य आदि आते हैं।

उदा. : 1.

''हाथ लक्ष्मण ने तुरंत बढा दिए
और बोले एक परिरंभन प्रिये।
सिमट - सी सहसा गयी प्रिय की प्रिया
एक तीक्ष्ण अपांग ही उसने दिया।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : लक्ष्मण है।

आलंबन : उर्मिला है।

उद्दीपन : एकांत स्थान, उर्मिला का कटाक्ष आदि।

अनुभाव : सिमटना।

संचारी भाव : लज्जा, हर्ष आदि।

उदा. : 2.

''ये रेशमी जुल्फे ये शरबती आँखें,
इन्हें देखकर जी रहे हैं सभी।
जो ये आँखें शरम से झुक जाएगी,
सारी बातें यही बस रूक जाएगी,
चुप रहना ये अफसाना,
कोई इनको ना बतलाना।''

(ख) वियोग (विप्रलंब) श्रृंगार : वियोग श्रृंगार वहाँ होता है, जहाँ नायक और नायिका में परस्पर उत्कट प्रेम होने पर भी उनका मिलन नहीं हो पाता है। इसमें रति स्थायी भाव स्वप्न, चित्र, श्रवण आदि के द्वारा व्यक्त होता है। यह संयोग न होने से और भी तीव्र होता है। मिलन के बाद फिर बिछोह के अवसर पर मान, प्रवास आदि विभिन्न दशाओं में प्रकट होता है, वहाँ भी वियोग श्रृंगार होता है। आचार्यों ने वियोग श्रृंगार की दस दशाएँ मानी हैं।

1. अभिलाषा	2. चिंता	3. स्मरण	4. गुणकथन	5. उद्वेग
6. उन्माद	7. प्रलाप	8. व्याधि	9. जडता	10. मरण।

वियोग श्रृंगार के......

आश्रय : नायक या नायिका दोनों में से कोई एक या दोनों हो सकते हैं।

आलंबन : संयोग श्रृंगार की तरह इसके आलंबन भी यथास्थिति नायक या नायिका हो सकते हैं।

उद्दीपन : उद्दीपन के अंतर्गत दु:खद बातें आ जाती हैं।

अनुभाव : अश्रु बहाना, प्रलय, स्तंभ आदि अनुभाव के अंतर्गत आते हैं।

संचारी भाव : संचारी भावों के अंतर्गत जडता, ग्लानि, उन्माद आदि हैं।

उदा. : 1.

> ''हा। गुण खानी जानकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीता
>
> लछिमन समुझाये बहु भाँति। पूछत चले लता तरू पाँती
>
> हे खग मृग हे मधुकर सेनी। तुम देखी सीता मृग-नैनी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : आश्रय राम है (सीता के रावण द्‌वारा हरण के पश्चात् राम की अवस्था का चित्रण)

आलंबन : आलंबन सीता है।

उद्‌दीपन : उद्‌दीपन शून्य है।

अनुभाव : सीता का गुण-कथन, सीता के लिए विलाप, पशु-पंछी, पेडों से सीता का पता पूछना आदि।

संचारी तथा व्याभिचारी : उन्माद, आवेग, चिंता, व्याधि आदि।

उदा. : 2.

> ''याद तेरी आयेगी,
> मुझको बडा सतायेगी,
> जिद ये झूठी तेरी, मेरी जान ले के जाएगी।
> तेरा साथ छुटा, टूटा दिल तो ये जाना,
> कितना है मुश्किल, दिल से यार को भुलाना,
> दिल का हमेशा से है, दुश्मन जमाना,
> गम ये है, तूने मुझे ना पहचाना।''

2. वीर रस :

सहृदय सामाजिकों के हृदय में वासना रूप में विद्यमान उत्साह स्थायी भाव काव्यादी में वर्णित विभाव अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से उद्‌बुद्‌ध होकर रसावस्था में पहुँच कर आस्वाद योग्य बन जाता है, तब वह वीर रस कहलाता है।

वीर रस का....

स्थायी भाव : उत्साह है।

देवता : इंद्र है।

वर्ण : स्वर्ण के समान माना गया है।

आलंबन : नायक, शत्रु, याचक ङ्क दीन, तीर्थ-स्थान, ऐश्वर्य, साहसिक कार्य, यश आदि हैं।

उद्दीपन : शत्रु का प्रभाव, शक्ति, अहंकार, याचक या दीन की दशा, उनके द्वारा की गई प्रशंसा, चेष्टा, प्रदर्शन, ललकार आदि हैं।

अनुभाव : रोमांच, आँखों का लाल होना, शत्रुओं के अंगों का संचलन सैन्य का संगठन आदि हैं।

संचारी भाव : गर्व, उग्रता, धैर्य, तर्क, असूया, दया, आवेग, चपलता, हर्ष, क्षमा आदि है।

वीर रस के चार भेद माने गए हैं....

1. युद्धवीर 2. दयावीर 3. धर्मवीर 4. दानवीर

उदा. : 1.

''कायर तुम दोनों ने ही उत्पात मचाया
अरे समझकर जिनकों अपना था अपनाया
तो फिर आओ देखो कैसे होती है बलि
रण गह यज्ञ पुरोहित ओ किलात ओ आकुली।''

प्रस्तुत उदाहरण में .....

आश्रय : मनु है।

आलंबन : किलात तथा अकुली है।

उद्दीपन : किलात तथा अकुली द्वारा उत्पात मचाना।

अनुभाव : मनु का ललकारना, युद्ध करना।

संचारी भाव : गर्व, आवेग, चपलता आदि।

उदा. : 2.

''यह चूके हैं सितम हम बहुत गैरों के,
अब करेंगे हर एक वार का सामना,
झूक सकेगा ना अब सरफरोशों का सर,
चाहे हो खूनी तलवार का सामना,
सर पे बांधे कफन हम तो हँसते हुए,
मौत को भी गले से लगा जाएँगे।

3. हास्य रस :

रूप, आकार, वाणी, वेश और कार्य आदि के विकृत हो जाने से हास्य की उत्पत्ति होती है।

हास्य रस का स्थायी भाव : हास है।

इसके देवता : प्रथम शंकर के गण माने जाते हैं।

इस रस का वर्ण : स्वेत है।

आश्रय : हास्य रस का आश्रय व्यक्ति विशेष न होकर प्राय: श्रोता, पाठक, दर्शक सभी हो जाते हैं।

आलंबन : विकृत रूप, आकार, वेशभूषा, विचित्र अनर्गल वचन, विलक्षण चेष्टाएँ, व्यंग्य, मूर्खता के कार्य, निर्लज्जता आदि।

उद्दीपन : हास्यजनक वस्तु या व्यक्ति की चेष्टाएँ, विचित्र अंग भंगिमा, क्रिया कलाप आदि।

अनुभाव : आँखें और मुख का विकसित होना, खिलखिलाना, व्यंग्य वाक्य कहना, ओठ, नासिका और कपोल का स्फुरित होना, नेत्र बंद होना, मुख पर प्रसन्नताजनक दीप्ति आदि।

संचारी भाव : रोमांच, कंप, हर्ष, स्वेद, चंचलता, आलस्य, निद्रा, चलपता, गर्व आदि।

भावों के आधार पर हास्य के छ: भेद माने गए हैं......

1. स्मित	2. हसित	3. विहसित
4. अवहासित	5. अपहसित	6. अतिहसित

उदा. : 1.

''मगर एक 'इंटर' में देखा तो एक,
चढा कोई साहब का रचा करके भेख।
बदन पर थी 'पॉलिश' वे जापान की,
औ पतलुन 'गुधडी' के बाजार की।
शक्ल और सूरत की क्या बात थी,
उसे देख भैस की माँ मात थी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : दर्शक तथा पाठक है।

आलंबन : विचित्र पोशाख पहना हुआ आदमी।

उद्दीपन : बदन पर जापान की पॉलिश, गुधडी की पतलुन, भैस से भी बद्तर शक्ल-सूरत।

अनुभाव : खिलखिलाना, हाथ दिखाना, आँखों से पानी आना, आँखों का फैल जाना, कपोल आरक्त होना आदि।

संचारी भाव : चपलता, चंचलता, कंपन, आवेग, हर्ष आदि।

उदा. : 2.

''एक दिन दादाजी को
याद आयी अपनी जवानी
दादी से बोले ए मेरे दिलबर जानी
कल हम पुराने दिनों की तरह जियेंगे
गुलाब लेकर तुम्हारा नदिया के किनारे इंतजार करेंगे
अगले दिन दादाजी ने शाम तक किया इंतजार
पर ना आयी जश्न-ए-बहार
दादाजी झल्लाएँ
तुम कैसी प्रेमिका हो आयी नहीं
दिन भर इंतजार करके
मेरे घुटने का बज गया बाजा
दादीजी शरमाकर बोली
क्या करूँ, माँ ने आने नहीं दिया मेरे राजा।''

4. रौद्र रस :

शत्रु की अपमानजनित चेष्टाओं से तथा गुरू-निंदा, देश-धर्म का अपकार और अपमान होने पर सामाजिक में वासना रूप में क्रोध स्थायी भाव जाग्रत होता है। विभावानुभाव तथा संचारी भावों के उद्दीपन से रौद्र रस का उदय होता है।

देवता : रूद्र माने जाते हैं।

वर्ण : रक्त के समान माना जाता है।

स्थायी भाव : क्रोध है।

आलंबन : शत्रु, अनुचित बात कहनेवाला, अपराधी, देशद्रोही, समाज द्रोही, दुराचारी व्यक्ति आदि।

उद्दीपन : अपमान और निंदा से भरे वचन, विरोधी दल द्वारा किए अनुचित कार्य, आँखें दिखाना, चिढाना आदि।

अनुभाव : गर्व आवेग, चपलता, अमर्ष, कंप, उग्रता आदि।

उदा. : 1.

''सुनता लखन के वचन कठोरा। परशु सुधारि धेरउ कर धारा।
अब जनि देउ दोष मोहि लोगू। कटुवादी बालक वध जोगू।
राम वचन सुनि कघुक जुडाने। कहि कघु लखन बहुरि मुस्काने।
हँसत देख नख-शिख रिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड पापी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : परशुराम है।

आलंबन : लक्ष्मण है।

उद्दीपन : लक्ष्मण के कठोर वचन तथा मुस्कुराना।

अनुभाव : परशु हाथ में लेना, लक्ष्मण को पापी कहना, वध करने की बात कहना।

संचारी भाव : व्यग्रता, चपलता, आवेग आदि।

उदा. : 2.

''साक्षी रहे संसार, करता हूँ प्रतिज्ञा पार्थ मैं।
पूरा करूंगा कार्य सब, कथनानुसार यथार्थ मैं।
जो एक बालक को कपट से मार हँसते हैं अभी।
वे शत्रु सत्वर शोक-सागर मग्न दिखेंगे सभी।''

5. भयानक रस :

भयानक, अनिष्ठकारी दृष्य देखने, सुनने या स्मरण करने से सामाजिक में वासना रूप में स्थित 'भय' स्थायी भाव आलंबन, उद्दीपन के कारण उद्बुद्ध होकर संचारी भावों की मदद से तीव्र होता है। सामाजिक रसासक्त होकर 'भयानक रस' की परिणति होती है।

इस रस के.....

देवता : भूत-पिशाच तथा कालदेव माने जाते हैं।

रंग : भयानक रस का वर्ण कृष्ण माना गया है।

स्थायी भाव : भय है।

आलंबन : भयानक व्यक्ति या वस्तु, सिंह, व्याघ्र, हिंसक जंतु, सर्प, आग, नदी की बाढ, भूत, प्रेत की आशंका, एकांत भयानक स्थान, श्मशान, निर्जन स्थान आदि।

उद्दीपन : आलंबन की भयानक चेष्टाएँ और व्यवहार, निर्जनता, उग्र ध्वनि, सिंह की दहाड, व्याघ्र की गर्जना, अकेलापन, सर्प का रेंगना या जीभ निकालना, सागर की उँची लहरें, नदी का तीव्र बहाव, आग से निकलेनवाली लपटे, अनिष्ठ की आशंका आदि हैं।

अनुभाव : काँपना, पसीना आ जाना, रोमांचित हो जाना, आँखें और स्वर का विकृत हो जाना, मुख-मंडल का रंग उड जाना, भागने का उपक्रम करना, मूर्छित हो जाना, गिडगिडाना, चिल्लाना आदि।

संचारी भाव : शंका, मोह, दैन्य, आवेग, चिंता, त्रास, चपलता, मरण, जुगुप्सा आदि इसके स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं।

उदा. : 1.

''एक ओर अजगरहि लखि, एक ओर मृगराइ।
विकल बटोही बीच ही, परयौ मूर्च्छा खाई।।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : बटोही (प्रवासी) है।

आलंबन : अजगर और शेर है।

स्थायी भाव : भय है।

उद्दीपन : अजगर का जिव्हा निकालना, शेर का दहाडना (काव्य में नहीं है) आदि हैं।

अनुभाव : बटोही का मूर्च्छित होना।

संचारी भाव : कंपन, चिंता, दैन्य, आवेग, त्रास आदि।

उदा. : 2.

''झहरात भहरात दावानल आयौ।
घेरि बहुँ ओर करि सोर अन्दोर
उद्यान धरनि आकास चहुँ पास छावै।''

6. बीभत्स रस :

घृणित वस्तुओं को देखकर अथवा उनका वर्णन सुनकर सामाजिकों में वासनागत रूप में विद्यमान 'जुगुप्सा' स्थायी भाव उद्भुत होता है, जो संबंधित विभावानुभावों के संयोग से परिपक्व आवस्था में पहुँचकर तथा संचारी भावों के संचरण से पुष्ट होकर 'बीभत्स रस' में परिणत हो जाता है।

बीभत्स रस के....

देवता : महाकाल माने जाते हैं।

वर्ण : नीला है।

स्थायी भाव : जुगुप्सा है।

आलंबन : घृणोत्पादक प्राणी या पदार्थ, रक्त, मांस, श्मशान, मैली-कुचैली दुर्गंधयुक्त वेशभूषा, सडी- गली तथा दुर्गंधयुक्त वस्तुएँ आदि आलंबन हैं (स्थान : मछली बाजार, कसाई खाना, श्मशान घाट आदि)

उद्दीपन : घृणोत्पादक वस्तुओं में कीडे पडना, किडों का कुलबुलाना, मक्खियों का भिनभिनाना, सडते मांस-पिंडों को गिद्ध, कौओं, कुत्तों आदि द्वारा नोचना-खसोटना, घृणोत्पादक वस्तुओं की चर्चा आदि।

अनुभाव : मुँह फेरना, नाक सिकोडना, थूँकना, छी-छी करना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानि, आवेग, जडता, चिंता, व्याधि, अपस्मार आदि संचारी कहलाते हैं।

उदा. : 1.

''सिर पै बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत,
खींचत जीभहि सियार अतिहि आनन्द उरधारत।
गिद्ध जांघ को खोदि खोदि कै मांस उपारत,
श्वान अंगुरिन काटि-काटि कै खात विदारत।
बहु चील नोचि लै जात तुच मोद भरयो सबको हियो,
मनु ब्रह्म भोज जिजमान कोउ आज भिखारिन दियो।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : राजा हरिश्चंद्र, श्रोता या पाठक हैं।

आलंबन : श्मशान का दृष्य, मरे हुए जानवर को जानवरों या पंछियों द्वारा नोच-नोचकर खाने का दृष्य।

स्थायी भाव : जुगुप्सा है।

उद्दीपन : काक, गिद्ध, चील आदि पंछियों तथा कुत्ते और सियार द्वारा मांस नोचना, उखाडना, खाना आदि।

अनुभाव : मितलाना, थूँकना, नाक सिकोडना आदि।

संचारी भाव : मोह, स्मृति, ग्लानी आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 2.

''कई कब्रों उठ बैठी हैं लाशें
भभकती गंध ये आई वो आई
भटकते श्वान आवारा कई जो
जुबां भुस-काटने को लपलपाई।''

7. करूण रस :

करूण रस अत्यंत प्रभावशाली है। इसमें सभी को द्रवित करने की क्षमता होती है। भवभूति ने इसे एकमात्र रस माना है। किसी आत्मीय तथा प्रिय व्यक्ति के साथ कुछ बुरा घटित होने पर या उसकी मृत्यु

होने पर सामाजिको में वासना रूप में विद्‌यमान शोक स्थायी भाव विभाव तथा अनुभाव के संयोग से उद्‌दीप्त होकर संचारी भावों के योग से पुष्ट होता है और करूण रस की परिणति होती है।

करुण रस के.....

देवता : यमराज माने जाते हैं।

वर्ण : कपोत के समान माना जाता है।

स्थायी भाव : शोक है।

आलंबन : प्रिय व्यक्ति, प्राणी या वस्तु का अनिष्ठ, हानि या विनाश, वियोग आदि।

उद्‌दीपन : प्रिय का वियोग, उसके गुण का कथन तथा स्मरण, प्रियजन का शव दर्शन, चित्र का दर्शन, प्रिय के गुणों का श्रवण आदि उद्‌दीपन हैं।

अनुभाव : रूदन, उच्छवास, प्रलाप, भूमि पतन, मूर्च्छा, कंप, दैव निंदा, शरीर का शिथिल होना, छाती पीटना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानि, मोह, स्मृति, चिंता, विषाद, अन्माद, दैन्य, व्याध, मरण आदि संचारी हैं।

उदा. : 1.

''पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक

चल रहा लकुटिया टेक

मुट्ठी भर दाने को... भूख मिटाने को

मुह फटी पुरानी झोली को फैलाए...

दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : पाठक, श्रोता तथा दर्शक है ।

आलंबन : दैन्य आवस्था में भीख माँगता भिखारी है।

उद्‌दीपन : भूख के कारण पीठ से चीपका हुआ पेट, फटी-पुरानी झोली, भिखारी का करूण चेहरा, उसकी करुणिक पुकार आदि उद्‌दीपन हैं।

अनुभाव : उच्छवास, दैव निंदा, दया, कंप आदि अनुभाव पाए जाते हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानि, दैन्य, चिंता, व्याधि, विषाद आदि संचारी भाव परिलक्षित होते हैं।

उदा. : 2.

''साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते
और दाहिना दया दृष्टि पाने की ओर बढाये
भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता भाग्य विधाता से क्या पाते?
घूँट ऑसुगों के पीकर रह जाते।''

8. अद्‌भुत रस :

वस्तु-वैचित्र्य को देखकर सामाजिकों में वासना रूप में स्थित विस्मय स्थायी भाव उत्पन्न होता है। विभाव और आनुभाव के संयोग से तथा संचारी भावों से पुष्टि पाकर आश्चर्य के संसार से अद्‌भुत रस का उदय होता है। आश्चर्यजनक व्यक्तियों, वस्तुओं, विचित्र दृश्यों एवं अलौकिक वस्तु या घटना के द्‌वारा अद्‌भुत रस की उत्पत्ति होती है।

इस रस के....

देवता : गंधर्व माने जाते हैं।

वर्ण : अद्‌भुत रस का वर्ण पीत है।

स्थायी भाव : विस्मय है।

आलंबन : अलौकिक व्यक्ति, वस्तु या घटना, विचित्र दृश्य, आकस्मिक मनोरथ सिद्‌धि आदि आलंबन माने गए हैं।

उद्‌दीपन : अलौकिक के गुणों का श्रवण, अलौकिक के विभिन्न रूप, आश्चर्यजनक वस्तु का विवेचन आदि इसके उद्‌दीपन के अंतर्गत आते हैं।

अनुभाव : रोमांच, स्तब्ध होना, अवाक् हो जाना, स्तंभ, स्वेद, दाँतों तले अंगुली दबाना, नेत्र विस्फारण आदि अनुभाव माने जाते हैं।

संचारी भाव : भ्रम, हर्ष, औत्सुक्य, चंचलता, प्रलाप, वितर्क, आवेग, स्मृति, संभ्रम आदि संचारी भाव माने जाते हैं।

उदा. : 1.

''अंबर तो अंबार अमर कियो बंसीधर।
भिष्म, करण, द्रोण शोभार्य निहारी है।
सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है।
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : भिष्म, करण, द्रोण तथा अन्य दरबारी हैं।

आलंबन : सारियों के अंबार आलंबन प्रतीत होता है।

उद्दीपन : निरंतर बढते सारियों के अंबार।

अनुभाव : शोभा निहारना, भ्रमित होना, आश्चर्य चकित होना, विस्मित होना आदि।

संचारी भाव : भ्रम, हर्ष, औत्सुक्य, चंचलता, आवेग, भ्रम आदि संचारी भाव परिलक्षित होते हैं।

उदा. : 2.

''क्षण मार दिया कर कोडे से
रण किया उतरकर घोडे से।
राणा रण-कौशल दिखा दिया
चढ गया उतरकर घोडे से।''

9. शांत रस :

ये रस उदात्त वृत्तियों का प्रेरक है। श्रृंगार, वीर और शांत रसों में से महाकाव्य में प्रधान या अंगी रस के रूप में प्रतिष्ठित होना आवश्यक होता है। अत: श्रृंगार, वीर रसों के साथ ही शांत रस की गणना भी प्रधान रसों में की जाती है। संसार की असारता और क्षणभंगुरता के वशिभूत सामाजिक में स्थित वासना रूप में विद्यमान निर्वेद स्थायी भाव विभावानुभाव के संयोग से उद्यपित होता है और संचारी भावों की मदद से पुष्ट होकर शांत रस में परिणत होता है।

इस रस के.....

देवता : विष्णु माने जाते हैं।

वर्ण : कुंदन पुष्प व चंद्रमा के समान शुक्ल माना जाता है।

स्थायी भाव : निर्वेद है।

आलंबन : संसार की असारता और क्षणभंगुरता, ज्ञात संसार का परम चिंतन आदि है।

उद्दीपन : सत्संग, तीर्थस्थान, मृतक, साधु-संतों के आश्रम, सिद्ध महात्माओं का दर्शन एवं सत्संग शास्त्र परिशीलन आदि।

अनुभाव : रोमांच, अश्रु, पश्चात्ताप, ग्लानि, संन्यास ग्रहण, गृहत्याग, संसार की असारता का बखान आदि।

संचारी भाव : निर्वेद, हर्ष, स्मरण, बोध, मति, धृति आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 1.

> ''जीव जहाँ खत्म हो जाता
> उठते - गिरते
> जीवन - पथ पर
> चलते - चलते
> पथिक पहुँचकर
> इसी जीवन के चौराहे पर
> क्षणभर रूककर
> सूनी दृष्टि डाल सम्मुख जब पीछे
> अपने नयन घुमाता
> जीवन वहाँ खत्म हो जाता।''

प्रस्तुत उदाहरण में......

आश्रय : कवि का हृदय है।

आलंबन : पथिक का जीवन है।

उद्दीपन : जीवन पथ, चौराहा, सूनी दृष्टि आदि उद्दीपन हैं।

अनुभाव : चलते - चलते रूकना, पीछे मुड-मुडकर देखना अनुभाव हैं ।

संचारी भाव : जीवन की क्षणभंगुरता का ज्ञान, दृष्टि में सूनापन, मृत्यु बोध आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 2.

> ''भाग रहा हू भार देख,
> तू मेरी ओर निहार देख,
> मैं त्याग चला निस्सार देख,
> अटकेगा मेरा कौन काम,
> ओ क्षणभंगुर भव राम राम।''

10. वात्सल्य रस :

संस्कृत के अधिकांश आचार्यों ने इसे अलग रस न मानकर श्रृंगार के भीतर ही परिगणित किया है। लेकिन भोज, भानुदत्त, विश्वनाथ इसे स्वतंत्र रस मानते हैं। ''बालक या पशु पंछियों के बच्चों का उछलना, कुदना देखकर बुजुर्ग तथा बडे सामाजिकों में वासनागत् वत्सल स्थायी भाव विभाव, अनुभाव के संयोग से तथा संचारी भावों के पुष्ट होने से वात्सल्य रस उद्बुद्ध होता है।'' बच्चों की तुतली बोली, घर के आँगन में

उनके द्वारा भरी किलकारियाँ, अबोधजन्य कार्य वात्सल्य रस के उत्पादक कारण हैं। इस रस को नौ रसों में स्थान न होने के कारण इसके कोई देवता या वर्ण विद्वानों ने निश्चित नहीं किया हैं।

इस रस का....

स्थायी भाव : वत्सल है।

आलंबन : बालक या शिशु, पालतु पशु-पंछियों के छोटे बच्चे हैं।

उद्दीपन : बच्चे की भोली-भाली चेष्टाएँ, तुतली बोली, अबोध जिज्ञासाएँ, घुटनों के बल चलना, रेंगना, हठ करना, किलकारियाँ भरना, खेलना, कूदना, गिर पडना आदि।

अनुभाव : आलिंगन, अंग स्पर्श, सिर चूमना, निहारना, हँसना, पुलकित होना, झुलाना आदि।

संचारी भाव : हर्ष, औत्सुक्य, मति, विषाद, चिंता, जडता, शंका, मोह आदि।

उदा. : 1.

''जसोदा हरि पालने झुलावे।
हालरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै।।
मेरे लाल की आउ निंदरिया काहे न आति सुलावै।
तू काहे न बेगी सो आवै ताको कान्ह बुलावै।।''

प्रस्तुत उदाहरण में .....

आश्रय : यशोदा है।

आलंबन : कृष्ण का बाल रूप है।

उद्दीपन : बाल कृष्ण की क्रियाएँ आदि हैं।

अनुभाव : यशोदा का हिलना, मल्हाना, गाना आदि है।

संचारी भाव : शंका, हर्ष, चंचलता, चपलता आदि है।

उदा. : 2.

''चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमकी-ठुमकी पग धरनि रेंगत, जननी देखि दिखावै।
देहरि लौ चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इतहिं कौ आवै।
गिरि-गिरि परत, बनत नहिं लाँघत सुर-मुनि सोच करावै।

11. भक्ति रस :

पंडित जगन्नाथ ने भक्ति रस को स्वतंत्र रस माना है। भक्ति का स्थायी भाव देवादिविषयक रति है। भक्त के हृदय में स्थित तन्मयता रसोत्कर्ष के लिए अपेक्षित होती है। वात्सल्य रस की तरह इस रस का अंतर्भाव भी नौ रसों में नहीं किया जाता। अत: इसके भी देवता और वर्ण निश्चित नहीं किये हैं।

इस रस का.....

स्थायी भाव : देवरति या भगवत् प्रेम है।

आलंबन : ईश्वर या उसका कोई रूप आदि हैं।

उद्‌दीपन : पुराणादि का श्रवण है।

अनुभाव : रोमांच, अनन्यासक्तिजनित अश्रु आदि हैं।

संचारी भाव : हर्ष, दैन्य आदि हैं।

उदा. : 1.

''तू दयालू दीन हौं तू दानी हौं भिखारी।
हौ प्रसिद्‌ध पातकी तू पाप पुंज हारी।।
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो।
मों समानआरत नहिं आरति हर तोसो।।''

प्रस्तुत उदाहरण में..........

आश्रय : ईश्वर के प्रति अनुराग है।

आलंबन : राम या ईश्वर है।

उद्‌दीपन : ईश्वर की दानशीलता, दयालुता, करूणा आदि हैं।

अनुभाव : गुण कथन, विनय आदि हैं।

संचारी भाव : दैन्य, हर्ष, गर्व आदि हैं।

उदा. : 2.

''बसौ मोरे नैनन में नंदलाल।
मोहिनी मूरति साँवरी सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल।
छुद्रघंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भक्तवत्सल गोपाल ।''

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

1. श्रृंगार रस को .... की उपाधि दी गयी है।

    1. रस राज   2. रस शिरोमणी   3. उत्कृष्ट रस   4. दीव्य रस

2. भरतमुनि ने अपने 'रस-सूत्र' में .... रसांगों की गणना की है।

    1. चार   2. तीन   3. दोन   4. पाँच

3. रस शब्द का प्रयोग .... तत्त्व के रूप में माना जाता है।

    1. गौण तत्त्व   2. न्यून तत्त्व   3. सर्वोत्कृष्ठ तत्त्व   4. प्राण तत्त्व

4. रस सिद्धांत के प्रवर्तक .... माने जाते हैं।

    1. आचार्य दंडी   2. आचार्य वामन   3. भवभूति   4. आचार्य भरतमुनि

5. भरतमुनि ने अपने 'रस-सूत्र' में रस के चार अंगों में से .... अंग का उल्लेख नहीं किया।

    1. विभाव   2. अनुभाव   3. व्याभिचारी भाव   4. स्थायी भाव

6. विद्वानों ने स्थायी भावों की संख्या .... मानी हैं।

    1. चार   2. पाँच   3. आठ   4. नौ

7. बीभत्स रस का स्थायी भाव .... है।

    1. निर्वेद   2. जुगुप्सा   3. शोक   4. वत्सल

8. भरतमुनि के अनुसार 'विभाव' शब्द का अर्थ .... है।

    1. भाव रहित   2. उत्तेजक   3. विज्ञान   4. शास्त्र

9. विद्वानों ने अनुभाव के .... भेद माने हैं।

    1. चार   2. पाँच   3. तीन   4. सात

10. संचारी भावों को भरतमुनि ने .... नाम से अभिहित किया है।

    1. अलौकिक भाव   2. सहज भाव   3. व्यभिचारी भाव   4. अनुभाव

11. संचारी भावों की संख्या .... मानी जाती हैं।

    1. तेईस   2. तेरा   3. तैंतीस   4. तैंतालीस

12. श्रृंगार रस का स्थायी भाव .... है।

    1. उत्साह   2. हास   3. भय   4. रति

13. वीर रस के देवता .... माने जाते हैं।

1. इंद्र 2. शिव 3. राम 4. कृष्ण

14. हास्य रस का वर्ण .... माना जाता है।

1. श्याम 2. भूरा 3. स्वेत 4. नीला

15. गुरू–निंदा सुनने पर .... रस का उदय होता है।

1. वीर 2. करूण 3. भयानक 4. रौद्र

16. भवभूति ने .... रस को एकमात्र रस माना है।

1. श्रृंगार 2. वीर 3. करूण 4. शांत

17. वात्सल्य रस का स्थायी भाव .... है।

1. रति 2. वत्सल 3. उत्साह 4. हास्य

18. भक्ति रस का स्थायी भाव .... है।

1. भगवत् प्रेम 2. रति 3. जुगुप्सा 4. निर्वेद

19. शांत रस का स्थायी भाव .... है।

1. वत्सल 2. हास 3. निर्वेद 4. उत्साह

20. विस्मय .... रस का स्थायी भाव है।

1. रौद्र 2. करूण 3. अद्भुत 4. श्रृंगार

लघुत्तरी प्रश्न :

1. वीर रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
2. श्रृंगार रस के लक्षणों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. बीभत्स रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
4. शांत रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
5. 'विभाव' का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. रस के अंगों का सामान्य परिचय दीजिए।
2. रस के भेदों का विवेचन कीजिए।

3. श्रृंगार रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

4. वात्सल्य रस और भक्ति रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

5. वीर रस और रौद्र रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली :

1. **चिन्मय –** चेतना रूप।

2. **अभिव्यक्त करना –** प्रकट करना।

3. **सानुराग अवलोकन –** प्रेमपूर्वक देखना।

4. **परिगणित करना –** गिनना, समाविष्ट करना।

5. **सहृदय सामाजिक –** पाठक, वाचक, श्रोता या दर्शक।

6. **निष्पन्न होना –** अभिव्यक्त होना, परिणत होना।

7. **विभावन करना –** उद्‌बोधित करना, आस्वाद योग्य बनाना।

8. **आलंबन विभाव –** स्थायी भाव के प्रकट होने का मुख्य कारण।

9. **उद्‌दीपन विभाव –** भावों को उद्‌दीप्त या उत्तेजित करने वाले कारण।

10. **विवेचन –** स्पष्टीकरण।

11. **पुष्प वाटिका –** फूलों का बगीचा।

3.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. (1)	2. (2)	3. (3)	4. (4)	5. (4)
6. (4)	7. (2)	8. (3)	9. (1)	10. (3)
11. (3)	12. (4)	13. (1)	14. (3)	15. (4)
16. (3)	17. (2)	18. (1)	19. (3)	20. (3)

3.7 सारांश :

1. भरतमुनि ने रस तथा रस के स्वरूप पर सर्वप्रथम विचार किया। अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में उन्होंने न केवल रस का परिचय दिया, अपितु रस को परिभाषित कर रस के अंगों का भी परिचय दिया है। आचार्य भरतमुनि के पश्चात् आचार्य अभिनव गुप्त, आचार्य विश्वनाथ, आचार्य मम्मट, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. दशरथ ओझा तथा डॉ. भगीरथ मिश्र आदि परवर्ती आचार्यों ने रस को परिभाषित करने का प्रयास किया।

2. भरतमुनि ने अपने 'रस-सूत्र' में विभाव, अनुभाव व व्याभिचारी या संचारी भावों का ही उल्लेख किया है। उन्होंने स्थायी भाव को अपने 'रस-सूत्र' में स्थान नहीं दिया है। अत: स्थायी भाव को जोडकर रस के चार अंग माने जाते हैं।

3. रस की संख्या को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। सामाजिक में वासनागत रूप में नौ स्थायी भाव माने जाते हैं। अत: इसी के आधार पर रसों की संख्या भी नौ ही मानी जाती हैं। भरतमुनि ने शांत रस छोडकर शेष आठ रसों को मान्यता दी है। तो उद्भट ने उनमें शांत रस को जोडकर रसों की संख्या नौ बना दी है। आचार्य विश्वनाथ ने इसमें और एक रस 'वात्सल्य' का समावेश किया, तो भक्ति के प्रभाव के कारण 'भक्तिरस' भी इन रसों में समाविष्ठ किया गया। अत: रसों की कुल संख्या ग्यारह मानी गयी। रसों के ये भेद सर्वसम्मत हैं।

3.8 क्षेत्रीय कार्य :

1. निराला की कविताओं में प्रयुक्त रसों को पहचानिए।
2. पुराने हिंदी फिल्मी गीतों में रसों की खोज कीजिए।
3. सूर तथा तुलसी के काव्य में वात्सल्य तथा भक्तिरस का आस्वादन कीजिए।
4. कुरुक्षेत्र तथा साकेत महाकाव्य में वीर रस तथा श्रृंगार रस की खोज कीजिए।

3.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. पाश्चात्य साहित्य सिद्धांत और विविध वाद : डॉ. ज्ञा. का. गायकवाड
2. काव्यशास्त्र : डॉ. भगीरथ मिश्र
3. काव्यशास्त्र : शंभुनाथ पांडेय
4. भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा : नगेंद्र
5. भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमान : जगदीश प्रसाद कौशिक
6. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत : कृष्णदेव धारी
7. भारतीय एवं पाश्चात्त्य काव्य सिद्धांत : गणपति चंद्र गुप्त

❑❑❑

इकाई –4

अलंकार (शब्दालंकार, अर्थालंकार)

अनुक्रम

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय – विवेचन

4.3.1 अलंकार

4.3.1.1 अलंकार : स्वरूप एवं परिभाषाएँ

4.3.1.2 अलंकार : महत्त्व

4.3.1.3 अलंकार के भेद

4.3.1.3.1 शब्दालंकार

4.3.1.3.1.1 अनुप्रास

4.3.1.3.1.2 यमक

4.3.1.3.1.3 श्लेष

4.3.1.3.1.4 वक्रोक्ति

4.3.1.3.2 अर्थालंकार

4.3.1.3.1.1 उपमा

4.3.1.3.1.2 रूपक

4.3.1.3.1.3 उत्प्रेक्षा

4.3.1.3.1.4 दृष्टांत

4.4 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्‌देश्य :–

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप,

1. अलंकारों के स्वरूप से परिचित होंगे।
2. अलंकारों के भेदों से अवगत होंगे।
3. शब्दालंकार और अर्थालंकार के बीच का अंतर समझने की क्षमता प्राप्त करेंगे।
4. हिंदी के प्रमुख अलंकारों से परिचित होंगे।
5. अलंकारों के लक्षण और उदाहरण समझ सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना :–

साहित्य के कला पक्ष के अंतर्गत विभिन्न सौंदर्यबिंदु आते हैं। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण सौंदर्यबिंदु अलंकार है। मूलतः साहित्य या काव्य सुंदर होता है और उसी को अधिक सुसज्जित करनेवाला एक उपादान अलंकार है।अलंकार के कारण सहज उक्ति को एक प्रभावात्मकता तथा चमत्कृतता प्राप्त होती है। साहित्य सृजन करनेवाले लेखक या कवि को और साहित्य का आनंद लेने की इच्छा रखनेवाले पाठक या श्रोता को अलंकारों का ज्ञान होना आवश्यक होता है। साहित्यशास्त्र संबंधी मौलिक चिंतन करनेवाले कई आचार्यों ने अलंकार को काव्य का प्राण तत्व माना है। अलंकार संप्रदाय के आचार्य भामह और अनुवर्ती आचार्यो ने अपने ग्रंथों में अलंकार का स्वरूप, अलंकार के भेद-उपभेद और उनके लक्षण आदि पर प्रकाश डाला है। अध्ययन की सुविधा के लिए पाठ्यक्रम में कुछ शब्दालंकारों और कुछ अर्थालंकारों का समावेश किया गया है। अलंकार का स्वरूप कैसा है? अलंकार की भाषा कैसी है? अलंकार के भेद और अध्ययनार्थ अलंकारों के लक्षण और उदाहरण आदि संबंधी विद्वानों की धारणा क्या है? इस संदर्भ में हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

4.3 विषय – विवेचन :–

अब हम अलंकार का स्वरूप एवं महत्व, अलंकार शब्द का अर्थ एवं उसकी परिभाषाएँ, अलंकार के प्रकार और पाठ्यक्रम में समाविष्ट अलंकारों के लक्षण और उदाहरणों पर विचार करेंगे।

4.3.1 अलंकार : स्वरूप एवं परिभाषाएँ :

अलंकार शब्द में 'अलम' उप पद है, जो 'कृ' धातु से संज्ञा में अथवा 'करण' के अर्थ में 'धत्र' प्रत्यय होकर निर्मित हुआ है। 'अलम' शब्द का अर्थ है भूषण। अत: अलंकार का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है – जो भूषित, सुशोभित करे वह अलंकार है। भूषित करनेवाला अर्थात्, जो अलंकृत करे वह अलंकार है। जिस प्रकार अलंकारों को धारण करने पर नारी के रूप सौंदर्य में वृद्धि होती है, उसी प्रकार अलंकार से कविता प्रभावी, सरस और सुंदर बनती है। जिस तरह सुंदर वस्तु, व्यक्ति, स्थान, अक्षर, चित्र, नृत्य तथा भाषण आदि मनुष्य का ध्यान आकर्षित करते हैं और अपना प्रभाव मनुष्य के मानस पटल पर छोडते हैं। उसी तरह किसी काव्य में उच्च कोटी के भाव, विचार, कल्पना तत्व के साथ उसका कला पक्ष भी मजबूत हो, तो वह

काव्य अधिक प्रभावात्मक और सफलता प्राप्त करता है। आभूषण पहनने पर स्त्री या पुरुष का सौंदर्य अधिक खुलकर सामने आता है, उसी तरह अलंकार के कारण काव्य में अभिव्यक्त भाव, विचार, कल्पना खुलकर चमत्कृत, प्रभावात्मक रूप से पाठकों के सामने आते हैं। कवि केशवदास ने अलंकार के संबंध में लिखा है-

जद्पि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त

भूषण बिनु न बिराजई कविता, वनिता मित्त।।

अर्थात उच्च कुल एवं जाति में जन्मी, सुस्वभाव की, सौंदर्यवान तथा अच्छे लक्षणोंवाली स्त्री का सौंदर्य भूषण पह्नने से अधिक बढता है। उसी तरह भूषण के बिना कविता शोभती नहीं है।

अत: भारतीय साहित्यशास्त्र में अलंकार का स्थान अक्षुण्ण है। एक कवि, लेखक के लिए जितना महत्त्व अलंकार का है, उतना ही पाठक तथा श्रोता के आनंद की दृष्टि से भी अलंकारयुक्त उक्ति का महत्व है। वस्तुत: अलंकार के कारण कविता कामिनी सुसज्जित होती है। मात्र एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस तरह से किसी भी बात की अति अप्रभावात्मक होती है उसी तरह अलंकारों का अति प्रयोग भी कविता को बोझील बनाता है। इस संदर्भ में कवि बिहारी ने लिखा है – ''सुधो पाय न धरि सकै सोभा ही कै भार'' इस दृष्टि से रचनाकार या कवि अलंकारों का प्रयोग करता है, तो संबंधित कविता का कला पक्ष संतुलित बनता है और कविता का आशय प्रभावात्मक रूप से पाठक तथा श्रोता तक पहुँचने में सहायता मिलती है।

अलंकार : परिभाषाएँ :–

अलंकार को परिभाषित करने का प्रयास विभिन्न विद्वानों ने किया है। अलंकारवादी वामन ने 'सौंदर्य कार:' कहकर अलंकार को सौंदर्य का पर्यायवाची माना है। भामह के पूर्व अलंकार शब्द काव्य के अंतर्गत और बाह्य दोनों रूपों को अलंकृत करनेवाले उपादानों के लिए प्रयुक्त होता था। बाद में आचार्यों में मतभेद होने पर अलंकार का व्यापक अर्थ संकुचित हुआ। यहाँ चुनिंदा विद्वानों ने अलंकार की जो परिभाषाएँ की है, वह इस प्रकार हैं-

1. **आ. भामह** – 'वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टावाचामलंकृति:'

   अर्थात् – शब्द और अर्थ का वैचित्र्य ही अलंकार है।

2. **आ. दण्डी** – 'काव्यशोभाकरान् धर्मालंकारान् प्रचक्षते'

   अर्थात् – अलंकार काव्य को सौंदर्य प्रदान करनेवाले धर्म हैं।

3. **आ. वामन** – 'काव्यं ग्राह्यमलंकारात् सौंदर्यमलंकार:'

   अर्थात् – अलंकार द्वारा ही काव्य ग्राह्य होता है और सौंदर्य ही अलंकार है।

4. **आ. विश्‍वनाथ** –

''शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन:

रसादीनुपकुर्वन्तोऽ लांकारास्तेप्रद:दादिवत्।।''

अर्थात अलंकार काव्य-शोभा को बढानेवाले रस, भाव आदि के उत्कर्ष में सहायक शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं। जो काव्य की शोभा को उस तरह बढाते है जैसे अंगत आदि आभूषण किसी सुंदरी की शोभा को बढाते है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि विश्वनाथ काव्य में अलंकार की अनिवार्यता स्वीकार नहीं करते।

5. आ. रामचंद्र शुक्ल – ''भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव करने में कभी-कभी सहायक होनेवाली उक्ति अलंकार है।''

अत: विद्‌वानों ने अलंकार को परिभाषित करते समय अलंकार को केवल काव्य का बाह्य रूप तत्व ही नहीं माना। बल्कि यह स्वीकारा है कि रस, गुण आदि काव्य की अंतरात्मा को पुष्ट करनेवाले सभी तथ्यों का विकास अलंकार के द्वारा होता है। वे अलंकार को काव्य का स्थिर धर्म मानते हैं। भारतीय आचार्यों ने अलंकार में वैचित्र्य एवं सौंदर्य वृद्धि को अधिक महत्त्व दिया है।

4.3.1.2 अलंकार का महत्त्व :-

भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकारों को कवि की वाणी को सौंदर्य प्रदान करनेवाले माने जाते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकारवादी आचार्यों की सुदीर्घ परंपरा रही है। इन आचार्यों ने अलंकारों का स्वरूप, महत्त्व, भेद, लक्षण तथा उदाहरण पर काफी मौलिक चिंतन किया है। साथ ही अलंकारों की काव्य में उपयोगिता और महत्ता पर गंभीर विवेचन भी किया है। यहाँ अलंकार के महत्त्व संबंधी विवेचन प्रस्तुत है-

1. सफल अभिव्यक्ति के लिए :-

साहित्य के दो प्रमुख तत्व होते हैं - भाव पक्ष और कला पक्ष। भावों को प्रभावात्मक रूप से पहुँचाने का कार्य कला पक्ष के अंतर्गत आनेवाली इकाईयाँ करती हैं। अलंकार उनमें से एक प्रमुख इकाई है। इसीकारण ही काव्यशास्त्र में अलंकारों को यथोचित स्थान दिया गया है। डॉ. सभापति मिश्र जी ने अलंकार के महत्त्व संबंधी लिखा है- ''अलंकार को काव्य की आत्मा न मानने पर भी काव्य में अलंकार के महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। भावावेश की भाषा में अलंकारों का समावेश अपने आप हो जाता है। अनुभूतियों की सघनता के साथ-साथ काव्यभाषा स्वयमेव अलंकारों से सुसज्जित हो जाती है। अलंकारों द्वारा अर्थ गांभीर्य सुनिश्चित होता है तथा कवि अपनी बात सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने में सफल होता है।'' इससे कहना सही होगा कि अलंकार काव्य के कला पक्ष का प्रमुख उपादान है। अलंकारों का प्रयोग भावों की सफल अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होता है। अलंकार भावों को अधिक रमणीय बनाकर एक सौंदर्य प्रदान करते हैं। डॉ. महेंद्र रघुवंशी के विचारानुसार, ''अलंकार भावों को परिष्कृत करके उन्हें चमत्कारपूर्ण और प्रभावोत्पादक बनाते हैं।'' संक्षेप में अलंकारों के कारण साहित्य चाहे वह गद्‌य हो या पद्‌य वह रमणीय तथा आकर्षक बनता है। अत: अलंकारयुक्त भाषा में लिखा साहित्य पढकर पाठक का ह्रदय रसमय होकर विशिष्ट अंग से आप्लवित हो जाता है।

2. सौंदर्यपरक उपादान :–

सौंदर्य की ओर आकर्षित होना मनुष्य का जन्मजात स्वभाव है। मनुष्य केवल स्वयं को सुंदर रूप में देखना ही नहीं चाहता, तो अपने आपको सुंदर ढंग से अभिव्यक्त भी करना चाहता है। कवि भी स्वाभाविक रूप से मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता रखनेवाले अलंकार का महत्त्व समझते हैं। जब कवि काव्य अनुभूति के क्षणों को कलापूर्ण अभिव्यक्त करना चाहता है तब अन्य काव्य सौंदर्य के साधनों के साथ अलंकारों की सहायता लेता है। कवि अलंकारों का सहजता से प्रयोग करके अपना रचना विषय प्रभावात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। प्रतिभावान कवि स्वाभाविक रूप से अलंकारों का प्रयोग करता है। अत: सौंदर्यपरक उपादान के रूप में अलंकार का अलग महत्त्व है।

3. कल्पकता को गति देने की दृष्टि से उपयुक्त :–

साहित्य में अलंकारों का स्थान क्या है? इस संदर्भ में विचार करते समय कई विद्‍वान आलंकारिकता के कारण ही काव्य उपयोगी है ऐसा मानते हैं। तो कई विद्वान अलंकार को एक तरह का बंधन मानते हैं। उनके मतानुसार कवि कल्पना के बंधन में रहकर कल्पना की उडान भरने में असमर्थ होता है। मात्र यह विचार एकांगी एवं पूर्वग्रहदूषितता से प्रभावित है। इसके उलट तटस्थता से चिंतन करें, तो स्पष्ट होता है कि अलंकार कवि की कल्पकता में बाधा नहीं डालते। बल्कि उसकी गति को बढाने का काम करते हैं। जब कवि अपनी काल्पनिकता व्यक्त करने में अपने आपको असमर्थ पाता है, तब वह अलंकार का आधार लेकर कल्पना को गति देता है। कवि अलंकारों की सहायता से अपनी काल्पनिक भावनाएँ सटिक रूप में अभिव्यक्त करता है।

4. रहस्यवाद का प्रस्तुतीकरण करने के लिए आवश्यक :–

रहस्यवादी कवि रहस्यवादी विचार साधारण रूप में अभिव्यक्त नहीं करते। ऐसे कवि को रहस्यवादी विचार तथा भावना व्यक्त करने के लिए रूपक और अन्योक्ति अलंकार जैसे अलंकारों का सहारा लेना पडता है। संत कबीर जैसे रहस्यवादी संत कवियों ने रहस्यवाद के प्रस्तुतीकरण के समय अलंकारों का आश्रय लिया है।

5. सामान्य कथन में लाभप्रद :–

अलंकार साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ही। मात्र लोक व्यवहार में सामान्य कथन को भी अधिक सौंदर्यात्मक, स्पष्टतायुक्त और प्रभावात्मक बनाने में अलंकारों का योगदान रहता है। श्रोताओं को हृदय को छू लेनेवाली अलंकारयुक्त भाषा और शैली आनंद देती है। अलंकारयुक्त भाषा बोलनेवाला व्यक्ति श्रोताओं की दृष्टि से आकर्षण का विषय होता है। इसीकारण केवल कवि ही नहीं पर शब्द, अर्थ, अक्षर, ध्वनि की क्षमता जाननेवाला साधारण मनुष्य और वक्तृत्व कला में माहिर आदमी भी अपनी अलंकारप्रधान वाणी से सामनेवालों के हृदय जीतता है।

6. साहित्य की आत्मा के रूप में महत्त्व :–

आचार्य भामह जैसे अलंकार संप्रदाय के आचार्यों ने तो अलंकार को ही काव्य का सर्वस्व माना है। वे रस का उद्‍भव भी रसवत् नामक अलंकार से ही मानते हैं। आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य की आत्मा

मानकर काव्य के अन्य सौंदर्य अंग रस, ध्वनि को भी अलंकार से प्रभाविने माना है। साहित्य की आत्मा को लेकर विद्वानों में एकमत नहीं है। रसवादियों ने 'रस' को, अलंकारवादियों 'अलंकार' को, रीतिवादियों ने 'रीति'. को तो ध्वनिवादियों ने 'ध्वनि' को काव्य की आत्मा माना है। इससे एक निश्चित है कि विद्वानों ने काव्य सौंदर्य की दृष्टि से जो अधिक महत्त्वपूर्ण साधन समझा उसे काव्य की आत्मा घोषित किया है। पर उन्होंने अन्य सौंदर्यबिंदुओं का महत्त्व नकारा नहीं है। अलंकार काव्य की आत्मा हो या न हो, पर काव्य का सौंदर्य बढानेवाला एक कारण है इसे हम नकारते नहीं है।

नि:संदेह काव्य में अलंकारों को अनन्यसाधारण महत्त्व है। अलंकार काव्य में चमत्कार उत्पन्न करते हैं। मात्र यह भी याद रखना आवश्यक है कि अलंकार काव्य सौंदर्य वृद्धि के साधन हैं, साध्य नहीं। अलंकारों का काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर वे काव्य के मूलतत्वों का स्थान नहीं ले सकते हैं।

4.3.1.3 अलंकार के भेद

भारतीय आचार्यों ने अलंकार निरुपण करते समय ऐसा माना है कि काव्यगत अलंकार शब्द तथा अर्थ में निवास करते हैं। किसी भी कथन में शब्दगत, अर्थगत और शब्दार्थगत प्रकार का चमत्कार एवं सौंदर्य निर्माण होता है। काव्य में अलंकारों की स्थिति के अनुसार अलंकार के तीन भेद किए जाते हैं – 1. शब्दालंकार, 2. अर्थालंकार, 3. उभयालंकार। आचार्य मम्मट के अनुसार इस विभाजन का आधार 'अन्वय व्यतिरेक संबंध' है। जिसके रहने पर जो रहे वह अन्वय कहलाता है और जिसके न रहने पर जो न रहे वह व्यतिरेक। इसका तात्पर्य यह है कि जिस शब्द के कारण चमत्कार हो उसके स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर यदि चमत्कार नष्ट हो जाए तो शब्दालंकार तथा चमत्कार नष्ट न हो तो अर्थालंकार माना जाता है और जहाँ दोनों स्थितियाँ बनी रहे वहाँ शब्दार्थालंकार (उभयालंकार) माना जाता है।

1. शब्दालंकार (Figure of Speech in Words)

जो अलंकार काव्य में शब्द के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं उनको शब्दालंकार कहते हैं। जिस कथन में शब्द को मुख्य और तुलना में अर्थ को गौण स्थान होता है और शब्दों के कारण ही सौंदर्य या चमत्कार निर्माण होता है, वहाँ शब्दालंकार होता है।

शब्दालंकार भाषा का बाह्य सौंदर्य बढाते हैं। इस प्रकार में केवल शब्दगत चमत्कार होता है। शब्दों द्वारा चमत्कार एवं सौंदर्य उत्पन्न किया जाता है। पर जिन शब्दों के कारण किसी कथन में चमत्कार एवं सौंदर्य उत्पन्न किया जाता है। यदि उन शब्दों के स्थान पर उसी अर्थ के दूसरे शब्द रख दिए, तो वहाँ का चमत्कार और सौंदर्य समाप्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि शब्दालंकार में शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता। विद्वान शब्द के दो रूप मानते हैं 1. ध्वनि, 2. अर्थ। ध्वनि के आधार पर शब्दालंकार निर्माण होते हैं। शब्दालंकार में वर्ण या शब्दों की लयात्मकता होती है। राजा भोज ने शब्दालंकार की परिभाषा करते समय लिखा है–

''ये व्युत्पत्यादिना शब्दमलंककर्तुमिहक्षमा :

शब्दालद्द:रसंज्ञास्त।''

जैसे – अनुप्रास यमक, वक्रोक्ति, वीप्सा, पुनरुक्ति प्रकाश, चित्र, श्लेष आदि शब्दालंकार हैं।

2. अर्थालंकार (Figure of Speech in Sense)

जो अलंकार काव्य में अर्थ के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं, उनको अर्थालंकार कहते हैं। जिस कथन में अर्थ को मुख्य और तुलना में शब्द को गौण स्थान होता है और अर्थ के कारण सौंदर्य या चमत्कार निर्माण होता है, वहाँ अर्थालंकार होता है।

दूसरे शब्दों में अर्थ वैचित्र्य की रचना द्वारा काव्य को शोभित करनेवाले अलंकारों को अर्थालंकार कहते हैं। अर्थालंकारों में अर्थ की विचित्रता पर चमत्कार या सौंदर्य निर्माण होता है। अर्थालंकार काव्य को प्राकृतिक सौंदर्य प्रदान करते हैं। अर्थात् शब्द की अपेक्षा अर्थ संबंधी सौंदर्य हो, वहाँ अर्थालंकार होता है। अर्थालंकार में पर्यायवाची शब्द रखने पर भी चमत्कार बना रहता है। जैसे ''सुमनों-सी मुस्कान तुम्हारी'' में सुमनों शब्द के स्थान पर पुष्पों एवं फुलों को रख देने से अलंकार और अर्थगत सौंदर्य में कोई अंतर नहीं पडता। जैसे – उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, भ्रांतिमान, उल्लेख, व्यतिरेक, अन्योक्ती, दृष्टांत, प्रतिव्यस्तुपमा, तुलय-योगिता, दीपक, अपह्नति, निदर्शना, प्रतीप, तद्गुण, मीलित, उन्मीलित, कारणमाला, एकावली, काव्यलिंग, असंगति, परिकर, परिकरांकुर, परिवृत्त, परिसंख्या, प्रत्यनिक, व्याजस्तुति, अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति, मुद्रा, यथासंख्य, पर्यायोक्ति, विभावना, विशेषोक्ति आदि अर्थालंकार हैं।

3. अभयालंकार (Figure of Speech in Words ans Sense)

जो अलंकार काव्य में शब्द और अर्थ दोनों के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं, उनको उभयालंकार कहते हैं। जिस कथन में शब्दगत और अर्थगत दोनों ही कोटी के चमत्कार प्रधान होते हैं, वहाँ उभयालंकार माना जाता है। जैसे – संसृष्टि, संकर आदि उभयालंकार है।

संक्षेप में, अलंकारों के तीन प्रकार हैं। शब्दसंबंधी चमत्कार एवं सौंदर्य से युक्त अलंकारों को शब्दालंकार कहा जाता है। अर्थ संबंधी चमत्कार एवं सौंदर्य युक्त अलंकारों को अर्थालंकार कहते हैं। जिन अलंकारों को में शब्द और अर्थ दोनों का चमत्कार होता है, उन्हें उभयालंकार कहा जाता है।

4.3.1.3 अलंकार के भेद :

आचार्यों ने अलंकारों को तीन प्रकारों में विभक्त किया है – 1. शब्दालंकार (Figure of Speect in Words), 2. अर्थालंकार (Figure of Speech in sence) 3. उभयालंकार (Figure of Speech in Words and Sense) हमारे पाठ्यक्रम में शब्दालंकार और अर्थालंकार का समावेश किया गया है। अतः यहाँ हम उन पर विवेचन करेंगे।

4.3.1.3.1 शब्दालंकार

4.3.1.3.1.1 अनुप्रास (Alliteration)

लक्षण :

1. यह शब्दालंकार है।

2. 'अनुप्रास' शब्द का अर्थ है – 'अनु' अर्थात बार–बार और 'प्रास' का अर्थ पास–पास रखना, अर्थात् जहाँ पर एक ही वर्ण (अक्षर) बार–बार अथवा पास–पास आते हैं, वहाँ पर अनुप्रास अलंकार होता है।

3. जब एक ही वर्ण (अक्षर) की एक की क्रम से आवृत्ति होती है, तब अनुप्रास अलंकार होता है।

4. इसमें केवल व्यंजन वर्णों की समानता या आवृत्ति अपेक्षित है। स्वरों की समानता अपेक्षित नहीं है। स्वर के विषम होने पर भी अनुप्रास अलंकार बना रहता है।

5. अनुप्रास अलंकार के पाँच भेद हैं– छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास, लाटानुप्रास और अंत्यानुप्रास।

उदाहरण :

1. ''चारू चंद्र की चंचल किरणे
   खेल रही थी जल–थल में।
   स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई थी
   अंबर और अवनी स्थल में।।''

ऊपरोक्त काव्य–पंक्तियों में 'च' और 'ल' वर्ण की पुनरावृत्ति हुई है। अत: यहाँ अनुप्रास अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है

2. ''लाली मेरे लाल की, जिथ देखन तिथ लाल।
   लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।''

ऊपरोक्त उदाहरण में 'ल', 'थ' और 'ख' वर्ण की पुनरावृत्ति एक से अधिक बार हुई है। अत: यहाँ पर अनुप्रास अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति दृष्टव्य है।

4.3.1.3.1.2 यमक (Syllables similar in words)

लक्षण :

1. यह शब्दालंकार है।

2. इस अलंकार में एक शब्द की पुनरावृत्ति एक से अधिक बार होती है और अलग–अलग जगह पर उस शब्द का अर्थ अलग–अलग होता है।

3. इस अलंकार में एक ही रूप के भिन्नार्थक या निरर्थक समान स्वरवाले व्यंजनसमुदाय की आवृत्ति होती है।

4. यमक अलंकार के चार उपभेद हैं – सार्थक, निरर्थक, सभंगपद और अभंगपद।

उदाहरण :

1. ''अब क्या सोच रहे हो 'कर्ण?'

कर्ण तक खिंच ले धनुष्य की डोर''

ऊपरोक्त उदाहरण में कर्ण शब्द की पुनरावृत्ति एक से अधिक बार हुई है। पहली पंक्ति में आया हुआ 'कर्ण' शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में महाभारत का पात्र कर्ण है। तो दुसरी पंक्ति में आया हुआ 'कर्ण' शब्द शरीर का एक अंग के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अत: यहाँ यमक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

2. ''कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।

वा खाए बौराय नर या पार बौराय।।''

ऊपरोक्त उदाहरण में पहला 'कनक' शब्द स्वर्ण का वाचक है तथा दूसरे 'कनक' का अर्थ धत्तुरा है। अत: यहाँ यमक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

4.3.1.3.1.3 **श्लेष**

'श्लेष' का शाब्दिक अर्थ है - 'चिपका हुआ'। श्लेष अलंकार में एक से अधिक अर्थ शब्द में चिपके रहते हैं। किसी शब्द का एक बार प्रयोग होने पर भी उसके अर्थ एक से अधिक हो, तो वहाँ पर श्लेष अलंकार होता है।

उदा. १) *''चरन धरत शंका करत, भावत नींद न शोर।*

सुवरन को ढूँढ़त फिरत, कवि व्यभिचारी चोर।।''

यहाँ 'चरन' तथा 'सुवरन' पद श्लिष्ट हैं; जिनके कवि, व्यभिचारी और चोर के साथ भिन्न अर्थ हैं, जो शब्दों को बिना तोड़े हुए निकल आते हैं।

कवि छंद का चरण लिखते हुए त्रुटि की संभावना से शंकित रहता है, तथा वह 'सुवरण'- सुंदर वर्णों को काव्य-प्रयोग के लिए ढूँढ़ता है।

व्यभिचारी 'चरण'- पैरों की आवाज़ से शंका करता है कि कहीं कोई आ न जाए तथा वह 'सुवरण'- सुदर वर्ण (गौरांग) की तलाश में रहता है।

चोर स्वयं 'चरण'- कदम रखते हुए शंकित रहता है तथा वह 'सुवरण'- सोने की तलाश में घूमता है।

यहाँ 'चरण' तथा 'सुवरण' के स्थान पर 'कदम' तथा 'कंचन' रख देने से छंद निरर्थक हो जाएगा। अत: यहाँ श्लेष अलंकार है।

उदा. २) *''चिरजीवै जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।*

को घटि ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।''

यहाँ पर 'हलधर' तथा 'वृषभानुजा' श्लिष्ट पद हैं। 'हलधर' का एक अर्थ है- कृष्ण के बडे भाई बलराम, और दूसरा अर्थ है - हल को धारण करने वाला अर्थात् बैल। किंतु 'वृषभानुजा' के दो अर्थ करने के लिए उसे दो प्रकार से तोड़ना पड़ता है -

वृषभ + नु + जा = (वृषभानु सुता राधिका) तथा

वृषभ + अनुजा = (बैल की भगिनी गाय)।

अत: यहाँ श्लेष अलंकार है।

4.3.1.3.1.4 वक्रोक्ति (Rhetoric / The Crooked Speech)

लक्षण :

1. यह शब्दालंकार है।

2. किसी अन्य से कहे हुए वाक्य का दूसरे व्यक्ति द्वारा श्लेष अथवा काकु उक्ति से अन्य अर्थ कल्पित करना ही वक्रोक्ति अलंकार है।

3. श्रोता जब वक्ता के कथन का अन्य अर्थ कल्पित करता है और उसी कल्पित अर्थ के आधार पर प्रश्न का उत्तर देता है, तो वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।

4. वक्रोक्ति के दो प्रमुख भेद हैं – श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति।

उदाहरण :

1. ''एक कबुतर देख हाथ में पूछा कहाँ अपर है?
   उसने कहा, अपर कैसा? वह उड गया सपर हैं।''

उपरोक्त उदाहरण में नूरजहाँ के हाथ में एक कबुतर देखकर जहाँगीर ने पूछा कि दूसरा कहाँ है? जहाँगीर ने अपर का प्रयोग 'दूसरे' के अर्थ में किया। किंतु नूरजहाँ ने 'अपर' का अर्थ पंख विहिन समझा और उत्तर दिया कि वह पर (पंख) वाला था इसलिए उड गया। अत: यहाँ श्लेष वक्रोक्ति अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई हैं।

2. ''है री लाल तेरे?
   सखी ऐसी निधि पाई कहाँ
   है री खगयान?
   कह्यौ हौ तो नहीं पाले हौ?''

प्रस्तुत उदाहरण में निधि और खग श्लेषार्थी है। नटखट बालकृष्ण की शिकायत करनेवाली गोपी यशोदा को कहती है कि तेरा लाल (बच्चा) अच्छा है। ऐसी निधि (धन) कहा मिली? इसमें अभिधार्थ नहीं है, तो श्रीकृष्ण जैसा नटखट लडके की शिकायत का स्वर प्रमुख है। अत: यहाँ वक्रोक्ति अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई हैं।

4.3.1.3.2 अर्थालंकार

4.3.1.3.1.1 उपमा (Simile)

लक्षण :

1. यह अर्थालंकार है।

2. उपमा का सामान्य अर्थ है किसी वस्तु की अन्य किसी दूसरी वस्तु के साथ समानता के आधार पर तुलना करना।

3. उपमा का शाब्दिक अर्थ है – 'उप' अर्थात समीप से तो 'मा' का अर्थ तौलना (देखना) अर्थात एक वस्तु के समीप दूसरी वस्तु को रखकर उनकी समानता प्रतिपादित करना।

4. जहाँ समान गुण, धर्म या विशेषता के अनुसार एक वस्तु की तुलना किसी दूसरी वस्तु से करके दोनों में समानता देखी जाती है, वहाँ उपमा अलंकार होता है।

5. उपमा अलंकार के चार अंग हैं–

अ) उपमेय (प्रस्तुत) – जिस वस्तु की तुलना की जाती है उसे उपमेय कहते हैं।

आ) उपमान (अप्रस्तुत) – जिस वस्तु से तुलना की जाती है उसे उपमान कहते हैं।

इ) साधारण धर्म – वह गुण अथवा विशेषता जिसके आधार पर उपमेय और उपमान की तुलना की जाती है, उसे साधारण धर्म कहते हैं।

ई) वाचक शब्द – वह शब्द जिसके द्वारा तुलना का भाव प्रकट किया जाता है, उसे वाचक शब्द कहते हैं। वाचक शब्द – सा, सी, से, सरिस, सदृश्य, समान, तुल्य, जैसा आदि।

उदाहरण :

1. ''दो दिवस रहकर कुटी में
आग-सी सुलगा गये हैं।
दीप-सा हिय जल रहा है,
कह दो तुम्हीं कैसे बुझाऊँ।''

उपर्युक्त उदाहरण में उपमेय ह्रदय, उपमान-दीप, साधारण धर्म-जल रहा और वाचक शब्द-सा है। यहाँ पूर्णोपमा अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

2. पीपल पात सरिस मन डोला।

इस उदाहरण में उपमेय- मन, उपमान-पीपल पात, साधारण धर्म-डोलना और वाचक शब्द-सारिस है। अत: यहाँ उपमा अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

3. सीता का मुख चंद्रमा के समान सुंदर है।

इस उदाहरण में उपमेय-सीता का मुख, उपमान-चंद्रमा, साधारण धर्म-सुंदर और वाचक शब्द समान है। अत: यहाँ उपमा अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

4.3.1.3.1.2 रूपक (Metaphor) :

लक्षण :

1. यह अर्थालंकार है।

2. रूपक का मतलब है रूप ग्रहण करना।

3. जब उपमेय पर उपमान का अभेद रूप से आरोप किया जाता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है।

4. इस अलंकार में एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु को इस प्रकार रखा जाता है कि दोनों के बीच का अंतर ही नहीं दिखायी देता है।

5. रूपक अलंकार में उपमा का एक अंग साधारण धर्म का कथन नहीं किया जाता है।

6. इस अलंकार के तीन भेद हैं - अभेद रूपक, तद्रूप रूपक और परंपरित रूपक।

उदाहरण :

1. ''बीती विभावरी जाग री

अम्बर-पनघट में डुबो रही तारा-घट उषा नागरी।''

प्रस्तुत उदाहरण में अंबर पर पनघट का अभेद रूप से आरोप किया है उसी तरह तारा पर घट (कुंभ) और उषा (प्रात:काल) पर नागरि (नवयुवती) का अभेद रूप से आरोप किया है। अत: यहाँ रूपक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

2. नेत्र कमल है।

ऊपरोक्त उदाहरण में नेत्र (उपमेय) और कमल (उपमान) का भेद मिटाकर अभिन्नता दिखाई गई है । नेत्र पर कमल का आरोप है। अत: यहाँ रूपक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

4.3.1.3.1.3 उत्प्रेक्षा

जब उपमेय में उपमान की संभावना या कल्पना कर ली जाए, तब उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। मानहु, मनु, जनु, मानो, जानो, जानहु, ज्यों इन, मन है आदि इसके वाचक शब्द हैं।

1. यह अर्थालंकार है। 2. उत्प्रेक्षा का शाब्दिक अर्थ उद्भावना या आरोप। 3. इस अलंकार के तीन भेद है - वस्तुप्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा।

उदा. 1) *''नील परिधान बीच सुकुमार, खिल रहा मृदुल अधखुला अंग।*

खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।।''

प्रस्तुत उदाहरण में नीले परिधान के बीच खुले रहे अंग में, मेघों के बीच खिल रहे बिजली के फूल की संभावना (कल्पना) की गई है। अत: यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

2) *''नित्य ही नहाता है चंद्र क्षीर-सागर में।*

सुन्दरि! मानो तुम्हारे मुख की समता के लिए।''

प्रस्तुत उदाहरण में चंद्रमा का क्षीरसागर में नहाने का उद्देश्य वास्तव में किसी सुंदरी के मुख की समता करने के लिए नहीं है, फिर भी कवि ने इसकी कल्पना कर ली है। अत: यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

3) *''प्रसाद मानो चाहते हैं चूमना आकाश को।''*

उक्त पंक्ति में प्रासाद का आकाश को छूने में जो आकाश को चूमने का कारण स्थापित किया गया है, वह वास्तविक नहीं है। क्योंकि प्रासाद कभी भी आकाश को नहीं चूमना चाहेंगे। लेकिन फिर भी यह कारण कल्पित किया गया है। 4. नेत्र मानो कमल हैं। अत: यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

4.3.1.3.1.4 दृष्टांत :

लक्षण :

1. यह अर्थालंकार है।
2. जब उपमेय और उपमान वाक्य तथा उनके साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव (भावसाम्य) दिखाई देते है, तब उसे दृष्टांत अलंकार कहते हैं।
3. पहले वाक्य में कोई बात कही जाए तो दूसरे वाक्य में उससे मिलती जुलती कोई दूसरी बात कही जाए।
4. दूसरा वाक्य पहले वाक्य के उदाहरण की तरह हो और दोनों बातों की समता किसी साधारण धर्म की एकता के कारण न हो।

उदाहरण :

1. ''निरखि रूप नंदलाल को दृगनि रुचै अचै नहिं आन।

   तजि पियूष कोऊ करत, कटु औषधी पान।।''

जिन आँखो ने नंदलाल को देख लिया है उन्हे भला और कोई कैसे अच्छा लग सकता है? क्या अमृत को त्याग कर कोई कडवा औषधि को पसंद कर सकता है। यहाँ प्रथम वाक्य का दृष्टांत दूसरे वाक्य में ..... है।

2. ''पापी मनुज भी आज मुख से राम नाम निकालते।

   देखो, भयंकर भेडिये भी आज आसूँ डारते।।''

ऊपरोक्त उदाहरण में पापी मनुष्य का प्रतिबिम्ब भेडिये में तथा राम-नाम का प्रतिबिम्ब आँसू से पड रहा।

4.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न :

निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए विकल्पों में से उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) अलंकार के कुल मिलाकर .... प्रकार हैं।

   अ) पाँच ब) तीन क) दो ड) छ:

2) .... भाषा का बाह्य सौंदर्य बढाते हैं।

   अ) शब्दालंकार ब) अर्थालंकार क) मिश्रालंकार ड) उभयालंकार

3) अनुप्रास .... प्रकार का अलंकार है।

अ) अर्थालंकार ब) शब्दालंकार क) उभयालंकार ड) सुक्ष्मालंकार

4) काव्य में ...... के द्वारा चमत्कार उत्पन्न होता है, तो उनको अर्थालंकार कहते हैं।

अ) भाव ब) शब्द क) विचार ड) अर्थ

5) उपमा अलंकार के कुल .... अंग हैं।

अ) चार ब) तीन क) सात ड) दो

6) काव्य में शब्द और अर्थ के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करनेवाले अलंकार को ...... अलंकार कहते हैं।

अ) अर्थालंकार ब) शब्दालंकार क) उभयालंकार ड) भावालंकार

7) .... में शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता।

अ) उभयालंकार ब) शब्दालंकार क) अर्थालंकार ड) स्थायी अलंकार

9) .... अलंकार में पर्यायवाची शब्द रखने पर भी चमत्कार बना रहता है।

अ) पर्याय ब) शब्दा क) अर्था ड) उभया

9) अलंकार साहित्य का .... पक्ष का एक अंग है।

अ) कला ब) भाव क) विचार ड) कल्पना

10) .... अलंकार में वर्ण (अक्षर) की पुनरावृत्ति होती है।

अ) यमक ब) दृष्टांत क) अनुप्रास ड) विभावना

11) .... अलंकार में शब्द की पुनरावृत्ति होती है और उसका अर्थ अलग-अलग स्थान पर अलग-अलग होता है।

अ) यमक ब) दृष्टांत क) अनुप्रास ड) विभावना

12) कथन में ..... के विषम होने पर भी अनुप्रास अलंकार बना रहता है।

अ) व्यंजनों ब) संयुक्त व्यंजनों क) स्वरों ड) क्रियाओं

13) वक्रोक्ति .... प्रकार का अलंकार है।

अ) शब्दालंकार ब) अर्थालंकार क) वक्र अलंकार ड) भावालंकार

14) 'लाली मेरे लाल की जिथ देखन तिथ लाल' इस पंक्ति में .... अलंकार है।

अ) यमक ब) अनुप्रास क) अन्योक्ति ड) श्लेष

15) वक्रोक्ति अलंकार में किसी ने कहे हुए वाक्य का दूसरा व्यक्ति श्लेष अथवा ..... उक्ति से अन्य अर्थ कल्पित करता है।

अ) काकू ब) सभंग क) अभंग ड) भावपूर्ण

16) 'अब क्या सोच रहे हो कर्ण?' कर्ण तक खिंच ले धनुष्य की डोर।।' इन काव्य-पंक्तियों में .... अलंकार है।

अ) अनुप्रास ब) विभावना क) यमक ड) उपमा

17) ……… अलंकार में किसी एक वस्तु की किसी दूसरी वस्तु के साथ समानता के आधार पर तुलना की जाती है।

अ) उपमेय ब) उपमान क) उपमा ड) विभावना

18) जिस वस्तु की तुलना की जाती है, उसे …… कहते हैं।

अ) उपमेय ब) उपमान क) उपादेय ड) उपक्रम

19) जब उपमेय पर उपमान का अभेद रूप से आरोप किया जाता है, वहाँ ….. अलंकार होता है।

अ) रूपक ब) अनुप्रास क) यमक ड) वीप्सा

20) ……. अलंकार में लोक-मर्यादा का उल्लंघन होनेवाला कथन होता है।

अ) अनुप्रास ब) भ्रांतिमान क) अतिशयोक्ति ड) उत्प्रेक्षा

21) …… संबंधी की जानेवाली विलक्षण कल्पना विभावना अलंकार है।

अ) कारण ब) रूपक क) उपमेय ड) उपमान

22) ''अम्बर पनघट में डूबो रही तारा-घट उषा नागरी'' इस काव्य-पंक्ति में 'अंबर' पर …….. का अभेद रूप से आरोप किया है।

अ) उषा ब) आकाश क) तारा ड) पनघट

23) 'पीपल पात सरिस मन डोला' इस काव्य-पंक्ति में उपमेय …… है।

अ) पीपल ब) पात क) मन ड) डोलना

24) रूपक अलंकार में उपमा का एक अंग ….. का कथन नहीं किया जाता।

अ) उपमेय ब) उपमान क) साधारण धर्म ड) वाचक शब्द

25) उपमा अलंकार में जिस शब्द के द्वारा तुलना का भाव प्रकट किया जाता है उसे ….. शब्द कहते हैं।

अ) लक्ष्यक ब) व्यंगार्थ क) वाचक ड) समानार्थक

26) रूपक ……. प्रकार का अलंकार है।

अ) शब्दालंकार ब) अर्थालंकार क) उभयालंकार ड) रुपालंकार

27) उपमा अलंकार में जिस वस्तु से तुलना की जाती है, उसे ……. कहते हैं।

अ) उपमान ब) प्रस्तुत क) उपमेय ड) वाचक शब्द

28) शब्दालंकार में ………….को प्रधान और तुलना में अर्थ को गौण स्थान होता है।

अ) शब्द ब) कर्म क) भाव ड) विचार।

29) …….. के आधार पर शब्दालंकार उत्पन्न होते हैं।

अ) अर्थ   ब) पद   क) ध्वनि   ड) वाक्य

30) अर्थालंकार काव्य को ....सौंदर्य प्रदान करते हैं।

अ) प्राकृतिक   ब) रचनागत   क) मानवगत   ड) स्वभावगत

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. आभूषित - सुशोभित करना।
2. चारू - सुंदर।
3. आवृत्ति - बार - बार आना, पुनरावृत्ति।
4. अभिन्न - जो भिन्न न हो।
5. चंचल - अस्थिर।
6. सुजाति - उच्च वर्ण की।
7. शोभा - कांति, चमक।
8. चमत्कार - अद्‌भूत, अकल्पित बात।
9. उक्ति - चमत्कार कथन, वचन, अनोखा वाक्य।
10. अवनी - पृथ्वी, भूमि।
11. काकु - कंठ ध्वनि।
12. श्लेष - चिपका हुआ।
13. आकस्मिक - अचानक।
14. नीर - जल, पानी, रस ।
15. पुनि - पुनश:।
16. हिय - हृदय।
17. अरुण - सूर्य, लाल रंग।
18. मधु - वसंत ऋतु।
19. निशाचर - दानव, भूत,चोर।
20. कुटी - झोपडी।
21. सरिस - समान।
22. उपादान - प्राप्ति, वह सामग्री जिससे कोई वस्तु बने।
23. दृष्टांत - निश्चित एवं प्रामाणिक रूप देखना।
24. उत्प्रेक्षा - उद्‌भावना या आरोप।

4.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

उचित पर्याय :

1. तीन	2. शब्दालंकार	3. शब्दालंकार	4. अर्थ
5. चार	6. उभयालंकार	7. शब्दालंकार	8. अर्था
9. कला	10. अनुप्रास	11. यमक	12. स्वरों
13. शब्दालंकार	14. अनुप्रास	15. काकु	16. यमक
17. आवृत्ति	20. उपमा	21. उपमेय	22. रूपक
23. अतिशयोक्ति	24. कारण	25. पनघट	26. मन
27. साधारण धर्म	28. वाचक	29. अर्थालंकार	30. उपमान
31. शब्द	32. ध्वनि	33. प्राकृतिक	

4.7 सारांश :

- अलंकार काव्य की शोभा बढानेवाला प्रमुख साधन है। अलंकार के कारण सामान्य बात विशेष मनोहर रूप में प्रस्तुत हो जाती है।
- अलंकारों के तीन भेद हैं - शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार।
- अलंकार के कारण साहित्य सरस, सुंदर और प्रभावात्मक बन जाता है।
- साहित्य के कला पक्ष का एक प्रमुख सौंदर्यवर्धक उपादन, भावों की सफल अभिव्यक्ति, कल्पकता को गति, रहस्यवाद का प्रस्तुतीकरण तथा श्रोता या पाठक के हृदय को प्रभावित करनेवाला साधन के रूप में अलंकार का विशेष महत्त्व है।
- शब्दालंकारों में शब्दगत सौंदर्य का चमत्कार होता है, तो अर्थालंकार में शब्द की अपेक्षा अर्थ के द्वारा चमत्कार होता है। उभायालंकार में शब्द और अर्थ इन दोनों के कारण काव्य-सौंदर्य में वृद्धी होती है।
- अनुप्रास में एक ही वर्ण की आवृत्ति होती है। वक्रोक्ति में श्लेष अथवा काकु उक्ति से अन्य अर्थ कल्पित किया जाता है। यमक में शब्द की आवृत्ति होती है, परंतु अर्थ में भिन्नता होती है। श्लेष अलंकार में एक से अधिक अर्थ शब्द में चिपके रहते है।
- उपमा में किसी वस्तु, व्यक्ति, व्यंजन आदि की समानता के आधार पर किसी दूसरी वस्तु के साथ तुलना की जाती है। रूपक में उपमेय पर उपमान का अभेद रूप से आरोप किया जाता है। उत्पेक्षा में उपमेय में उपमान की संभावना या कल्पना की जाती है। दृष्टांत में उपमेय और उपमान वाक्य तथा उनके साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव (भावसाम्य) दिखाई देता है।

4.8 स्वाध्याय :

1) निम्नलिखित अलंकारों के लक्षण और उदाहरण लिखिए।

   1. अनुप्रास 2. वक्रोक्ति 3. यमक 4. श्लेष

2) निम्नलिखित अलंकारों के लक्षण और उदाहरण लिखिए।

   1. उपमा 2. रूपक 3. उत्प्रेक्षा 4. दृष्टांत

3) शब्दालंकार और अर्थालंकारके बीच का अंतर स्पष्ट कीजिए।

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

1) पाठ्यक्रम में समाविष्ट अलंकारों के अतिरिक्त अन्य भी अलंकारों के लक्षण और उदाहरण समझने का प्रयास करें।
2) मराठी और अंग्रेजी भाषा के अलंकारों का अध्ययन करें।
3) अलंकार संप्रदाय के आचार्यों के अलंकार संबंधी विचारों का संकलन कीजिए।
4) अलंकार सिद्धांत का अध्ययन कीजिए।
5) अलंकार और साहित्यिक सौंदर्य के अन्य साधन (रस, छंद, ध्वनि, शैली आदि का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
6) साहित्यिक रचना पढ़ते समय रचनाकार द्वारा प्रयुक्त अलंकारों के प्रकार पहचानकर पंक्तियों की सूची बनाइए।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत : डॉ. गोविंद त्रिगुणायात
2) काव्यशास्त्र : डॉ भगीरथ मिश्र
3) हिंदी व्याकरण रस-छंद-अलंकार सहित : डॉ. उमेशचंद्र शुक्ल
4) साहित्यशास्त्र : डॉ. चंद्रभानु सोनवणे
5) काव्यशास्त्र : विविध आयाम : सं. डॉ. मधु खराटे
6) हिंदी व्याकरण विमर्श : डॉ. ब्रज किशोर प्रसाद सिंह
7) छंद , अलंकार, रस : डॉ उर्मिला पाटिल
8) भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन : डॉ. सत्यदेव चौधरी, डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त

❑❑❑

इकाई –1
महाकाव्य, प्रगीत, ग़ज़ल

अनुक्रम

1.1 उद्‌देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय – विवेचन

1.3.1 महाकाव्य

1.3.1.1 भारतीय दृष्टि से महाकाव्य

1.3.1.1.1 आचार्य भामह

1.3.1.1.2 आचार्य दण्डी

1.3.1.1.3 रुद्रट

1.3.1.1.4 आचार्य हेमचंद्र

1.3.1.1.5 आचार्य विश्वनाथ

1.3.1.1.6 आचार्य रामचंद्र शुक्ल

1.3.1.1.7 डॉ. बाबू गुलाबराय

1.3.1.1.8 डॉ. शंभूनाथ सिंह

1.3.1.1.9 सुमित्रानंदन पंत

1.3.1.2 महाकाव्य के भारतीय तत्त्व

1.3.1.2.1 कथावस्तु

1.3.1.2.2 पात्र और चरित्र चित्रण (नायक)

1.3.1.2.3 वस्तु व्यापार और परिस्थिति (वर्णन)

1.3.1.2.4 रस और भाव व्यंजना

1.3.1.2.5 छंद

1.3.1.2.6 नाम (शीर्षक)

1.3.1.2.7 उद्देश्य

1.3.2 प्रगीत काव्य

1.3.2.1 प्रगीत शब्द का अर्थ

1.3.2.2 प्रगीत का स्वरूप

1.3.2.3 प्रगीत की परिभाषाएँ

1.3.2.3.1 महादेवी वर्मा

1.3.2.3.2 डॉ. नगेंद्र

1.3.2.3.3 रविंद्रनाथ टागोर

1.3.2.3.4 डॉक्टर गणपती चंद्रगुप्त

1.3.2.3.5 बाबू गुलाब राय

1.3.2.3.6 डॉ. कृष्णदत्त अवस्थी

1.3.2.3.7 रामखेलावन पांडेय

1.3.2.3.8 एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका

1.3.2.3.9 अर्नेस्ट राइस

1.3.2.3.10 हरबर्ट रीड

1.3.2.3.11 हडसन

1.3.2.3.12 हीगेल

1.3.2.3.13 प्रो गुमरे

1.3.2.3.14 रस्कीन

1.3.3.3 प्रगीत काव्य या गीतिकाव्य के तत्त्व

1.3.3.3.1 भावप्रवणता (भाव-तत्त्व)

1.3.3.3.2 संगीतात्मकता

1.3.3.3.3 वैयक्तिकता

1.3.3.3.4 कल्पनाशीलता

1.3.3.3.5 संक्षिप्तता

1.3.3.3.6 रागात्मक अन्विति

1.3.3.3.7 कोमलकांत पदावली का प्रयोग

1.3.3.3.8 सहज भाषा-शैली

1.3.3.3.9 सहज अन्त: प्रेरणा

1.3.3 ग़ज़ल

1.3.3.1 ग़ज़ल शब्द का अर्थ

1.3.3.2 ग़ज़ल की परिभाषाएँ

1.3.3.2.1 नालंदा विशाल शब्द सागर

1.3.3.2.2 रघुपति सहाय ''फिराक गोरखपुरी''
1.3.3.2.3 डॉ. नगेंद्र
1.3.3.2.4 डॉ. अरशद जमाल
1.3.3.2.5 डॉ. नगेंद्र वशिष्ठ
1.3.3.2.6 डॉ. सरदार मुजावर
1.3.3.2.7 डॉ. मधु खराटे
1.3.3.2.8 डॉ. नरेश
1.3.3.3 ग़ज़ल के रंग
1.3.3.2.1 शेर
1.3.3.2.2 मिसरा
1.3.3.2.3 काफिया
1.3.3.2.4 रदीफ
1.3.3.2.5 मतला
1.3.3.2.6 मकता
1.4 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न
1.5 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर
1.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ
1.7 सारांश
1.8 स्वाध्याय
1.9 क्षेत्रीय कार्य
1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्‌देश्य :

प्रस्तुत इकई पढ़ने के बाद आप,

1. काव्य के विभिन्न भागों से परिचित हो जाएँगे।
2. महाकाव्य विषयक भारतीय तथा पश्चिमी मान्यताओं को समझ सकेंगे।
3. महाकाव्य के भारतीय तथा पश्चिमी तत्वों से अवगत हो जाएँगे।
4. महाकाव्य के तत्वों के आधार पर किसी भी महाकाव्य की समीक्षा करने में समर्थ हो जाएँगे।
5. प्रगीत का स्वरूप, परिभाषाएं, तत्व, भेद आदि से परिचित होंगे।

6. ग़ज़ल शब्द का अर्थ, ग़ज़ल की परिभाषाएं ग़ज़ल के अंग आदि से अवगत हो जाएँगे।

7. महाकाव्य, प्रगीत, ग़ज़ल आदि विधाओं के सृजन की प्रेरणा मिल जाएगी।

1.2 प्रस्तावना :

साहित्य समाज का दर्पण है। वह हमेशा मनुष्य का सहचर बना हुआ है। मनोरंजन तथा ज्ञान का साधन बना हुआ है। साहित्य के अंतर्गत अनेक विधाएँ हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक साहित्य का सृजन हो रहा है। यह कार्य आज भी निरंतर हो रहा है और आगे भी होता रहेगा। युगानुरूप साहित्य बदलता जा रहा है। कविता भी इसके लिए अपवाद नहीं है। हमारे पाठ्यक्रम में महाकाव्य, प्रगीत काव्य तथा ग़ज़ल का समावेश किया गया है। अतः यहाँ हम उन पर विवेचन करेंगे।

1.3 विषय – विवेचन :

अब तक आपने जो पढ़ाई की उसके अंतर्गत अनेक कविताओं का अध्ययन किया होगा लेकिन कभी कार्य के भेदों के बारे में गहराई से सोचा नहीं होगा। बी.ए. भाग दो में अध्ययन करते समय आपने खंडकाव्य पढ़ा होगा। आधुनिक कविताओं का अध्ययन किया होगा लेकिन महाकाव्य तथा प्रगीत के भेदों के बारे में नहीं सोचा होगा साथ ही आपने ग़ज़ल पढ़ी होगी लेकिन ग़ज़ल के अंगों से आप परिचित नहीं हुए होंगे। इसलिए हम इस इकाई में महाकाव्य क्या है? महाकाव्य विषयक विभिन्न विद्वानों की मान्यताएँ क्या हैं? महाकाव्य के भारतीय तत्व कौन से हैं? प्रगीत काव्य किसे कहते हैं? प्रगीत के तत्व क्या हैं? ग़ज़ल क्या है? ग़ज़ल शब्द का अर्थ क्या है? ग़ज़ल की परिभाषाएँ तथा ग़ज़ल के अंग आदि का विवेचन करेंगे। जिससे आपको इन विधाओं को बेहतर तरीके से समझने में आसानी होगी।

1.3.1 महाकाव्य :

काव्य भेदों के बारे में विभिन्न आचार्यों ने गहन चिंतन के आधार पर अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। रूप रचना या स्वरूप विधान की दृष्टि से काव्य के दो प्रमुख भेद स्वीकार किए गए हैं-

1. प्रबंध काव्य
2. मुक्तक काव्य

प्रबंध काव्य ऐसी सर्जना को कहा जाता है जिसके सभी पद एक ही अन्तर्भूत कथानक के माध्यम से अंतः- संयोजित रहा करते हैं। इसके समग्र स्वरूप में एक ही भाव-संयत विचार की अन्विति एवं एक ही वस्तु की चरम परिणति अंकित की जाती है। प्रबंध काव्य के तीन प्रमुख भेद हैं- 1. महाकाव्य 2. खंडकाव्य 3. एकार्थ काव्य। पाठ्यक्रम के अंतर्गत महाकाव्य का समावेश किया गया है।

महाकाव्य शब्द महत और काव्य इन दो शब्दों के योग से बना है। महाकाव्य एक प्रकार का अर्थ है महत या बहुत बड़ा या विस्तृत काव्य ग्रंथ अथवा सर्वश्रेष्ठ काव्य। जिसमें जीवन का सर्वांगीण रूप विशाल पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत किया जाता है।

1.3.1.1 भारतीय दृष्टि से महाकाव्य :

भारतीय काव्यचिंतकों ने महाकाव्य के स्वरूप पर गहन चिंतन एवं अध्ययन किया है। एक ओर महाकाव्य की परिभाषाओं में एकता दिखाई देती है तो दूसरी ओर भिन्नता भी दिखाई देती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि विभिन्न युगों में महाकाव्य विषय चिंतन में परिवर्तन आया । विभिन्न आचार्यों ने युगानुरूप महाकाव्य के लिए मापदंड निर्धारित किए। इसी कारण महाकाव्य की परिभाषाओं में भिन्नता नजर आती है।

1.3.1.1.1 आचार्य भामह :

महाकाव्य की परिभाषा निश्चित करने वाले प्राचीनतम् आचार्य भामह हैं। इन्होंने अपने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में महाकाव्य की परिभाषा दी है–

सर्गबद्धो महाकाव्यं महतां च महत्व यत्।

अग्राम्य शब्दमर्थ च सालंकारं सदाश्रयम्।

मंत्र दूत प्रयाणाजिन नायकाभ्युदयश्च वत।

पंचभि: संधि भिर्युक्तं नाति व्याख्येमृध्दियत्।।

इस परिभाषा के आधार पर उन्होंने जिन तत्वों को पकड़ा है वह यह हैं–

1. महाकाव्य में सर्ग बद्धता होनी चाहिए।

2. काव्य का आकार बड़ा होना चाहिए।

3. महाकाव्य का कथानक उदात्त होना चाहिए।

4. महाकाव्य में शब्द चयन और प्रस्तुत विधान उत्कृष्ट होना चाहिए, अर्थात शिष्ट नगर प्रयोग और अलंकृति।

5. महाकाव्य में महान चरित्र और विजयी नायक का समावेश होना चाहिए।

6. महाकाव्य में नाटकीय संधियों का निर्वाह होना चाहिए।

7. महाकाव्य में जीवन के विविध रूपों, अवस्थाओं और घटनाओं का चित्रण होना चाहिए।

8. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से किसी एक फल की प्राप्ति को दिखलाना चाहिए।

9. महाकाव्य में एक प्रधान रस हो, साथ ही अन्य रसों का भी वर्णन हो।

10. महाकाव्य में दरबार, वातावरण, दूतों का योग, युद्ध का अभियान, बाह्य संघर्ष, सूर्य, चंद्र, नदी आदि का वर्णन हो।

11. महाकाव्य में अलंकारयुक्त, अग्रामीण भाषा का प्रयोग हो।

1.3.1.1.2 आचार्य दण्डी :

दण्डी ने आचार्य भामह की परिभाषा ग्रहण करते हुए महाकाव्य के स्थूल व बाह्य लक्षण पर विशेष बल दिया है। दण्डी ने अपने 'काव्यदर्श' नामक ग्रंथ में महाकाव्य के बारे में लिखा है–

1. महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक होना चाहिए।

2. नायक उदात्त एवं चतुर होना चाहिए।

3. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि में से किसी एक फल की प्राप्ति को दिखलाना आवश्यक है।

4. महाकाव्य की भाषा अलंकारयुक्त हो।

5. महाकाव्य आकार में बड़ा होना चाहिए।

6. सर्ग और छंदों पर विशेष ध्यान हो।

7. रस काव्य का प्राण है अर्थात महाकाव्य रसों से भरा हो।

1.3.1.1.3 रुद्रट :

रुद्रट कृत महाकाव्य की परिभाषा संस्कृत के सभी अलंकारवादियों से भिन्न तथा रामायण, महाभारत, एवं प्राकृत-अपभ्रंश के महाकाव्यों की दृष्टि में रखकर बनाई गई प्रतीत होती है। रुद्रट की परिभाषा के अनुसार महाकाव्य के लक्षण निम्न प्रकार से हैं-

1. महाकाव्य की कथा सर्ग बध्द और नाटकीय तत्वों से युक्त होती है।

2. महाकाव्य में प्रसंगानुसार अवांतर कथाएँ होती हैं अर्थात उसमें पुराण और कथा-अख्यायिका के तत्व होते हैं।

3. महाकाव्य में जीवन की समग्रता का चित्रण होता है और किसी प्रधान घटना जैसे- युद्ध या साहसिक कार्य आदि के आश्रय से अलंकृत वर्णन, प्रकृति-चित्रण और विभिन्न नगरों, देशों और भुवनों (स्वर्गादि) के वर्णन का विधान होता है।

4. महाकाव्य का नायक द्विज कुलोत्पन, सर्वगुण संपन्न, महान, वीर और शक्तिमान, नीतिज्ञ और कुशल राजा होता है।

5. महाकाव्य में प्रतिनायक और उसके कुल का भी वर्णन होता है।

6. महाकाव्य के अंत में नायक की विजय दिखाई जाती है, प्रतिनायक की नहीं।

7. महाकाव्य में महान उद्देश्य जैसे चतुर्थ वर्ग फल की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार रुद्रट ने महाकाव्य के संकीर्ण लक्षणों का नहीं उसके व्यापक और आवश्यक तत्वों का निर्देश किया है।

1.3.1.1.4 आचार्य हेमचंद्र :

हेमचंद्र ने महाकाव्य के लक्षण प्रस्तुत करते हुए अपने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों की ही पुनरावृत्ति की है। साथ ही इसमें कुछ नवीन सूत्र जोड़कर महाकाव्य के स्वरूप का निरूपण किया है। हेमचंद्र 'समस्तलोकरंजकता' को महाकाव्य का प्रधान उद्देश्य मानते हैं। इनकी द्वितीय मान्यता यह है कि संस्कृत महाकाव्य में सर्ग के स्थान पर आश्वासक में भी कथा का विभाजन हो। समस्त महाकाव्य में इन्होंने एक ही छंद के प्रयोग पर बल दिया है अर्थात संपूर्ण रचना यदि एक ही छंद में लिखी जाए तो दोष नहीं माना

जाएगा। इनकी चौथी नवीनता यह है कि महाकाव्य की मूल कथा में नगर, सागर, पर्वत आदि विषयों का समावेश न हो सके तो अवांतर कथाओं के रूप में इनका वर्णन कर इस अभाव की पूर्ति की जा सकती है।

1.3.1.1.5 आचार्य विश्वनाथ :

महाकाव्य की विस्तृत और स्पष्ट परिभाषा आचार्य विश्वनाथ की है। इन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों की विशेषताओं का समावेश कर अपने महाकाव्य विषयक मत का व्याख्यान किया है। इनका लक्षण इस प्रकार है –

1. महाकाव्य की कथा सर्गबद्ध होनी चाहिए।

2. महाकाव्य का नायक कोई देवता या धीरोदात्त, कुलीन और छत्रिय हो। एक वंश में उत्पन्न अनेक राजा भी महाकाव्य के नायक हो सकते हैं।

3. महाकाव्य में श्रृंगार, वीर और शांत इन तीनों रसों में से एक प्रधान होना चाहिए और अप्रधान रूप से सभी रस प्रयुक्त होने चाहिए।

4. महाकाव्य में नाटक की सभी संधियों का समावेश होना चाहिए।

5. महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा किसी सज्जन से संबद्ध रहना चाहिए।

6. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्वर्गों में से कोई एक महाकाव्य का फल होना चाहिए।

7. महाकाव्य के प्रारंभ में नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक या आशीर्वाद के रूप में मंगलाचरण का विधान होना चाहिए।

8. महाकाव्य में सज्जन की प्रशंसा और दुर्जन निंदा होनी चाहिए।

9. महाकाव्य में न तो अत्यंत बड़े और ना अत्यंत छोटे आठ से अधिक सर्ग हो और प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग किया जाना चाहिए किंतु सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन होना चाहिए।

1.3.1.1.6 आचार्य रामचंद्र शुक्ल :

'महाकाव्य का इतिवृत्त व्यापक और सुसंगठित होना चाहिए, सामाजिक को आंदोलित करनेवाली वस्तुओं और व्यापारों का चित्रण होना चाहिए, रसानुभूति में सहायक, विशद, प्रांजल तथा सुष्ठु भाव व्यंजना होने चाहिए। संवाद रोचक, नाटकीय तथा औचित्य पूर्ण होने चाहिए।'

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने महाकाव्य में केवल चार तत्वों की महत्ता स्वीकार की है– इतिवृत्त, वस्तु व्यापार, वर्णन, भावव्यंजना और संवाद। शुक्ल जी ने अप्रत्यक्ष रूप से महाकाव्य में संदेश की महानता और शैली की प्रौढ़ता का उल्लेख किया है।

1.3.1.1.7 डॉ. बाबू गुलाबराय :

'महाकाव्य यह विषयप्रधान काव्य है, जिसमें अपेक्षाकृत बड़े आकार में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।'

1.3.1.1.8 डॉ. शंभूनाथ सिंह :

'महाकाव्य वह छंदबद्ध रचना है, जो तीव्र कथा-प्रवाह के साथ-साथ मानवीय अनुभूतियों का लेखा-जोखा रखती है।'

1.3.1.1.9 सुमित्रानंदन पंत :

'महाकाव्य मानव सभ्यता के संघर्ष तथा सांस्कृतिक विकास में जीवंत पर्वताकार दर्पण है, जिसमें मुख देखकर मानवता अपने को पहचानने में समर्थ होती है।'

उपर्युक्त आचार्यों की विवेचना के आधार पर महाकाव्य विषयक भारतीय दृष्टिकोण का सामान्य रूप प्रस्तुत किया जा सकता है और उनके प्रमुख तत्वों की मीमांसा की जा सकती है।

1.3.1.2 महाकाव्य के भारतीय तत्त्व :

महाकाव्य संबंधी भारतीय धारणा का विश्लेषण करने पर निम्नांकित तत्व बनाए जा सकते हैं।

1.3.1.2.1 कथावस्तु :

काव्य में कथावस्तु अनिवार्य तत्व है। लगभग सभी भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य में कथा का होना आवश्यक बताया है। महाकाव्य की कथावस्तु इतिहास पुराण और लोक प्रसिद्ध कथा के आधार पर होनी चाहिए। महाकाव्य का कलेवर विशाल होता है, उसमें नायक के जीवन की संपूर्ण झांकी प्रस्तुत की जाती है। कथावस्तु का प्राण कोई एक घटना होती है। उसी घटना पर आधारित पूरी कथा होती है। प्रारंभ से अंत तक चलने वाली कथा को मुख्य कथानक कहा जाता है। मुख्य कथा का विकास करने के लिए बीच-बीच में प्रासंगिक कथाओं का होना भी महत्वपूर्ण होता है। महाकाव्य का आरंभ मंगलाचरण से होना चाहिए। मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है- आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक। महाकाव्य का आरंभ मंगलाचरण से इसलिए किया जाना चाहिए कि महाकाव्य विशाल होता है। इस विशाल काव्य रचना को पूरा करने में कोई बाधा ना आए, निर्विघ्न रुप से महाकाव्य पूरा हो जाए इसलिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। महाकाव्य की कथावस्तु कम से कम आठ वर्गों में विभाजित होनी चाहिए। महाकाव्य के कथानक के लिए ज्यादा से ज्यादा तीस सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य की कथावस्तु को सर्गों में विभाजित किया जाना आवश्यक है ताकि नाटक की पांचों संधियों की पद्धति सरलता से अपनाई जा सके। नाट्य सन्धियों को अपनाने का कारण यह है कि नाटक की तरह महाकाव्य में संगठितता आ जाए। प्रत्येक सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन किया जाना अपेक्षित है। सर्ग के अंत में आगामी सर्ग की कथावस्तु की सूचना होनी चाहिए। महाकाव्य का प्रत्येक सर्ग एक दूसरे से बंधा होना चाहिए। महाकाव्य की कथावस्तु उदात्त होनी चाहिए। मुख्य फल प्राप्ति के बाद कथानक पूरा हो जाता है। कथावस्तु की समाप्ति पर महाकाव्यकार की कोई महत्वपूर्ण पंक्ति होती है उसे 'भरतवाक्य' कहते हैं।

1.3.1.2.2 पात्र और चरित्र चित्रण (नायक) :

महाकाव्य का दूसरा प्रधान तत्व नायक अथवा अन्य प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण है । भारतीय आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में नायक महत्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होना चाहिए। महाकाव्य का नायक कोई देवता या उच्च कुल में उत्पन्न क्षत्रिय राजा होना चाहिए। नायक महाकाव्य के सभी प्रसंगों से जुड़ा होना चाहिए। महाकाव्य का नायक उदात्त, गंभीर, कीर्तिसंपन्न, व्यवहार कुशल, धर्मप्रिय, न्यायप्रिय कलाप्रिय, उत्साही, पराक्रमी, शक्तिशाली होना चाहिए। नायक का चरित्र समाज में सद्प्रवृत्ति का विकास करने वाला होना चाहिए। प्रतिकूल परिस्थिति में भी विजय हासिल करने वाला हो। महाकाव्य में नायक के साथ-साथ अन्य पात्रों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। महाकाव्य में नायिका का महत्वपूर्ण स्थान है। वह नायक की प्रेमिका अथवा पत्नी होती है। भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य में खलनायक को महत्वपूर्ण माना है। नायक के कार्य का विरोध करने वाला पात्र खलनायक होता है। प्रतिनायक या खलनायक कथावस्तु में संघर्ष को बढ़ाता है, जिससे नायक के चरित्र का विकास होता है। महाकाव्य में उपर्युक्त तीन पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्र भी होते हैं। इन पात्रों के माध्यम से विविध क्षेत्रों का वर्णन किया जाता है। इतना ही कहा जा सकता है कि महाकाव्य के नायक का स्थान सर्वोच्च या सर्वश्रेष्ठ होना चाहिए।

1.3.1.2.3 वस्तु व्यापार और परिस्थिति (वर्णन) :

अलंकृत महाकाव्य का प्रमुख लक्षण यही है कि उसमें वस्तु व्यापार और परिस्थिति का वर्णन हो। इसके अंतर्गत प्रकृति चित्रण जैसे- प्रेम विवाह, मिलन, कुमारोदय, संगीत, मधुपान, गोष्ठी, राजकाल मंत्रणा, यज्ञ, सैनिक अभियान, युद्ध प्रसंग, ऋतुओं का वर्णन, उत्सवों का वर्णन आदि। इस प्रकार के वर्णन से महाकाव्य में जीवंतता आती है। महाकाव्य में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। महाकाव्य में विविधता दिखाने के लिए यह तत्व अनिवार्य है।

1.3.1.2.4 रस और भाव व्यंजना :

रस महाकाव्य का महत्वपूर्ण तत्व है। महाकाव्य में सभी रसों का वर्णन होना चाहिए। रस की उत्पत्ति पात्रों और परिस्थितियों के संपर्क तथा संघर्ष एवं प्रतिक्रिया से होती है। रस योजना का अभिप्राय पात्रों की मानसिक स्थिति का वर्णन करना भी है। महाकाव्य में प्रधानत: श्रृंगार, वीर और शांत रस का वर्णन होना आवश्यक है। इन तीनों में से कोई एक प्रधान रस होना चाहिए, अन्य रस गौण रस के रूप में आने चाहिए। रस के कारण महाकाव्य हृदयस्पर्शी और हर्षदायक बनता है। भाव व्यंजना भी महाकाव्य में आवश्यक है, पर वह संवाद रूप में न होकर कवि वर्णन के रूप में होती है।

1.3.1.2.5 छंद :

महाकाव्य सर्गबद्ध तथा छंद बद्ध रचना है। महाकाव्य की कथा का विकास करने के लिए छंद का होना अनिवार्य है। छंद के कारण रसप्रवाह आता है। इसके लिए एक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग किया जाना चाहिए। सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन अपेक्षित है। अंतिम छंद में आने वाले सर्ग की कथावस्तु की

सूचना होनी चाहिए। प्रत्येक सर्ग में स्वतंत्र छंद का प्रयोग हो। कभी-कभी चमत्कार वैविध्य एवं अद्भुत रस की निष्पत्ति के लिए एक सर्ग में अनेक शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं। छंद के कारण महाकाव्य में एक प्रकार की प्रभावोत्पादकता आती है। गति बनी रहती है। नादमाधुर्य आता है। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में अलग-अलग छंद होता है लेकिन वे एक दूसरे से संबंधित रहते हैं, पूरक रहते हैं। लगभग सभी आचार्यों ने महाकाव्य में छंद को अनिवार्य माना है।

1.3.1.2.6 नाम (शीर्षक) :

महाकाव्य का शीर्षक या नामकरण महाकाव्य के नायक, नायिका, विषयवस्तु के आधार पर होना आवश्यक है। महाकाव्य का शीर्षक लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करनेवाला होना चाहिए। महाकाव्य का शीर्षक विसंगत ना हो। शीर्षक कथावस्तु के अनुकूल होना चाहिए, औचित्यपूर्ण तथा अर्थपूर्ण होना चाहिए। महाकाव्य का शीर्षक या नाम प्रभावशाली और उदात्त होना चाहिए।

1.3.1.2.7 उद्देश्य :

कोई भी रचना निरुद्देश नहीं होती, हर रचना के पीछे कोई ना कोई उद्देश्य आवश्यक होता है। महाकाव्य तो सोद्देश्य रचना है। महाकाव्य महानता का प्रकाशक होता है। भारतीय आचार्यों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि में से किसी एक के फल की प्राप्ति को उद्देश्य माना है। नायक अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमेशा संघर्षरत रहता है। महान संदेश देना, किसी व्यक्ति के महान कार्य को उद्घाटित करना, नायक के चरित्र पर प्रकाश डालना, नायक की विजय दिखलाना, असत्य पर सत्य की विजय दिखलाना, सच्चरित्र का निर्माण करना, लोकरंजन, राष्ट्रभक्ति, नैतिक आदर्श की स्थापना करना, मानवतावादी मूल्यों की रक्षा करना, नायक के चरित्र से प्रेरणा देना आदि कई उद्देश्य महाकाव्य लेखन के पीछे हो सकते हैं।

1.3.2 प्रगीत काव्य :

भारतीय आचार्य ने काव्य के दो भेद किए हैं- प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रबंध काव्य में कथा के सूत्र में सारे पद बँधे हुए होते हैं। इसके विरूद्ध मुक्तक काव्य में प्रत्येक पद स्वतंत्र होता है। मुक्तक काव्य में एक भाव, एक अनुभूति या एक कल्पना का चित्रण होता है। मुक्तक में कोई कथा सूत्र नहीं होता। प्रत्येक पद अपने आप में पूर्ण भाव का अर्थ व्यक्त करता है। प्रत्येक पद अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है। मुक्त काव्य के दो भेद किए जाते हैं-

1. पाठ्यमुक्तक
2. गेयमुक्तक

पाठ्य मुक्तक :

पाठ्य मुक्तक रचनाओं में विषय की प्रधानता होती है। इसमें विभिन्न विषयों पर लिखी गई छोटी-छोटी विचार प्रधान रचनाएँ होती हैं, जिनमें किसी प्रसंग को लेकर भावानुभूति का चित्रण होता है। अथवा किसी विचार या रिति का वर्णन किया जाता है। 'तार सप्तक की रचनाएँ', सुमित्रानंदन पंत की 'पतझड़' सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी की 'भिक्षुक, वह तोड़ती पत्थर' आदि रचनाएँ इसी के अंतर्गत आती है।

गेय मुक्तक :

इसे वित्तीय प्रगति काव्य भी कहते हैं यह अंग्रेजी के लिरिक का समानार्थी है। इसमें भाव प्रवणता, आत्माभिव्यक्ति सौन्दर्यमय कल्पना, संक्षिप्त संगीतात्मकता की प्रधानता होती है। कबीर, तुलसी, रहीम के भक्ति एवं नीति के दोहे तथा बिहारी, मतिराम, देव आदि की रचनाएँ इसी कोटि में आती है।

1.3.2.1 प्रगीत शब्द का अर्थ :

काव्य के विभिन्न रूपों के अंतर्गत 'प्रगीत' काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रचलित शब्द 'गीत' में 'प्र' उपसर्ग जोड़कर बनाया गया है। शब्दकोशों में भी प्रगीत का अर्थ 'गीत' या 'गान' दिया है। प्रगीत को अंग्रेजी में (लिरिक) Lyric कहा जाता है। प्रगीत को गीत, गीतिकाव्य आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। प्रगीत में भावों की प्रधानता रहती है। मानव सभ्यता में गीतकाव्य की परंपरा बड़ी प्राचीन मानी गयी है।

1.3.2.2 प्रगीत शब्द का अर्थ :

गीतिकाव्य को प्रगीत भी कहा जाता है। यह एक सर्वाधिक नवीन एवं सशक्त विधा है। भरत के नाट्यशास्त्र में गीत शब्द का प्राचीनतम प्रयोग मिलता है। आचार्य हेमचंद्र ने इस संबंध में लिखा है – ''गीतं शब्दित गानयो:।.'' मुक्तक काव्य के अंतर्गत गीतिकाव्य को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। गाया जा सकने वाला काव्य गीतिकाव्य कहलाता है, परंतु प्रत्येक गाए जाने वाले काव्य को गीतिकाव्य नहीं कहा जा सकता। जिस गीत में तीव्र भावानुभूति, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता आदि गुण होते हैं, उसे गीतिकाव्य कहते हैं।

गीतिकाव्य में कवि अपने व्यक्तिगत सुख-दुख की तीव्रतम अनुभूति को व्यक्त करने के लिए संगीत प्रधान कोमल शब्दावली को चुनता है। इसमें सरसता, कोमलता, रागात्मकता, लाघव, मार्मिकता और वैयक्तिकता के गुण विद्यमान रहते। गीतिकाव्य कवि के हृदय का स्पंदन होता है, जिसमें वह प्रेम, कलह, वेदना, हर्ष, विषाद आदि का चित्रण करता है। इसकी रचना करने के लिए कवि बाह्य जगत् को अपने अंतःकरण में ले जाकर इसे भावपूर्ण बनाता है। गीत के रूप में उसकी आत्माभिव्यंजना अत्यंत सशक्त होती है। वह शब्द साधना के साथ-साथ स्वर साधना भी करता है।

1.3.2.3 प्रगीत की परिभाषाएँ :

विद्वानों ने गीतिकाव्य को निम्न रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है-

भारतीय विचारकों के गीतिकाव्य संबंधी मत –

1.3.2.3.1 महादेवी वर्मा – ''सुख-दुख की भावावेगमयी अवस्था-विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर-संधान से उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति है।''

1.3.2.3.2 डॉ. नगेंद्र : ''गीतिकाव्य की आत्मा है भाव, जो किसी प्रेरणा के भार से दबकर एक साथ गीत में फूट निकलता है।''

1.3.2.3.3 रविंद्रनाथ टैगोर : ''मन में जब एक वेगवान अनुभव का उदय होता है तब कवि से गीत काव्य में प्रकाशित किये बिना नहीं रह सकते।''

1.3.2.3.4 डॉक्टर गणपति चंद्रगुप्त : ''गीतिकाव्य एक ऐसी लघु आकार एवं मुक्तक शैली में रचित रचना है जिसमें कवि निजी अनुभूतियों या किसी एक भाव-दशा का प्रकाशन गीत या लयपूर्ण कोमल पदावली में करता है।''

1.3.2.3.5 बाबू गुलाब राय : ''प्रगीत काव्य में कवि जो कुछ कहता है, अपने निजी दृष्टिकोण से कहता है। उसमें निजीपन के साथ रागात्मकता होती है। रागात्मकता में तीव्रता बनाए रखने के लिए उसका अपेक्षाकृत छोटा होना आवश्यक है आकार की इस संक्षिप्तता के साथ भाव की एकता और अन्विति लगी रहती है। गीतिकाव्य में विविधता रहती है किंतु वह प्राय: एक ही केंद्रीय भाव की पुष्टि के लिए होती है।''

1.3.2.3.6 डॉ. कृष्णदत अवस्थी : ''गीतिकाव्य कवि की व्यक्तिगत मार्मिक अनुभूति का वह प्रभावपूर्ण संगीतात्मक प्रकाशन है, जिसमें प्रेषणीयता, घनत्व, लाघव स्पष्टता एवं ध्वन्यात्मकता के गुणों का समुचित समावेश हो।''

1.3.2.3.7 रामखेलावन पांडेय : ''सजीव भाषा में व्यक्ति के आंतरिक भावों की सक्षम अभिव्यंजना संगीतात्मकता के आग्रह के साथ जिसमें होती है वह गीतिकाव्य है।''

पाश्चात्य विचारकों के गीती काव्य संबंधी मत –

1.3.2.3.8 एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका : "Lyricaal poetry a general tem for all poetry which is, or can be supposed to be, susceptible of being sung to the accompaniment of a musical instrument."

1.3.2.3.9 अर्नेस्ट राइस : ''सच्चा गीत वही है जो भावात्मक विचार का भाषा में स्वाभाविक विस्फोट हो।''

1.3.2.3.10 हरबर्ट रीड : ''गीत का मूल अर्थ तो लुप्त हो गया है लेकिन उसका व्यावहारिक पक्ष प्रचार में आ गया है। अब गीत से उस रचना का बोध होता है जिसमें सूक्ष्म अनुभूतियां हों, जो एकांत आनंद से प्रबुद्ध होती हैं।''

1.3.2.3.11 हडसन : ''गीतिकाव्य की सबसे बड़ी कसौटी वैयक्तिकता की छाप है। किंतु वह व्यक्ति वैचित्र्य में समाहित न रहकर व्यापक मानवीय भावनाओं पर ही आधारित होती है, जिसमें प्रत्येक पाठक उसमें अभिव्यक्त भावनाओं एवं अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित कर सकें।''

1.3.2.3.12 हीगेल : ''गीतिकाव्य का एकमात्र उद्देश्य शुद्ध कलात्मक शैली में आंतरिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, उसकी आशाओं, उसके आह्लाद की तरंगों और उसकी वेदना की चीत्कारों का उद्घाटन करना है।''

1.3.2.3.13 प्रो गुमरे : ''गीति काव्य वह अंतर्वृत्ति निरूपिणी कविता है जो वैयक्तिक अनुभूतियों से पोषित होती है, जिसका संबंध घटनाओं से नहीं अपितु भावनाओं से होता है तथा जो किसी समाज की परिष्कृत अवस्था से निर्मित होती है।''

1.3.2.3.14 रस्कीन : ''गीतिकाव्य कवि की निजी अनुभूतियों का प्रकाशन होता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर गीतिकाव्य की कुछ विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं, जो इस प्रकार से है-

1. इसमें व्यक्तिगत अनुभूति की प्रमुखता होती है।
2. प्रगीत काव्य का संबंध बुद्धि से न होकर हृदय से होता है।
3. इसकी शैली प्रवाहमयी होती है।
4. इसमें भावप्रवणता होती है।
5. प्रगीत काव्य में गेयता एवं संगीतात्मकता होती है।
6. इसकी भाषा सरल, मधुर और कोमल होती है।
7. इसमें मार्मिकता, संक्षिप्तता होती है।
8. इसमें पूर्वापार संबंध नहीं होता
9. इसमें सहज अन्तः प्रेरणा होती है।
10. प्रगीत में समाहित प्रभाव होता है।

1.3.3.3.3 प्रगीत काव्य या गीतिकाव्य के तत्त्व :

1.3.3.3.1 भावप्रवणता (भाव-तत्त्व) :

भाव प्रगीत की आत्मा है। गीत में हृदय की कोमल भावनाओं का स्फुरण होता है। अतः भावप्रवणता ही गीतिकाव्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता कही जाती है। हृदय की सुख-दुःखात्मक वृत्तियाँ ही गीतिकाव्य का आधार बनती हैं। कवि के अंतर की अनुभूति जब घनीभूत होकर अपनी तीव्रता की चरम सीमा पर पहुंच जाती है तब गीतिकाव्य का जन्म होता है। प्रत्येक प्रगीत में एक भाव होता है। भाव-प्रवणता प्रगीत के प्रभाव में वृद्धि करती है।

इस विषय में प्रसिद्ध छायावादी कवि पंत लिखते हैं

''वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आंखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान ।।''

1.3.3.3.2 संगीतात्मकता :

संगीतात्मकता अथवा गेयता प्रगीत काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। अनुभूति की तीव्रता के कारण प्रगीत में संगीतात्मकता आ जाती है। प्रगीत में संगीत का प्रवाह अपने आप आ जाता है। प्रगीत में एक लय और प्रवाह होता है। इसमें शास्त्रीय शैली का आधार लेना आवश्यक नहीं है। नाद सौंदर्य पर ध्यान देने की आवश्यकता रहती है। यह नाद सौंदर्य कोमलकांत पदावली, वर्णमैत्री आदि द्वारा साध्य

होती है। यह नाद सौंदर्य शब्द संगीत का जनक होता है। संगीतात्मकता के कारण गेयता अपने आप आ जाती है। संसार की सभी भाषाओं के श्रेष्ठ गीत गेय हैं।

1.3.3.3.3 वैयक्तिकता :

प्रगीत व्यक्ति प्रधान काव्य है। वैयक्तिकता से ही गीत में प्रभावकारिता आती है। इसे आत्मतत्व भी कहा जाता है। जब कवि के हृदय में आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, सुख-दुख आधी मनोवेगों का ज्वार तीव्र गति से उमडता है, तब कवि उसे व्यक्त करने के लिए विवश हो जाता है। वैयक्तिकता का अर्थ एक तो कवि की नितांत अर्थात व्यक्तिगत अनुभूति है, जो कवि द्वारा भोगे जा रहे प्रकृत या व्यावहारिक जीवन से प्राप्त होती है। वैयक्तिक अनुभूति जितनी तीव्र होती है उतना ही गीत रोचक, रसात्मक एवं ग्राह्य लगता है। उत्कट भाव कवि का संपूर्णतः निजी होना चाहिए। वह निजत्व ही वैयक्तिकता का समावेश करता है। गीतिकाव्य के स्वरुप में वैयक्तिकता के लिए हडसन लिखते है, 'वैयक्तिकता की छाप गीतिकाव्य की सबसे बड़ी कसौटी है किन्तु वह व्यक्ति वैचित्र्य में सीमित न रहकर व्यापक मानवी भावनाओं पर आधारित होती है जिससे पाठक उसमें अभिव्यक्त भावनाओं से तादात्म्य स्थापित कर सके।'

1.3.3.3.4 कल्पनाशीलता :

गीतिकाव्य में कवि अपनी अनुभूतियों को सौंदर्यमयी कल्पना के द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसके लिए वह रूप-विधान, बिंब विधान, प्रतीक, अलंकार आदि का आश्रय लेता है। ऐसा करने से उसकी रचना में अपूर्व सौंदर्य का सृजन हो जाता है। अतः गीतिकाव्य की सृष्टि के लिए सौंदर्यमयी कल्पना का प्रयोग नितांत आवश्यक है।

1.3.3.3.5 संक्षिप्तता :

प्रगीत का एक अन्य प्रमुख तत्व संक्षिप्तता है। प्रगीत का आकार अत्यंत संक्षिप्त होता है। गीति में प्रबंधात्मक विस्तार नहीं होता, वह तो सदैव आकार में छोटा होता है। हिंदी में रासो ग्रंथ तथा रामचरितमानस, पद्मावत आदि प्रबंधात्मक होकर भी गेय हैं, लेकिन यह ग्रंथ विस्तार के कारण गीत नहीं कहे जा सकते। गीति में कवि अपनी खंड अनुभूति को व्यक्त करता है। यह अनुभूति सघन होने के साथ-साथ मार्मिक होती है। यह सघनता और मार्मिकता ही कवि की रचना को गीतिकाव्य का रूप प्रदान करती है। यदि कवि गीतिकाव्य में भावना को विस्तार देगा या कल्पना के कृत्रिम प्रयोग से अनुभूति वर्णन का विस्तार करेगा तो उसके गीतिकाव्य का प्रभाव सघनता व मार्मिकता के कम हो जाने के कारण नष्ट हो जाएगा।

1.3.3.3.6 रागात्मक अन्विति :

रागात्मकता अर्थात प्रेममय, प्रीतिवर्धक; तो अन्विति का तात्पर्य है परस्पर सम्बद्धता। भावान्विति तात्पर्य है जहाँ भावात्मकता और संवेगात्मक एकता हो। प्रेम मनुष्य जीवन की सबसे अनमोल धरोहर है। काव्य यही प्रेम सौन्दर्यानुभूति का कारक होता है। गीत में गीतकार अपने निजी भाव की अभिव्यक्ति करता है। कवि के मन में जो मूलभाव रागात्मकता को लेकर प्रथम पंक्ति में प्रकट होता है, आनेवाली पंक्तियों में

उसका विस्तार होता है। गीत में आदि से अंत तक एक ही मनोराग व्याप्त होता है। रागात्मक अन्विति गीत के लिए आवश्यक है।

1.3.3.3.7 कोमलकांत पदावली का प्रयोग :

गीतिकाव्य के लिए कमलकांत पदावली का होना आवश्यक है। गीतिकाव्य में कोमल भावनाएं होती हैं। अतः कवि को उन भावनाओं के अनुसार कोमल और सुंदर कलात्मक भाषा का प्रयोग करना होता है। कबीर, सूर, तुलसी, मीराबाई, विद्यापति आदि कवियों के गीतों में कोमलकांत शब्दावली का स्वाभाविक व प्रभावशाली प्रयोग मिलता है। आधुनिक हिंदी कविता में महादेवी वर्मा के गीतों में भी यही विशेषता देखी जा सकती है। आदिकालीन कवि विद्यापति और आधुनिक कवयित्री महादेवी वर्मा को संयुक्त रूप से हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ गीतिकार कहा जा सकता है।

1.3.3.3.8 सहज भाषा-शैली :

भाव के अनुकूल कोमल-कांत,ओजस्वी एवं सहज-स्फुटित भाषा का महत्व ही इसमें स्वीकार किया जाता है। सामान्यतः गीति में कठोर एवं कर्ण-कटु लगनेवाले वर्णो, शब्दों का प्रयोग वर्जित माना जाता है। दुर्बोध और दार्शनिक शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता। इसमें वर्ण शब्द योजना भाव के अनुकूल रहनी चाहिए, जिससे वर्णित भाव के औदात्य की समग्रतः रक्षा संभव हो सके।

1.3.3.3.9 सहज अन्त: प्रेरणा :

प्रगीत में वैयक्तिकता होती है। भावप्रवणता होती है। इसी कारण गीत में सहज अन्तः प्रेरणा आवश्यक होती है। गीत में कोरी कल्पना न हो। कोरी कल्पना से कुछ हासिल नहीं होता। जब गीतकार आवेश के रूप में हार्दिकता को व्यक्त नहीं करता तब तक गीत को सफल नहीं माना जा सकता।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रगीत या गीतिकाव्य कवि के हृदय की मार्मिक अनुभूतियों का संगीतात्मक चित्रण है। वैयक्तिकता व संगीतात्मकता के अतिरिक्त मार्मिकता, भाव-प्रवणता, संक्षिप्तता, सौंदर्यमयी कल्पनाशीलता, कोमलकांत पदावली का प्रयोग आदि गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताएं कही जा सकती हैं।

1.3.3 ग़ज़ल :

ग़ज़ल सदैव से ही अति लोकप्रिय काव्यविधा रही है। ग़ज़ल मूलतः अरबी भाषा की एक काव्य विधा है। ग़ज़ल शब्द भी अरबी भाषा का ही है। फारसी कवियों ने जब इस विधा को अरबी से उधार लिया तो उन्होंने शिल्पगत सीमाओं के पालन में तो अरबी ग़ज़लकारों का अनुकरण किया लेकिन विषय वस्तु की दृष्टि से वे अरबी ग़ज़लकारों से आगे निकल गए। अरबी भाषा की तुलना में फारसी भाषा में ग़ज़लों का अधिक मात्रा में सृजन हुआ है। अपनी भावनाओं तथा विचारों को प्रस्तुत करने का एक सशक्त माध्यम ग़ज़ल है। ग़ज़ल का जब सूत्रपात हुआ तब उसमें श्रृंगारिकता को प्रधानता दी जाती थी। समय के साथ-साथ ग़ज़ल के विषयों में भी विविधता आने लगी। हिंदी में 13 वीं शताब्दी से ग़ज़लें मिलती हैं। ग़ज़ल यह विधा फारसी से हिंदी तथा उर्दू में आयी है। आधुनिक युग में ग़ज़ल जीवन के कड़वे सच को प्रस्तुत करती है।

1.3.3.1 ग़ज़ल :

ग़ज़ल शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में विद्वानों में एकमत नहीं है। ग़ज़ल वस्तुतः अरबी भाषा का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है प्रेमी-प्रेमिका का वार्तालाप। ग़ज़ल का कोशगत अर्थ है- कातना-बूनना। अरबी के शायर राय बादशाहों की प्रशंसा में कुछ लिखते जिनका प्रारंभिक भाग प्रेम परकता और श्रृंगारिकता से ओतप्रोत रहता था। कसीदे का अर्थ है- किसी की शान में कुछ कहना।

ग़ज़ल के बारे में और एक शब्द मिलता है- 'गजाल'। गजाल का अर्थ है- 'मृग'। संभव है हिरन जैसी आँखोंवाली सुंदरियों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया हो। ग़ज़ल शब्द की व्युत्पत्ति की बारे में और एक मान्यता है कि अरब में ग़ज़ल नाम का एक कवि था। इस कवि ने अपने पूरे जीवन में प्रेम को महत्व दिया, प्रेमपरक कविता लिखी। अत: उसी के नाम से इस विधा का नामकरण हुआ।

मानक हिंदी शब्दकोश खंड दो में ग़ज़ल का अर्थ इस प्रकार दिया है- 'वह कविता जिसमें नायिका के सौंदर्य और उसके प्रेम के प्रति वर्णन हो।' ग़ज़ल के बारे में अंग्रेजी में भी कहा गया है कि- 'The Conversatiion with Women.'

ग़ज़ल शब्द प्रेमी और प्रेमिका के वार्तालाप के लिए या औरतों के बात करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ था, लेकिन अब उसमें परिवर्तन आया है। विविध विषयों को लेकर ग़ज़ले लिखी जा रही हैं।

1.3.3.2 ग़ज़ल की परिभाषाएँ :

साहित्य के अंतर्गत हर विधा को परिभाषित करने की एक परंपरा दिखाई देती है। ग़ज़ल जैसी प्रेमाभिव्यक्ति की विधा इससे कैसे अछूती रह सकती है? ग़ज़ल शब्द की व्युत्पत्ति या अर्थ के बारे में विद्वानों में मतभेद दिखाई देते हैं, लेकिन उनमें इस बात पर एकमत हो गया है कि 'ग़ज़ल प्रेम अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है।' अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार ग़ज़ल को परिभाषित करने का प्रयास किया है ग़ज़ल की परिभाषाएं निम्नांकित हैं-

1.3.3.2.1 नालंदा विशाल शब्द सागर :

'नालंदा विशाल शब्द सागर में ग़ज़ल को फारसी और उर्दू की शृंगार रस की कविता कहा है।'

1.3.3.2.2 रघुपति सहाय 'फिराक गोरखपुरी' :

'ग़ज़ल असम्बद्ध कविता है। ग़ज़ल का मिजाज मूलतः समर्पणवादी होता है।'

1.3.3.2.3 डॉ. नगेंद्र :

'ग़ज़ल उर्दू का सर्वाधिक प्रसिद्ध और सरस भेद है। उस का स्थाई भाव प्रेम है, जिसमें रहस्यानुभूति, मस्ती, धार्मिक विद्रोह आदि भावनाएँ संचारी रूप में ओत-प्रोत रहती है। विषय के अनुरूप उसका एक विशिष्ट काव्यरूप भी है, जो मतला, मकता, गिरह, काफिया और रदीफ में परीबद्ध रहता है।'

1.3.3.2.4 डॉ. अरशद जमाल :

'ग़ज़ल का मतलब है औरतों से अथवा औरतों के बारे में बातचीत करना। यह भी कहा जा सकता है कि ग़ज़ल का सर्वसाधारण अर्थ है- माशूक से बातचीत का माध्यम।'

1.3.3.2.5 डॉ. नगेंद्र वशिष्ठ :

'ग़ज़ल का मूल क्षेत्र नारी-विषयक भावों से संबंधित है। दरअसल ग़ज़लगोई का अधिकतर संबंध विरहजन्य व्यथा से रहा है। अतः इसमें हृदय को छू लेने की क्षमता ही बहुत ऊंचा गुण माना गया है।'

1.3.3.2.6 डॉ. सरदार मुजावर :

'मन के भावों को शेरों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कला का नाम का ग़ज़ल है।'

1.3.3.2.7 डॉ. मधु खराटे :

'ग़ज़ल वह गेयान्मक विधा है, जिसमें प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण किया जाता है। साथ ही जिसमें सामाजिक, राजनीतिक एवं हास्य-व्यंग्यात्मक भावभूमि पर सामान्य व्यक्ति के मानस में दबी पीड़ा को वाणी प्रदान की जाती है, जो प्रभावोत्पादक गुणों से युक्त होती है और जिसका अपना एक रूप होता है।'

1.3.3.2.8 डॉ. नरेश :

शिल्प की दृष्टि से ग़ज़ल क़ाफ़िया-रदीफ़ के बंधन में रहकर, एक लयखंड में रचे गए, विभिन्न शेरों की माला होती है, जिसका पहला मनका 'मतला' और अंतिम मनका 'मकता' होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यही कहा जा सकता है कि, ग़ज़ल गेयात्मक विधा है। ग़ज़ल मन के भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। ग़ज़ल के अनेक विषय हो सकते हैं। ग़ज़ल में व्यंग्यात्मकता भी होती है। ग़ज़ल में प्रेम के दोनों पक्षों का चित्रण होता है। संक्षिप्तता और भावात्मकता यह ग़ज़ल की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं ग़ज़ल पाठकों के मन तथा मस्तिष्क पर प्रभाव डालती है।

1.3.3.3 ग़ज़ल के अंग :

ग़ज़ल एक लिरिक विधा है, जिसकी अपनी कुछ शर्तें हैं। यही शर्तें उसके स्वरूप और ढांचे को निर्मित करती हैं। किसी भी काव्य विधा के स्वरूप को निर्धारित करने वाली शर्तें, उस विधा विशेष के तत्व या अंग कही जाती है। ग़ज़ल के भी अपने तत्त्व हैं जो इस प्रकार है।

1.3.3.3.1 शेर :

शेर शब्द अरबी भाषा का है, जिसका अर्थ है- जानना, जुल्फ, बाल। इसी कारण ग़ज़ल को यदि सुंदरी कहा जाता है तो शेर उसके गेसू (बाल) हैं। शेर की तुलना माशूक के चेहरे पर बनी दोनों भौंहों से की जाती है।

'शेर' दो पंक्तियों का होता है। दो पंक्तियों के उस काव्य रूप को शेर कहते हैं, जिसके द्वारा हमें किसी विशेष बात या भाव का पता चलता है। ग़ज़ल के समान शेर को भी उसके शब्द- कोशीय अर्थ के अनुसार

परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि अरबी-फ़ारसी के विद्वानों ने शेर-रचना के लिए यह शर्त रखी है कि वह 'कलामे-मौज़ूँ-मुक़फ्फ़ा-बिल्क़स्द' होना चाहिए। इसका अर्थ है कि, 1) शेर किसी एक बहर-वज़न में कहा जाना चाहिए तथा उसमें अभिव्यक्त किया गया विचार या भाव संतुलित,समुपयुक्त एवं रुचिकर होना चाहिए (कलामे-मौज़ूँ)। 2) शेर में वृत्तान्विती के साथ साथ तुकांत अर्थात् क़ाफ़िया होना चाहिए (मुक़फ़्फ़ा)। 3) शेर में अभिव्यक्त किया जाने वाला विचार या भाव पूरी तरह से निश्यच करने के बाद ही अभिव्यक्त किया जाना चाहिए (बिल्क़स्द)। ताकि प्रतिपाद्य से किसी प्रकार की भ्रांति उत्पन्न न हो और पाठक उससे कवि द्वारा अभिप्रेत अर्थ के अतिरिक्त दूसरा कोई अर्थ ग्रहण न कर सके।

परखना मत, परखने में कोई अपना नहीं रहता
किसी भी आईने में देर तक चेहरा नहीं रहता।
बडे लोगों से मिलने में हमेशा फ़ासला रखना
जहां दरिया समन्दर में मिले, दरिया नहीं रहता।
हजारों शेर मेरे सो गये कागज की कब्रों में
अजब मां हूं कोई बच्चा मेरा ज़िन्दा नहीं रहता।
तुम्हारा शहर तो बिल्कुल नये अन्दाज वाला है
हमारे शहर में भी अब कोई हमसा नहीं रहता।
मोहब्बत एक खुशबू है, हमेशा साथ रहती है
कोई इन्सान तन्हाई में भी कभी तन्हा नहीं रहता।
कोई बादल हरे मौसम का फ़िर ऐलान करता है
ख़िज़ा के बाग में जब एक भी पत्ता नहीं रहता।

– बशीर बद्र

इस ग़ज़ल की प्रत्येक दो पंक्ति शेर कहलाती है।

1.3.3.3.2 मिसरा :

शेर की प्रत्येक पंक्ति को मिसरा कहते हैं। दो मिसरे मिलकर एक शेर की संरचना होती है।

उदा.

प्रथम – बडे लोगों से मिलने में हमेशा फ़ासला रखना

द्वितीय – जहां दरिया समन्दर में मिले, दरिया नहीं रहता

यह दोनों पद स्वतंत्र मिसरे हैं।

थोड़े और बारीकी में जाए तो शेर के प्रथम मिसरे को 'मिसरा ऊला'कहते हैं और द्वितीय मिसरे को 'मिसरा सानी' कहते हैं।

बडे लोगों से मिलने में हमेशा फ़ासला रखना– मिसरा ऊला

जहां दरिया समन्दर में मिले, दरिया नहीं रहता– मिसरा सानी

1.3.3.3.3 क़ाफ़िया :

. गज़ल में पाई जाने वाली तुक को काफिया कहते हैं। ग़ज़ल के शेरों में रदीफ़ से पहले आने वाले उन शब्दों को क़ाफ़िया कहते हैं, जिनके अंतिम एक या एकाधिक अक्षर स्थायी होते हैं और उनसे पूर्व का अक्षर चपल होता है। ग़ज़ल में रदीफ़ की अपेक्षा क़ाफ़िया का महत्त्व होता है।

इसे आप तुक कह सकते हैं जो मतले में दो बार रदीफ़ से पहले आती है और हर शेर के दूसरे मिसरे में रदीफ़ से पहले। काफ़िया ग़ज़ल की जान होता है और कई बार शायर को क़ाफ़िया मिलने में दिक्कत होती है तो उसे हम कह देते हैं कि क़ाफ़िया तंग हो गया।

उदा. **मत, परखने में कोई अपना नहीं रहता**

किसी भी आईने में देर तक चेहरा नहीं रहता।

बडे लोगों से मिलने में हमेशा फ़ासला रखना

जहां दरिया समन्दर में मिले, दरिया नहीं रहता।

उपर्युक्त ग़ज़ल के शेरों में 'अपना', 'चेहरा' और 'दरियाब' यह शब्द क़ाफ़िया के रूप में प्रयुक्त किए गए हैं।

1.3.3.3.4 रदीफ़ :

रदीफ़ का शब्दकोशीय अर्थ 'अनुगामी' है। प्रायः घुड़सवार के पीछे बैठे व्यक्ति को रदीफ़ कहा जाता है। रदीफ़ का पारिभाषिक अर्थ है वह अक्षर, शब्द या शब्द–समूह जो किसी ग़ज़ल के प्रत्येक शेर में, क़ाफ़िये के पीछे, लगातार और बार–बार दोहराया जाता है।

ग़ज़ल के शेरों के अंत में जिन शब्दों की पुनरावृत्ति होती है उसे रदीफ़ कहते हैं। रदीफ़ क़ाफ़िये के बाद आती है और प्रत्येक शेर में अपनी जगह स्थिर रहती है। उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता। अधिकतर ग़ज़लों में रदीफ़ का प्रयोग होता है। अपवाद स्वरूप कुछ ग़ज़ल में रदीफ़ का प्रयोग नहीं किया जाता। वैसे बिना रदीफ़ के ग़ज़ल को गैर–मरद्दफ़ ग़ज़ल कहा जाता है।

उदा.

मत, परखने में कोई अपना नहीं रहता

किसी भी आईने में देर तक चेहरा नहीं रहता

बडे लोगों से मिलने में हमेशा फ़ासला रखना

जहां दरिया समन्दर में मिले, दरिया नहीं रहता

उपर्युक्त ग़ज़ल के शेरों में नहीं रहता यह शब्द का प्रयोग रदीफ़ के रूप में किया गया है।

1.3.3.3.5 मतला :

ग़ज़ल का पहला शेर मतला कहलाता है। मतला का शाब्दिक अर्थ है– उदयस्थल। इसी कारण ग़ज़ल के प्रथम शेर को मतला कहा जाता है। मतले के दोनों मिसरे में रदीफ़ और क़ाफ़िया होता है, जबकि ग़ज़ल के अन्य शेरों में दूसरी पंक्ति में यह विशेषता पायी जाती है।

उदा.

हर इक बात पे कहते हो तुम कि तू क्या है
तुमहीं कहो कि ये अन्दाज़े–गुफ़्तगू क्या है

उपर्युक्त शेर की दोनों पंक्तियों में 'तू', 'गुफ्तगू' क़ाफ़िया है तथा 'क्या है' रदीफ़ है। जिससे दोनों पंतियों में तुक मिलती है। अतः यह शेर ग़ज़ल का मतला है।

1.3.3.3.6 मकता :

ग़ज़लग के अंतिम शेर को 'मकता' कहते हैं। मकता का शाब्दिक अर्थ है– काटा हुवा, तराशा हुआ। इसमें ग़ज़लकार अपने उपनाम का प्रयोग करता है। ग़ज़लकार ग़ज़ल के अंतिम शेर को इस तरह तराशता है कि इसमें इसका उपनाम नगीने की तरह जड़ा जाए, इसलिए इस शेर को मकता कहते हैं। यह उपनाम पढ़ते ही हम समझ जाते हैं कि यहाँ ग़ज़ल मुकम्मल (पूरी) हो गई। इस शेर में ग़ज़लकार अपनी छाप छोड़ जाता है। अगर किसी ग़ज़ल के समाप्ति पर अंतिम शे'र में उपनाम न हो तो उसे ग़ज़ल का आखरी शे'र कहा जाता है।

उदा.

हुआ है शह का मुसाहब फिरे है इतराता
वगर्ना शहर में 'ग़ालिब' की आबरू क्या है

उपर्युक्त शेर में 'ग़ालिब' उपनाम का प्रयोग किया गया है। अतः इस शेर को मकता कहा जाएगा।

ग़ालिब की एक प्रसिद्ध ग़ज़ल

हर इक बात पे कहते हो तुम कि तू क्या है
तुमहीं कहो कि ये अन्दाज़े–गुफ़तगू क्या है– मतला
न शोले में ये करिश्मा न बर्क में ये अदा
कोई बतायो कि वो शोखे–तुंदख़ू क्या है– क़ाफ़िया

ये रश्क है कि वो होता है हमसुख़न हमसे
वरना ख़ौफ़–ए–बदामोज़ी–ए–अदू क्या है– रदीफ़

चिपक रहा है बदन पर लहू से पैराहन
हमारी जैब को अब हाजते–रफ़ू क्या है

जला है जिस्म जहां, दिल भी जल गया होगा
कुरेदते हो जो अब राख, जुस्तजू क्या है

रगों में दौड़ने–फिरने के हम नहीं कायल
जब आंख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है

वो चीज़ जिसके लिये हमको हो बहिश्त अज़ीज़
सिवाये बादा–ए–गुलफ़ाम–ए–मुश्कबू क्या है

पीयूं शराब अगर ख़ुम भी देख लूं दो–चार
ये शीशा–ओ–कदह–ओ–कूज़ा–ओ–सुबू क्या है

रही न ताकत–ए–गुफ़तार और अगर हो भी
तो किस उम्मीद पे कहिये कि आरज़ू क्या है

हुआ है शह का मुसाहब फिरे है इतराता
वगर्ना शहर में 'ग़ालिब' की आबरू क्या है– मकता

डॉ. नरेश जी ने ग़ज़ल के स्वरूप को निम्न रूप से समझाने के प्रयास किया है –

1. ग़ज़ल विभिन्न शेरों की एक योजना होती है।

2. ग़ज़ल का प्रत्येक शेर कथावस्तु की दृष्टि से स्वतंत्र इकाई होता है

3. गज़ल के किसी भी शेर की कथावस्तु का प्रसार ऐसा नहीं होना चाहिए कि शेर का अर्थ जानने के लिए उसके पूर्व या बाद के शेर से सहायता देनी पड़े।

4. गज़ल के शेरों का काफ़िया और रदीफ़ के नियमानुसार रचा जाना आवश्यक है।

5. ग़ज़ल के शेरों का एक ही लयखण्ड (बहर–वज़न) में रचा जाना अनिवार्य है।

6. गज़ल का प्रारंभ मतले से होना चाहिए।

7. गज़ल का अंत मक़ते से किया जाना चाहिए।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि ग़ज़ल अरबी भाषा का शब्द है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से भले ही उसके अर्थ अलग–अलग हैं लेकिन ग़ज़ल एक स्वतंत्र विधा है। ग़ज़ल में क़ाफ़िया और रदीफ़ का महत्व होता है। ग़ज़ल में प्रत्येक अंग का अपना–अपना महत्व है। शेर को ग़ज़ल की अधिकारिक इकाई माना गया है। शेर के दो भेदों में मतला और मकता का भी उतना ही महत्व है जितना की अन्य अंगों का महत्व है। ग़ज़ल में गेयता होती है। ग़ज़ल में प्रवाहमयता, भावात्मकता, प्रभावात्मकता की आवश्यकता होती है।

1.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) महाकाव्य .... काव्य का भेद है।
(मुक्तक/प्रगीत/एकार्थ/प्रबंध)

2) महाकाव्य .... रचना है।
(सर्गमुक्त/रीतियुक्त/रीतिबद्ध/सर्गबद्ध)

3) महाकाव्य का नायक .... होना चाहिए।
(धीरगंभीर/धीरप्रशांत/धीरोदात्त/धीरलालित)

4) महाकाव्य को अंग्रेजी में .... कहते हैं।
(Epic/Elegy/Ode/Drama)

5) महाकाव्य .... से अधिक सर्ग होते हैं।
(सात/आठ/दस/बीस)

6) महाकाव्य में .... का प्रकाशक होता है।
(लघुता/ अलंकारिकता/ अपूर्णता/महानता)

7) महाकाव्य में प्रतिनायक (खलनायक) के .... का चित्रण होता है।
(विजय/पराजय/ कोमलता/ धीरोदात्तता)

8) आचार्य भामह ने .... ग्रंथ में महाकाव्य विषयक चिंतन प्रस्तुत किया है।
(काव्यालंकार सूत्र वृत्ति/काव्यालंकार/ काव्यशोभा/ काव्यादर्श)

9) महाकाव्य का उद्देश्य .... होता है।
(लघु/ विस्तृत/महान/ सीमित)

10) आचार्य दंडी ने .... ग्रंथ में महाकाव्य विषय चिंतन किया है।
(काव्यालंकार सूत्र वृत्ति/ काव्यालंकार/ काव्यशोभा/काव्यदर्श)

11) आचार्य विश्वनाथ के काव्य ग्रंथ का नाम .... है।
(समर्पण/साहित्यदर्पण/ नाट्यदर्पण/ हितोपदेश)

12) .... ने महाकाव्य विषयक विवेचन में गुरुत्व, गांभीर्य तथा महानता को विशेष स्थान दिया है।
(डॉ. नगेंद्र/ डॉ. गुलाबराय/डॉ. शंभूनाथ सिंह/ रामचंद्र शुक्ल)

13) 'महाकाव्य दीर्घकाल का कथात्मक अनुकरण है' यह मत .... का है।
(एवरक्राम्बे/अरस्तू/ वॉल्टेअर/ इलियट)

14) पाश्यात्य दृष्टि में एपिक .... काव्य है।

(छंदयुक्त/ रसमुक्त/वर्णनात्मक/ अलंकारप्रधान)

15) आचार्य विश्वनाथ के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और .... की प्राप्ति महाकाव्य का बृहत्तर उद्देश्य है।

(मोक्ष/ क्षमता/ ममता/ करुणा)

16) एवरक्राम्बे के अनुसार महाकाव्य के .... भेद हैं।

(पाँच/दो/तीन/ चार)

17) प्रगीत को अंग्रेजी में .... कहा जाता है।

(Poetcis/Sonnet/Lyric/Ode)

18) वैयक्तिकता यह .... की विशेषता है।

(खंडकाव्य/प्रगीतकाव्य/ महाकाव्य/ चंपूकाव्य)

19) प्रगीत काव्य .... के अंतर्गत आता है।

(महाकाव्य/ खंडकाव्य/मुक्तक काव्य/ ग़ज़ल)

20) .... में बुद्धि से अधिक हार्दिक भावनाओं का महत्व होता है।

(चंपू काव्य/ महाकाव्य/ खंडकाव्य/प्रगीत काव्य)

21) ग़ज़ल .... भाषा का शब्द है।

(अरबी/ फारसी/ पंजाबी/ हिंदी)

22) 'क़ाफ़िया' का अर्थ .... है।

(तुक/ ग़ज़ल/ मतला/ मकता)

23) शेर शब्द का अर्थ है .... ।

(केश/ आँखे/ कान/ नाक)

24) फारसी और उर्दू में श्रृंगार रस की कविता .... कहलाती है।

(गीत/ ग़ज़ल/ तश्बीब/ रदीफ़)

25) ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ .... है।

(प्रेमिका से वार्तालाप/ उत्कट भाव/ वाणी/ हाथी)

26) ग़ज़ल के पहले शेर को .... कहते हैं।

(क़ाफ़िया/ मतला/ मकता/ रदीफ़)

27) ग़ज़ल के अंतिम शेर को .... कहते हैं।

(क़ाफ़िया/ मतला/मकता/ रदीफ़)

28) मिसरा शेर की प्रत्येक .... को कहते हैं।

(पंक्ति/ शब्द/ वाक्य/ अर्थ)

1.5 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

अ) उचित पर्याय

1. प्रबंध	2. सर्गबद्ध	3. भामह	4. Epic
5. आठ	6. महानता	7. पराजय	8. काव्यालंकार
9. महान	10. काव्यादर्श	11. साहित्यदर्पण	12. डॉ. शंभूनाथ सिंह
13. अरस्तू	14. वर्णनात्मक	15. मोक्ष	16. दो
17. Lyric	18. प्रगीतकाव्य	19. मुक्तक काव्य	20. प्रगीत काव्य
21. अरबी	22. तुक	23. केश	24. गजल
25. प्रमिका से वार्तालाप	26. मतला	27. मकता	28. पंक्ति

1.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. इतिवृत्तात्मकता – घटनाप्रधानता।
2. गुरुत्व – बड़प्पन, श्रेष्ठता, महानता।
3. सर्गबद्ध – सर्गों में बंधा हुआ।
4. सर्ग – अध्याय, प्रकरण।
5. धीरोदात्त – भावनाओं पर पूर्ण नियंत्रण रखनेवाला नायक।
6. मंगलाचरण – ग्रंथ के प्रारंभ में लिखा जानेवाला मांगलिक पद।
7. कोमलकांत पदावली – मृदु कोमल वर्णों से युक्त पदावली।
8. प्रबंध – काव्य का भेद।
9. मुक्तक – काव्य का वह भेद जिसमें वर्णित बातों का कोई पूर्वापर संबंध न हो।
10. उपालंभ – किसी के अनुचित या अशिष्ट व्यवहार के कारण उससे की जाने वाली शिकायत/ उलाहना।
11. रदीफ़ – ग़ज़लों आदि में प्रत्येक क़ाफ़िये या अंत्यानुप्रास के बाद आने वाला शब्द या शब्दसमूह।
12. मिसरा – ग़ज़ल में वर्णित शेर की प्रत्येक पंक्ति।
13. क़ाफ़िया – कविता या पद्य में अंतिम चरणों में मिलाया जानेवाला अनुप्रास/ अंत्यानुप्रास/ तुक।
14. बहर छंद की तरह एक फ़ारसी मीटर/ताल/लय/फीट जो अरकानों की एक विशेष तरक़ीब से बनती है.

15. अरकान – फ़ारसी भाषाविदों ने आठ अरकान ढूँढे और उनको एक नाम दिया जो आगे चलकर बहरों का आधार बने। रुक्न का बहुबचन है अरकान।बहर की लम्बाई या वज़्न इन्ही से मापा जाता है, इसे आप फ़ीट भी कह सकते हैं। इन्हें आप ग़ज़ल के आठ सूर भी कह सकते हैं।
16. अरूज़ – बहरों और ग़ज़ल के तमाम असूलों की मालूमात को अरूज़ कहा जाता है और जानने वाले अरूज़ी.
17. तख़ल्लुस – शायर का उपनाम मक़ते में इस्तेमाल होता है। जैसे मैं ख्याल का इस्तेमाल करता हूँ।
18. वज़्न – मिसरे को अरकानों के तराज़ू में तौल कर उसका वज़्न मालूम किया जाता है इसी विधि को तकतीअ कहा जाता है।

1.7 सारांश :

- प्रबंध काव्य का हिंदी साहित्य में अनूठा स्थान है। प्रबंध काव्य के अंतर्गत महाकाव्य और खंडकाव्य आते हैं।
- महाकाव्य विषयक भारतीय तथा पश्चिमी विद्वानों ने चिंतन किया है। यह चिंतन मौलिक तथा नवीन है। जिससे महाकाव्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला जा सकता है। महाकाव्य महानता का प्रकाशक होता है।
- महाकाव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक कथा सज्जनाश्रित होती है। महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है। महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य के भारतीय तत्वों में कथावस्तु, नायक, रस, छंद, वर्णन, नाम (शीर्षक) उद्देश्ङ्ग आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें से किसी एक के अभाव में महाकाव्य की सफलता में क्षति पहुँच सकती है।
- महाकाव्य के लिए अंग्रेजी में एपिक शब्द मिलता है। एपिक वर्णनात्मक होता है। एपिक के पाश्चात्य तत्वों में कथानक, पात्र एवं चरित्र चित्रण, वर्णन, शैली उद्देश्य आदि तत्व महत्वपूर्ण होते हैं।
- प्रगीत काव्य को गीतिकाव्य के नाम से भी अभिहित किया जाता है। प्रगीत काव्य में स्वतंत्र भाव होता है। प्रगीत को अंग्रेजी में लिरिक्स (Lyric) कहा जाता है। प्रगीत काव्य के तत्वों में संगीतात्मकता, तीव्र भावानुभूति, आत्माभिव्यक्ति, रागात्मक अन्विति, प्रवाहमयी शैली, सहज अन्त:प्रेरणा का स्थान महत्वपूर्ण है।
- प्रेमाभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में ग़ज़ल को देखा जाता है। ग़ज़ल यह अरबी भाषा का शब्द है। उसका शाब्दिक अर्थ प्रेमिका से बातचीत, वार्तालाप या औरतों से बात करने के अर्थ में लिया जाता है। ग़ज़लकार कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों को भर देता है। ग़ज़ल में लयबद्धता होती है। क़ाफ़िया, रदीफ़, शेर, मतला, मकता, मिसरा आदि ग़ज़ल के अंग हैं।

1.8 स्वाध्याय :

1) महाकाव्य के भारतीय तत्वों पर प्रकाश डालिए।

2) महाकाव्य विषयक पाश्चात्य मान्यता बताते हुए पश्चिमी तत्वों का विवेचन कीजिए।

3) प्रगीत का स्वरूप बताकर तत्वों पर प्रकाश डालिए।

4) ग़ज़ल की परिभाषा देकर अंगूर का सामान्य परिचय दीजिए।

5) बहरमहाकाव्य का भारतीय स्वरूप स्पष्ट करते हुए महाकाव्य के भारतीय तत्वों का विवेचन कीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

- महाकाव्य विषयक विभिन्न मान्यताओं के आधार पर किसी भी महाकाव्य की समीक्षा कीजिए।
- रामचरितमानस, पद्मावत, साकेत, कामायनी, कुरुक्षेत्र आदि महाकाव्यों का अध्ययन कीजिए।
- प्रगीत के विभिन्न भेदों को ध्यान में रखकर उसके उदाहरण ढूँढ लीजिए।
- किसी भी ग़ज़लकार की ग़ज़ल की किताब पढ़िए।
- मराठी भाषा के महाकाव्य, गीत तथा ग़ज़ल विधाओं का अध्ययन कीजिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) काव्यशास्त्र- भगीरथ मिश्र।

2) भारतीय साहित्यशास्त्र कोश- डॉ राजवंश सराय 'हीरा'।

3) हिंदी ग़ज़ल का सौंदर्यशास्त्र- डॉ राम प्रकाश 'पथिक'।

4) हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा- डॉ नरेश।

5) काव्यशास्त्र के विविध आयाम- सं. डॉ मधु खराटे।

6) भारतीय काव्यशास्त्र- डॉ अशोक के शाह।

7) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र- डॉ यतीन्द्र तिवारी।

8) साहित्य रूप: शास्त्रीय विश्लेषण- डॉ ज्ञानराज गायकवाड।

9) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र- डॉ रामप्रकाश।

10) बृहत भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र- डॉ सुरेश अग्रवाल और डॉ जगदीप शर्मा।

11) हिंदी ग़ज़ल: उद्भव और विकास- डॉ रोहिताश्व अस्थाना।

12) हिंदी ग़ज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर- प्रा. मधु खराटे

13) हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में- डॉ सरदार मुजावर।

❑❑❑

इकाई –2

गद्य विधाएँ (उपन्यास, नाटक और व्यंग्य)

अनुक्रम

2.1 उद्‌देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय – विवेचन

2.3.1 उपन्यास

2.3.1.1 प्रस्तावना

2.3.1.2 उपन्यास : स्वरूप

2.3.1.3 उपन्यास : प्रकार

2.3.2 नाटक

2.3.2.1 प्रस्तावना

2.3.2.2 नाटक : स्वरूप

2.3.2.3 नाटक : पाश्चात्य तत्त्व

2.3.3 व्यंग्य

2.3.3.1 प्रस्तावना

2.3.3.1 व्यंग्य : स्वरूप

2.3.3.1 व्यंग्य : तत्त्व

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्‌देश्य :

1. उपन्यास के मानदंडों के आधार पर छात्रों में इन विधाओं की समीक्षण की क्षमता निर्माण करना।
2. छत्रों में हिंदी उपन्यास के आस्वादन की क्षमता एवं रुचि उत्पन्न करना।
3. साहित्य कृतियों के माध्यम मे साहित्य के शिल्प एवं सौंदर्य से परिचित कराना।
4. उपन्यास के स्वरूप एवं प्रकारों से परिचित कराना एवं समीक्षण क्षमता निर्माण करना।
5. नाटक के स्वरूप एवं पाश्चात्य तत्त्वों से परिचित कराना एवं समीक्षण समता निर्माण करना।
6. व्यंग्य के स्वरूप एवं तत्त्वों से परिचित कराना एवं समीक्षण क्षमता निर्माण करना।
7. उपर्युक्त विधाओं के स्वरूप एवं तत्वों के अध्यययन के उपरांत छात्रों में विविध विधाओं में लेखन करने की क्षमता एवं रूचि उत्पन्न करना।

2.2 प्रस्तावना :

आधुनिक युग में पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से भारतीय साहित्य में अनेक विधाओं का आगमन भारतेंदू युग में हुआ। उपन्यास, नाटक, कहानी, डायरी, निबंध, एकांकी आदि गद्य विधाओं का विकास हुआ। इन विधाओं के तात्त्विक विवेचन के बारे में हमें यहाँ सोचना है। एकांकी का स्वरूप एवं तत्व, कहानी का स्वरूप एवं तथा उपन्यास का स्वरूप एवं तत्त्व आदि के तात्विक मुद्दों पर हमें इस ईकाई में अध्ययन करना है।

2.3 विषय – विवेचन :

2.3.1 उपन्यास : स्वरूप एवं प्रकार :

2.3.1.1 प्रस्तावना :

आधुनिक युग की महत्त्वपूर्ण विधा 'उपन्यास' है। आज उपन्यास मनोरंजन की अपेक्षा मानसिक विश्लेषण और सामाजिक निरीक्षण की मात्रा अधिक है। इस विधा को विदेशी साहित्य से प्रभावित माना जाता है। परंतु भारत में उपन्यास विधा कथा, आख्यायिका के रूप में प्राचीन काल से चली आ रही है। लेकिन आधुनिक युग के जटिलता से भरे मानव मन की अंतरिक अनुभूति, कोमलतम, कल्पना और सूक्ष्म निरीक्षण शप्ति से युक्त मानव जीवन की व्याख्या लानेवाली यह विधा अत्याधिक प्रसिद्‌ध हुई है। इसलिए जहाँ प्रारंभ में उपन्यास की रचना मनोरंजन के लिए की जाती थी, वहीं आज उपन्यास व्यक्ति, समाज और उसकी बौद्‌धिक तथा नैतिक धारणाओं के विश्लेषण के लिए लिखे जाने लगे है। जीवन के अधिक निकट रहने के कारण आज उपन्यास विधा सबसे चर्चित विधा के रूप में दिखाई देती है।

2.3.3.2 उपन्यास – स्वरूप :

आधुनिक उपन्यास विधा का रूप संस्कृत लक्षण ग्रंथों में दिखाई देता है। परंतु उनका विस्तृत अर्थ आज जिस अर्थ में लिया जा रहा है। वैसा प्राचीन ग्रंथों में नहीं था। 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित प्रतिमुख संधि का एक उपभेद उपन्यास है। 'नाट्यशास्त्र' में उपन्यास की परिभाषा इसप्रकार दी है।

''उपपत्तिकृतोह्यर्थ : उपन्यास : प्रकिर्तीत:।''

अर्थात्, किसी शब्दों को उसके युक्ति युक्त अर्थ में प्रस्तुत करने को ही उपन्यास कहा जाता है। परंतु आज उपन्यास शब्द के अंतर्गत गद्‌य द्‌वारा अभिव्यक्त संपूर्ण कथा को स्वीकारा जाता है। इसलिए आज 'उपन्यास' का अर्थ इस रूप में देखा जाता है। उपन्यास 'उप' और 'न्यास' दो शब्दों से मिलकर बना है। 'उप' का अर्थ समीप और 'न्यास' का अर्थ होता है 'रखना'। इस प्रकार उपन्यास का अर्थ हुआ पास रखना। अर्थात् उपन्यास वह है जिसमें उपन्यासकार मानव जीवन की यथार्थ घटनाओं को लेकर कल्पना का जामा पहनकर एक नये रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार इसमें मानव जीवन से संबंधित सुखद एवं दु:खद किन्तु मर्मस्पर्शी घटनाओं को निश्चित तारतम्य के साथ चित्रित करता है।

आधुनिक काल में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से सर्वप्रथम बंगला साहित्य में प्राप्त होता है। सन् 1856-57 में ऐतिहासिक उपन्यास के नाम से 1861 में एक अद्‌भुत उपन्यास के रूप में और 1864 में बंगाल की पत्रिका 'बंगदर्शन' में उपन्यास शब्द का प्रयोग हुआ दिखाई देता है।

अंग्रेजी में उपन्यास को (Novel) कहते है। इसके प्रभाव से गुजरात में उपन्यास को 'नवल कथा' कहा जाता है। दोनों में नया अर्थ निहित है। मराठी में 'कादंबरी' कहा जाता है। यह विधा नई रही है। इसलिए शायद इसे नयी कविता नयी कहानी की तरह 'नवल कथा' कहा है। हिंदी में सबसे पहले 1871 में 'मनोहर' उपन्यास में उपन्यास शब्द प्रयुक्त हुआ। परंतु विद्‌वानों ने इसे उपन्यास नहीं माना है। बल्कि हिंदी का प्रथम उपन्यास 'परिक्षा गुरू' को स्वीकार किया गया है।

उपन्यास के स्वरूप को समझने के लिए एक-दो परिभाषा देखनी आवश्यक है। उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचंद्र उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार करते हैं, ''मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है। बाबू गुलाबराय इस सिद्‌धांत के अनुसार उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार करते है, ''उपन्यास कार्य-कारण-श्रृंखला में बंधा हुआ वह गेय कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचींदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक काल्पनिक घटनाओं द्‌वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्‌घाटन किया जाता है।''

डॉक्टर श्यामसुंदर दास उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार देते है, ''उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने पर उपन्यास का स्वरूप इस प्रकार दिखाई देता है। उपन्यास मानव जीवन की आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों का उसके मन के संघर्ष का, उसके चारों ओर के वातावरण एवं समाज का एक काल्पनिक चित्र है। अर्थात् उपन्यास जनसाधारण के धरातल पर लिखा हो। उसकी कथावस्तु काल्पनिक होते हुए भी जीवन के यथार्थ ले ली गई हो। उसके अवांतर कथाओं के मेल रहने पर भी उसकी इस कथा का स्वरूप स्पष्ट हो। भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए। उपन्यासकार उपन्यास में जिन विचारों को व्यक्त करता है, उसकी दो विधियाँ अपनाता है - प्रत्यक्षविधी, अप्रत्यक्षविधी। प्रत्यक्षविधी में लेखक

अवकाश निकालकर स्वयं किसी सिद्धांत का प्रतिपादन करने लगता है और अप्रत्यक्ष विधी में वह पात्रों के माध्यम से बोलता है। प्राय: लेखक अपने प्रधान पात्रों के माध्यम से बोलते है। जिसमें जीवन के सदृश्य व्यक्तित्व-विश्लेषण और इतिहास के सदृश्य घटनाओं का चित्रण होता है। वही दूसरी ओर कविता की कल्पना, भावों की पुष्टता एवं शैली का सौंदर्य और रोचकता हो जिससे उपन्यास को सफलता मिलेगी।

2.3.3.3 उपन्यास के तत्त्व :

प्रस्तावना : आधुनिक उपन्यास अंग्रेजी साहित्य Novel से प्रभावित है। इसलिए उसकी रूप-रचना पाश्चात्य उपन्यास शिल्प से प्रभावित है। अंत: हिंदी उपन्यास के तत्त्वों का विवेचन पाश्चात्य उपन्यास शास्त्र के आधारपर होना चाहिए। पाश्चात्य साहित्य में उपन्यास के छ: तत्त्व माने गए हैं। वही हिंदी उपन्यास के लिए पात्र है।

1) कथावस्तु, 2) पात्र तथा चरित्र-चित्रण, 3) कथोपकथन संवाद, 4) देशकाल-वातावरण, 5) भाषाशैली, 6) उद्‌देश्य।

1) कथावस्तु :

'उपन्यास' का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व कथावस्तु होता है। उपन्यास में प्रयुक्त होनेवाले साधनों में कथानक का अत्याधिक महत्त्व रहता है। उपन्यास या कथा का संपूर्ण ढाँचा कथानक के आधार पर ही खडा होता है। क्योंकि जो तत्त्व रीढ की हड्‌डी के समान सारी घटनाओं को गतीशील बनाता है, उसे कथानक कहते है। उपन्यास की कथावस्तु में कार्य कारण संबंध प्रमुख होता है और आगे की घटनाओं का कोई न कोई उचित कारण दिया जाता है। अर्थात् कथावस्तु उपन्यास में वर्णित घटनाओं का वह संग्रह है जिस पर उपन्यास का ढाँचा खडा होता है। जिसके द्‌वारा उपन्यासकार के विचार सामुहिक रूप में अभिव्यक्त होते है। उपन्यासकार अपने कथानक का चुनाव एक सामान्य घटना से लेकर राज्यक्रांती तक कर सकता है। अर्थात् इतिहास पुराण या जीवन के किसी भी क्षेत्र से घटना का चुनाव किया जा सकता है। परंतु उपन्यासकार जिस किसी विषय का चुनाव करे उस विषय का उसे संपूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

उपन्यासकार को संपूर्ण कथानक को सुसंबंधित रूप में प्रस्तुत करना होता है। इसलिए उपन्यास की कथावस्तु इतनी छोटी न हो कि उसमें सौंदर्य उत्पन्न हो न हो पाए और न इतनी अधिक बडी हो कि आगे पढते चले जाए और पीछे का भूलते जाए। कथावस्तु का पूर्ण निर्वाह प्रारंभ से अंततक होना चाहिए। सभी उलझने अंत तक पहुँचते-पहुँचते सुलझती जानी चाहिए। जीवन के किसी भी विषय पर लिखना हो उस का स्वअनुभव लेकर उसे कल्पना का पुट देना होता है। कथावस्तु ऐतिहासिक हो या काल्पनिक किंतु लेखक को न्यूनाधिक रूप में अपनी कल्पना का आश्रय लेकर उसे सरलता एवं प्रभावकरिता प्रदान करनी पडती है। कथावस्तु जीवन से संबंधित किसी भी प्रकार की हो सकती है। चाहे वह राजनीतिक हो या धार्मिक, साहित्यिक हो या सांस्कृतिक, ऐतिहासिक हो या पौराणिक, रोमांटिक हो या जासूसी उनमें अलौकिक या अस्वाभाविक अंश का समावेश नहीं होना चाहिए। बल्कि कथानक में विषयानुरूप मानव जीवन, समाज और स्थिति का वर्णन स्वाभाविक हो।

उत्तम कथावस्तु में संगठन, अनुपात, घटनाओं का सहज विकास, रोचकता, गति, स्वाभाविकता, मौलिकता तथा सत्यता के गुण विद्यमान रहते है। उपन्यास की कथावस्तु में मानव जीवन की परिस्थितियों एवं उनकी समस्याओं का ऐसा सजीव चित्रण होना चाहिए जो बिल्कुल सत्य हो या यथार्थ होते हुए भी रोचक हो। समाज के आदर्श चरित्रों के माध्यम से उपन्यास में प्रकट होते है। जीवन के उत्थान-पतन का मनोवैज्ञानिक चित्र उपन्यास की कथावस्तु में होता है। सभी घटनाओं को एक श्रृंखला में रखना चाहिए। जिससे वे समन्वित रूप में एक प्रतीत हो।

सामान्यत: उपन्यास को कथावस्तु प्रत्यक्ष प्रणाली या आत्मकथा प्रणाली अथवा 'पत्र प्रणाली' के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

2) पात्र तथा चरित्र-चित्रण :

उपन्यासों की सबसे बडी विशेषता पात्रों का व्यक्तित्व या चरित्र-चित्रण होता है। उपन्यास में चित्रित घटनाएँ जिनसे संबंधित होती है या जिनको लेकर उन घटनाओं का घटित होना दिखाया जाता है। वे पात्र कहलाते है। पात्रों के बिना कथानक नहीं चल सकता है। उपन्यास का विषय मानव जीवन से संबंधित होने के कारण पात्रों का चयन समाज के किसी भी वर्ग से किया जा सकता है। विभिन्न प्रकृति और प्रवृत्ति के पात्र उपन्यास में होते हैं। उसका मुख्य उद्देश्य मानव की कमजोरियों के साथ ही उसकी सफलताओं का प्रदर्शन भी है। क्योंकि समाज के कोई भी दो प्राणी एक जैसे नहीं होते, हर एक में कुछ न कुछ भिन्नता होती है। इस संदर्भ में प्रेमचंद कहते है, ''किन्ही भी दो आदमियों की सूरते नहीं मिलती, उसी भाँति आदमियों के चरित्र भी नहीं मिलते। जैसे सब आदमियों के हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक, मुँह होते हैं। उसी भाँति सब आदमियों के चरित्रों में बहुत कुछ समानता होते हुए भी कुछ विभिन्नताएँ होती हैं। यही समानता और विभिन्नता दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्तव्य होता है।

चरित्र-चित्रण की विभिन्न पद्धतियों, प्रणालियाँ प्रचलित है किन्तु मुख्य रूप में वर्णनात्मक प्रणाली और अभिनयात्मक प्रणाली ये दो पद्धतियाँ प्रचलित है। सामान्यत: चरित्र के चार प्रकार होते है - 1) वर्गप्रधान चरित्र, 2) व्यक्तिप्रधान चरित्र, 3) आदर्श चरित्र, 4) यथार्थ चरित्र।

वर्ग प्रधान चरित्रों में जातीय विशेषताओं को दर्शाया जाता है। आदर्श चरित्र में किसी पात्र विशेष के जीवन में आदर्शवादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की जाती है और यथार्थवादी चरित्रों में पात्र देव, आसूर या मानव किसी भी कोटि के हो सकते है।

चरित्र-चित्रण के लिए मौलिकता, स्वाभाविकता, अनुकूलता, सजीयता, सहृदयता आदि गुणों का होना महत्त्वपूर्ण है।

1) मौलिकता : उपन्यास के कथाओं के विशिष्ट पात्रों के कुछ ऐसे गुण होते है कि उनका व्यक्तित्व प्रभावोत्पदकता निर्माण करके मौलिक बन जाते है। जो उपन्याासकार जितना मौलिक होता है, उसके पात्र भी उतने ही मौलिक और हमारे मन को स्वाभाविकता लानेवाले होते हैं। उपन्यास के पात्र अपने समाज से जुडे

रहे और प्राणियों जैसी विशेषताओं से युक्त हो किन्तु उनमें दूसरों की अपेक्षा रहनेवाला भेद भी स्पष्ट हो सके।

2) स्वाभाविकता : स्वाभाविकता का अभिप्राय यह है कि, पात्रों का चित्रण इस प्रकार होना चाहिए कि, वे इसे इसी जगत के अपने आसपास के प्राणी प्रतीत हो।

3) अनुकूलता : पात्रों का कथानक के अनुकूल होना उपन्यास की श्रेष्ठता के लिए आवश्यक गुण माना जाता है। पात्रों का सृजन कथाविषय और स्थिति के अनुकूल होना चाहिए।

4) सजीवता : अनुकूलता और स्वाभाविकता आदि गुण जब चरित्र-चित्रण में उपस्थित रहते हैं तभी उसमें सजीवता आ जाती है। इसलिए उपन्यास के पात्र निर्जीव और नि:ष्प्रभ प्रतीत होने की अपेक्षा सजीव प्रतीत होने चाहिए।

5) सहृदयता : उपन्यास के पात्र अधिक से अधिक मानवीय और हमारे सुख-दु:ख आदि के साथ जुडे रहने चाहिए। हमारी सहानुभूति और संवेदना के वे अधिकारी हो तथा वे हमें अपने विश्वास में ले सके ऐसा होना आवश्यक है। जिसमें आदर्श और यथार्थ के संङ्कन्वङ्क से ही किसी उद्देश्ङ्क की पूर्ति हो।

3) कथोपकथन :

उपन्यास के पात्र जिस पारंपारिक वार्तालाप द्वारा कथावस्तु को आगे ले जाते हैं और अपने चरित्र को प्रकाशित करते है, उसे कथोपकथन कहते है। इसलिए कथोपकथन को उपन्यास का आवश्यक तत्त्व माना जाता है। उपन्यासकार को यह ध्यान रखना पडता है कि कथोपकथन विषय संगत, सजीव एवं स्वाभाविक हो। जो पात्रों के बौद्धिक और मानसिक स्थिति के अनुकूल होने चाहिए। इसलिए अधिक तत्त्व कथोपकथन की जगह सरल, सुबोध और मनोहर संवाद हो। कथोपकथन में नाटकीयता और स्वाभाविकता होनी चाहिए। कथोपकथन से उपन्यास में नाटकीयता उत्पन्न होती है; अंत: यथासंभव उनमें पात्रों के मनोभावों, संकल्प-विकल्पों, प्रतिक्रियाओं आदि का भव्य चित्र प्रस्तुत करना होता है। इसलिए नाटक की तुलना में उपन्यास के कथोपकथन विस्तृत होते है। उपन्यास में चित्रित पात्र के अनुकूल, स्वाभाविकता, मनोविज्ञान की उपयुक्तता और उपन्यास की रोचकता और आकर्षण को बनानेवाली अभिनयात्मकता और सरलता आवश्यक है।

कथोपकथन के द्वारा तीन विशेषताएं स्पष्ट होती है।

1) कथानक का विकास

2) चरित्र-चित्रण में सहाय्यक

3) लेखक के दृष्टिकोण की झाँकी।

उपर्युक्त बातों की ओर ध्यान देते हुए कथोपकथन को सूक्ष्म, स्वाभाविक, सशक्त और प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

4) देश, काल तथा वातावरण :

उपन्यासों में स्वाभाविकता और सजीवता का आभास देने के लिए देश, काल तथा वातावरण की ओर विशेष ध्यान देना महत्त्वपूर्ण होता है।

देशकाल के अंतर्गत किसी भी समाज या राष्ट्र की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थितीयाँ, आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज का वर्णन आता है। उपन्यास में चित्रित घटना की सजीवता में वृद्धि करने के लिए 'वातावरण' चित्रण उपयुक्त सिद्ध होता है। देश काल तथा वातावरण के चित्रण में भी सूक्ष्मता का ध्यान रखना पडता है। इसको सरस बनाने के लिए इसमें कल्पना का पुट भी देना चाहिए। साथ ही वातावरण का वर्णन वहीं तक उचित होना चाहिए। जहाँ तक की वे कथा-प्रवाह में सहायक हो।

पात्रों के व्यक्तित्व का चित्र उनकी बातचीत से हमारे सामने आता है, किन्तु पात्र जिस परिस्थिति और वातावरण में रहते है और विकास पाते हैं, उस परिस्थिति स्थान और काल का पूरा-पूरा चित्र दिया जाए। जिसमें कथानक की घटनाएँ घटित होती दिखाई गई हो। क्योंकि बिना देशकाल के पात्रों का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता। इसलिए कथानक के पात्र भी वास्तविक पात्र की भाँति देश-काल के बंधन में रहनेवाले चित्रित होने चाहिए। जिसकी सहायता घटनाक्रम को समझने में होती है।

5) भाषाशैली :

लेखक की अभिव्यक्ति का साधन शैली है और भाषा इसकी सहायिका है। 'शैली' एक साहित्य का ऐसा तत्त्व है जो साहित्य के सभी अंगों में समान रूप में व्यक्त रहता है। इस बारे में डॉ. श्यामसुंदर दास कहते है, ''भाव, विचार और कल्पना तो इसमें नैसर्गिक अवस्था में वर्तमान रहती है और साथ ही उन्हें व्यक्त करने की स्वाभाविक शक्ति भी इसमें रहती है। अब यदि इस शक्ति को बढाकर संस्कृत और उन्नत करके हम उनका उपयोग कर सके तो उन भावों, विचारों और कल्पनाओं के द्वारा हम संसार के ज्ञानभंडार की वृद्धि करके उसका बहुत कुछ उपकार कर सकते है। इसी शक्ति को साहित्य में 'शैली' कहते है।''

उपन्यास की भाषा जन-जीवन के जितने ही समीप हो, वह उतनी ही सरल लगेगी और पाठक आकृष्ट होंगे। लोकोक्तियों एवं मुहावरों के स्वाभाविक प्रयोग से उसमें सजीवता आती है। भाषा शैली को अधिक ग्राह्य बनाने के लिए उपन्यासकार ने हास्य और व्यंग्य का यथोचित प्राविधान करना चाहिए। साथ ही पात्रानुकुल भाषा शैली में उपन्यास से प्रवाह एवं प्रांजलता जैसे गुण स्वत: आ जाते है। जिसके लिए भाषा शैली, प्रसाद और माधुर्य गुण से युक्त होनी चाहिए।

शैली जहाँ एक ओर लेखक के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करती है, वहाँ इसी ओर पाठक को भी विमुग्ध रखती है।

उपन्यासकार उपन्यास में प्राय: निम्न शैलियों का प्रयोग करते हैं। 1) वर्णनात्मक शैली, 2) आत्मकथात्मक शैली, 3) पात्रात्मक शैली, 4) डायरी शैली.

1) वर्णनात्मक शैली : वर्णनात्मक शैली में लेखक पात्रों एवं घटनाओं का वर्णन करता है। यह शैली सर्वाधिक प्रचलित है। वस्तु वर्णन एवं प्रकृतिवर्णन की सुविधा इस शैली में सर्वाधिक रहती है।

2) आत्मकथात्मक शैली : आत्मकथात्मक शैली में एक पात्र ही स्वत: सारी कहानी आपबीती के रूप में प्रस्तुत करता है।

3) पात्रात्मक शैली : पात्रात्मक शैली में पत्र के माध्यम से कथावस्तु विकसित होती है।

4) डायरी शैली : डायरी शैली में 'डायरी' के माध्यम से कथावस्तु का विकास किया जाता है।

6) उद्देश्य :

उपन्यासकार उपन्यास का उद्देश्ङ्ग मनोरंजन के साथ-साथ जीवन की मीमांसा करना होता है। वस्तुत: कलात्मक सौंदर्य को सहभागी बनाकर जीवन दर्शन और आनंद का समान्वयात्मक चित्रण करना उपन्यासकार का लक्ष्य होना चाहिए। मुन्शी प्रेमचंद ने मानव जीवन पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना उपन्यास का लक्ष्य माना है।

उपन्यास चाहे सुखान्त हो या दु:खान्त, दोनों से आनंद की अनुभूति होती है और इसी अनुभूति की सिद्धी कर सकने पर लेखक का यान सफल हो जाता है। शाश्वत जीवन मूल्यों और प्रश्नों की व्याख्या करनेवाले कलाकार की ही कृति अमर होती है। उपन्यासकार भी इन्ही की साधना करता है। वह सौंदर्य का तृष्टा है; उसका कार्य उपदेश या प्रचार नहीं होता हैं।

2.3.1.3 उपन्यास के प्रकार

उपन्यास में कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जो प्रायः सभी में मिलेंगे। किन्तु यह भी सच है कि सभी तत्त्व समान रूप से नहीं होते। कभी विषय वस्तु की प्रधानता होती है तो किसी में पात्र यानी चरित्र। कहने का तात्पर्य यह है कि उपन्यास में तत्त्वों की प्रमुखता के आधार पर कई भेद किये जा सकते हैं।

1. तत्त्वों के आधार पर : घटना प्रधान, चरित्र प्रधान
2. वर्ण्य विषय के आधार पर : ऐतिहासिक, सामाजिक, साहसिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक इत्यादि।
3. शैली के आधार पर : कथा, आत्मकथा, पत्रात्मक, डायरी आदि।

उपन्यासों का यह वर्गीकरण भ्रम उत्पन्न करता है, साथ ही शैली को छोड़कर दोनों के कई उपरूप समानता लिए हुए है। अतः विद्वानो ने घटनाप्रधान उपन्यास, चरित्रप्रधान उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, आंचलिक उपन्यासों इत्यादि को मुख्य भेद माना है।

1. सामाजिक उपन्यास

सामाजिक उपन्यासों में सामयिक युग के विचार आदर्श और समस्याएं चित्रित रहती हैं। सामाजिक समस्याओं का चित्रण इनका मुख्य उद्देश्य रहता है। इन पर राजनैतिक-सामाजिक धारणाओं और मतों का

विशेष प्रभाव रहता है। विषयगत विस्तार की दृष्टि से सामाजिक उपन्यासों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। हिन्दी साहित्य में अधिकांश उपन्यास सामाजिक उपन्यास की श्रेणी में आते हैं। भारतेन्दु युग मे प्रारम्भ होने वाली इस औपन्यासिक प्रवृत्ति का प्रसार परवर्ती युग में विभिन्न रूप में हुआ है। प्रेमचंद और प्रेमचंद के परवर्ती युग में सामाजिक प्रवृत्ति अनेक रूपों में विकसित हुई। जिसके मुख्य समस्यामूलक भाव प्रधान एवं आदर्शवादी तथा नीति कथात्मक औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ प्रमुख हैं।

2. ऐतिहासिक उपन्यास

ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास की घटना या चरित्र को उजागर किया जाता है। या कहें कि किसी ऐतिहासिक घटना या चरित्र से प्रभावित होकर जब उपन्यासकार उससे सम्बद्ध युग और देश की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि परिस्थितियाँ का चित्रण अपनी रचना में करता है तो उसे ऐतिहासिक उपन्यास कहा जाता है। इस कार्य के लिए उसे इतिहास से सम्बन्धित अन्य तथ्यों, वातावरण, तत्कालीन जीवन का सर्वांगीण, आन्तरिक और प्रभावोत्पादकता का ज्ञान होना चाहिए। इन उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का पूर्ण योग रहता हैं। इनसे एक का भी अभाव होने से सफल ऐतिहासिक उपन्यास की रचना नहीं हो सकती।

ऐतिहासिक उपन्यास इतिहासकारों, पुरातत्त्ववेताओं के द्वारा संग्रहित नीरस तथ्यों को कल्पना द्वारा जीवित और सुन्दर बना देता हैं, किन्तु रचनात्मकता का आश्रय लेकर उपन्यास लेखक जिस रूप में उसे हमारे समक्ष प्रस्तुत करता हैं; विश्वसनीय होने पर हम उसे यथार्थ रूप में स्वीकार कर लेते है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा का आरम्भ भारतेन्दु युग में किशोरीलाल गोस्वामी रचित कुछ उपन्यासों में मिलता है। आधुनिक युगीन हिन्दी उपन्यासों के ऐतिहासिक उपन्यास लेकखों में डा. वृंदावन लाल वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। 'गढ कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'मृगनयनी', 'टूटे कॉटे', अहिल्याबाई आदि उनके ऐतिहासिक उपन्यास है। 'झाँसी की रानी' लेखक की ऐतिहासिक रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ है।

3. घटनाप्रधान उपन्यास

इन उपन्यासों में चमत्कारिक घटनाओं की प्रधानता रहती है। पाठक के कौतूहल और उत्सुकता को निरन्तर जाग्रत बनाए रखने में ही इनकी सफलता मानी जाती है। इन उपन्यासों में यद्यपि घटनाएं ही मुख्य होती हैं परन्तु वास्तविकता की अपेक्षा काल्पनिक तथा चमत्कारपूर्ण जीवन का प्राधान्य रहता है। इनकी कथावस्तू, प्रमाख्यान, पौराणिक कथाएँ, जासूसी तथा तिलिस्म घटनाओं से निर्मित होता है।

4. चरित्र प्रधान उपन्यास

इन उपन्यासों में घटना के स्थान पर पात्रों की प्रधानता होती है। इनमें पात्रों के चारित्रिक विकास पर ही पूर्ण ध्यान दिया जाता है। पात्र घटनाओं से पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं। वे स्वयं परिस्थिति के निर्माता होते है, न कि परिस्थिति उनकी पात्रों का चारित्रिक विकास आरम्भ से अन्त एकरस बने रहते हैं। केवल उपन्यास के विस्तार साथ-साथ उनके विषय में पाठक के ज्ञान में वृद्धि होती रहती है। इन चरित्रों में परिवर्तन नहीं होता,

घटनाएं केवल पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर ही प्रकाश डालती है। ये उपन्यास समाज, देश तथा जाति की चारित्रिक विशेषताओं का प्रदर्शन सर्वाधिक प्रभावशाली और संवेदनशील रूप में करते हैं।

हिन्दी में जैनेन्द्र, अग्र, ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास इसी वर्ग के हैं। ऐसे उपन्यासों के पाठक कम होते हैं। ये चर्चा का विषय तो बनते है परन्तु लोकप्रिय नहीं हो पाते। भाषा, शिल्प आदि की दृष्टि से इन्हें श्रेष्ठ माना जाता है।

उपन्यास का शैलीगत वर्गीकरण

उक्त भेदों के अतिरिक्त उपन्यास का वर्गीकरण शैलीगत आधार पर भी किया जा सकता है। वर्तमान युग में उपन्यास लेखन की अनेक शैलियाँ दिखाई दे रही है। यों तो अधिकतर उपन्यासकार श्रोताओं-पाठकों का ध्यान रखकर पात्रों और दृश्यों का वर्णन निरपेक्ष भाव से करते थे। जिसे वर्णनात्मक शैली कहते है, किन्तु अब मनोविज्ञान के समावेश से अन्य शैलियाँ भी विकसित हुई। इनमें कथा तथा पात्र के विकास के लिए दो या दो से अधिक पात्रों का सम्भाषण, संवादात्मक शैली, उत्तम पुरुष अर्थात् मुख्य पात्र द्वारा आरम्भ से अन्त तक स्वयं कथा कहने की आत्मकथात्मक शैली, और पत्रों के द्वारा चरित्र और कथावस्तु का विकास पत्रात्मक शैली के रूप हुआ है। कुछ लेखकों ने डायरी शैली में भी उपन्यास लिखे हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य निरन्तर विकसित होता रहा है। आज भी रूप-विधान और शैली की दृष्टि से इनमें दिन-प्रतिदिन नये प्रयोग देखे जा रहे हैं।

2.3.2 नाटक का स्वरूप एवं पाश्चात्य तत्त्व

2.3.2.1 प्रस्तावना

पारम्परिक सन्दर्भ में, नाटक, काव्य का एक रूप है (दृश्यकाव्य)। जो रचना श्रवण द्वारा ही नहीं अपितु दृष्टि द्वारा भी दर्शकों के हृदय में रसानुभूति कराती है उसे नाटक या दृश्य-काव्य कहते हैं। नाटक में श्रव्य काव्य से अधिक रमणीयता होती है। श्रव्य काव्य होने के कारण यह लोक चेतना से अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। नाटक की गिनती काव्यों में है। काव्य दो प्रकार के माने गये हैं- श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। इसी दृश्य काव्य का एक भेद नाटक माना गया है। परन्तु दृष्टि द्वारा मुख्य रूप से इसका ग्रहण होने के कारण सभी दृश्य काव्यों को ही 'नाटक' कहने ले हैं। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र इस विषय का सबसे प्राचीन ग्रंथ मिलता है। अग्निपुराण में भी नाटक के लक्षण आदि का निरूपण है। उसमें एक प्रकार के काव्य का नाम प्रकीर्ण कहा गया है। इस प्रकीर्ण के दो भेद है- काव्य और अभिनेय। अग्निपुराण में दृश्य काव्य या रूपक के २७ भेद कहे गए है। साहित्यदर्पण में नाटक के लक्षण, भेद आदि अधिक स्पष्ट रूप से दिए हैं।

2.3.2.2 नाटक : स्वरूप

ऊपर लिखा जा चुका है कि दृश्य काव्य के एक भेद का नाम नाटक है। दृश्य काव्य के मुख्य दो विभाग हैं- रूपक और उपरूपक। रूपक के दस भेद हैं- रूपक, नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंकवीथी और प्रहसन। 'उपरूपक' के अठारह भेद हैं- नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्षणा, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिंपक, विलासिका,

दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीशा और भणिका। उपर्युक्त भेदों के अनुसार नाटक शब्द दृश्य काव्य मात्र के अर्थ में बोलते हैं। साहित्यदर्पण के अनुसार नाटक किसी ख्यात वृत्त (प्रसिद्ध आख्यान, कल्पित नहीं) की लेकर लिखाना चाहिए। वह बहुत प्रकार के विलास, सुख, दुःख, तथा अनेक रसों से युक्त होना चाहिए। उसमें पाँच से लेकर दस तक अंक होने चाहिए। नाटक का नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंश का कोई प्रतापी पुरुष या राजर्षि होना चाहिए। नाटक के प्रधान या अंगी रस शृंगार और वीर हैं। शेष रस गौण रूप से आते हैं। शांति, करुणा आदि जिस रूपक में प्रथान हो वह नाटक नहीं कहला सकता। संधिस्थल में कोई विस्मयजनक व्यापार होना चाहिए। उपसंहार में मंगल ही दिखाया जाना चाहिए। वियोगांत नाटक संस्कृत अलंकार शास्त्र के विरुद्ध है। अभिनय आरंभ होने के पहले जो क्रिया (मंगलाचरण नांदी) होती है, उसे पूर्वरंग कहते हैं। पूर्वरंग, के उपरांत प्रधान नट या सूत्रधार, जिसे स्थापक भी कहते हैं, आकर सभा की प्रशंसा करता है। फिर नट, नटी सूत्रधार इत्यादि परस्पर वार्तालाप करते हैं जिसमें खेले जानेवाले नाटक का प्रस्ताव, कवि-वंश-वर्णन आदि विषय आ जाते हैं। नाटक के इस अंश को प्रस्तावना कहते हैं। जिस इतिवृत्त को लेकर नाटक रचा जाता है उसे वस्तु कहते हैं। 'वस्तु' दो प्रकार की होती है- अधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु। जो समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उसे अधिकारी कहते हैं। इस अधिकारी के संबंध में जो कुछ वर्णन किया जाता है उसे आधिकारिक वस्तु कहते हैं; जैसे, रामलीला में राम का चरित्र। इस अधिकारी के उपकार के लिये या रसपुष्टि के लिये प्रसंगवश जिसका वर्णन आ जाता है उसे प्रासंगिक वस्तु कहते हैं; जैसे सुग्रीव, आदि का चरित्र। 'सामने लाने' अर्थात् दृश्य संमुख उपस्थित करने को अभिनय कहते हैं। अतः अवस्थानुरुप अनुकरण या स्वाँग का नाम ही अभिनय है। अभिनय चार प्रकार का होता है- आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। अंगों की चेष्टा से जो अभिनय किया जाता है उसे आंगिक, वचनों से जो किया जाता है उसे वाचिक, भेस बनाकर जो किया जाता हैं उसे आहार्य तथा भावों के उद्रेक से कंप, स्वेद आदि द्वारा जो होता है उसे सात्विक कहते हैं। नाटक में बिज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पाँचों के द्वारा प्रयोजन सिद्धि होती है। जो बात मुँह से कहते ही चारों ओर फैल जाय और फलसिद्धि का प्रथम कारण हो उसे बीज कहते हैं, जैसे वेणीसंहार नारक में भीम के क्रोध पर युधिष्ठिर का उत्साहवाक्य द्रौपदी के केशमोजन का कारण होने के कारण बीज है। कोई एक बात पूरी होने पर दूसरे वाक्य से उसका संबंध न रहने पर भी उसमें ऐसे वाक्य लाना जिनकी दूसरे वाक्य के साथ असंगति न हो 'बिंदु' है। बीच में किसी व्यापक प्रसंग के वर्णन को पताका कहते हैं- जैसे उत्तरचरित में सुग्रीव का और अभिज्ञान-शांकुतल में विदूषक का चरित्रवर्णन। एक देश व्यापी चरित्रवर्णन को प्रकरी कहते हैं। आरंभ की हुई क्रिया की फलसिद्धि के लिये जो कुछ किया जाय उसे कार्य कहते हैं; जैसे, रामलीला में रावण वध। किसी एक विषय की चर्चा हो रही हो, इसी बीच में कोई दूसरा विषय उपस्थित होकर पहले विषय से मेल में मालूम हो वहाँ पताका स्थान होता है, जैसे, रामचरित् में राम सीता से कह रहे हैं- 'हे प्रिये! तुम्हारी कोई बात मुझे असह्य नहीं, यदि असह्य है तो केवल तुम्हारा विरह, इसी बीच में प्रतिहारी आकर कहता है : देव! दुर्मुख उपस्थित। यहाँ 'उपस्थित' शब्द से 'विरह उपस्थित' ऐसी प्रतीत होता है और एक प्रकार का चमत्कार मालूम होता है। संस्कृत साहित्य में नाटक संबंधी ऐसे ही अनेक कौशलों की उद्भावना की गई है और अनेक

प्रकार के विभेद दिखाए गए हैं। आजकल देशभाषाओं में जो नए नाटक लिखे जाते हैं उनमें संस्कृत नाटकों के सब नियमों का पालन या विषयों का समावखेश अनावश्यक समझा जाता है।

यदि सुक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो भारतीय आचार्यों ने तीन ही तत्त्वों में तो सात तत्त्वों की चर्चा की है। आधुनिक हिंदी नाटकों मे मुख्यतः पाश्चात्य तत्त्वों का अनुकरण किया है। हम पाश्चात्य तत्त्वों पर विवेचन करेंगे।

2.3.2.3 नाटक : पाश्चात्य तत्त्व

आधुनिक हिंदी साहित्य की रंजनात्मक विधाओं में नाटक का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। देश-काल और स्थानीय परिस्थितियों की कुछ विशेषताओं को छोड़कर नाटक का विकसित रूप समस्त देशों में लगभग समान तत्त्वों पर आधारित है। अरस्तू ने अपने **'काव्यशास्त्र** (poetics) नामक ग्रंथ में त्रासदी (ट्रजेडी) के संदर्भ में नाट्य-तत्त्वों की चर्चा की है। उसके बाद अनेक पाश्चात्य विद्वानों में नाट्य-तत्त्वों को लेकर काफी चर्चा हुई और इसके परिणामस्वरूप जो तत्त्व निश्चित किए गए, वे निम्नांकित हैं -

(१) कथावस्तु (२) चरित्र-चित्रण (३) कथोपकथन या संवाद

(४) देश-काल-वातावरण (५) भाषाशैली (६) उद्देश्य

(७) अभिनेयता

१) <u>कथावस्तु</u> (Plot) -

नाटक का मूल आधार उसकी कथावस्तु होती है; क्योंकि इसी के माध्यम से अन्य तत्त्वों तथा अंगों का विकास होता है। नाटक की कथावस्तु जीवन के व्यापक क्षेत्र से ग्रहण की जाती है। नाटक की कथावस्तु या विषय वहीं घटनाएँ बननी चाहिए, जिनमें जीवन का चित्रण हो तथा जो दर्शकों को प्रभावित कर सके। नाटक की निश्चित अवधि में समाप्त हो सके, इतना ही कथावस्तु का विकास होना चाहिए। कथावस्तु की घटना में प्रवाह, कौतुहल और जिज्ञासा का होना आवश्यक है। नाटक की कथावस्तु सुव्यवस्थित, परिमार्जित तथा संक्षिप्त होनी चाहिए, जिससे प्रेक्षक का आकर्षण उसमें बना रहे।

कथावस्तु और चरित्र का बड़ा निकट संबंध है, इसलिए कथावस्तु चरित्रों का विकास करने वाली होनी चाहिए। इस विकास की दृष्टि से, साथ ही साथ आरंभ से लेकर अंत तक कथानक में कौतूहल बनाए रखने की दृष्टि से पाश्चात्य विद्वानों ने कथानक में **संघर्ष तत्त्व** को अनिवार्य माना है। संघर्ष को उन्होंने नाटक के प्राण के रूप में स्वीकार किया है। संघर्ष के कारण ही कथानक का विकास सहज रूप में होता है। इसके द्वारा ही नाटक में एक प्रकार का कौतूहल बना रहता है। इससे नाटक का कथानक प्रभावात्मक बन जाता है। नाटक में यह संघर्ष विभिन्न अवस्थाओं में से बढ़कर आगे चलता है और उसी के अनुसार कथानक का विकास हो जाता है। इस विकास की दृष्टि से कथावस्तु को पाँच भागों में विभाजित किया गया है; आरेख द्वारा इसे हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं -

१) उद्‌घाटन या प्रारंभ (Exposition) - कथानक में जहाँ संघर्ष का आरंभ होता है, उस संघर्ष की अवस्था को उद्‌घाटन कहा जाता है। यह संघर्ष बाह्‌य भी हो सकता है और आंतरिक भी। यह संघर्ष या विरोध दो विभिन्न आदर्शों, उद्‌देश्यों, दलों, सिद्‌धांतों आदि में से किसी का भी हो सकता है। सामान्यता नायक और प्रतिनायक इन विरोधी भावनाओं और आदर्शों के प्रतीक बन जाते हैं।

२) विकास (Incident) - यहाँ से कथावस्तु में गति आरंभ हो जाती है तथा जिज्ञासा का बीज पड़ता है। कथानक में धीरे-धीरे विभिन्न घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से संघर्ष का विकास होता रहता है और संघर्ष व्यापक रूप धारण करता है। इस कारण इस स्थिति को विकास कहा गया है।

३) चरमसीमा (Crisis or Climax) - यह कथावस्तु की ऐसी अवस्था है, जहाँ पारस्परिक विरोधी दलों या आदर्शों का संघर्ष अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है और वहाँ से किसी एक पक्ष की विजय आरंभ हो जाती है। यह स्थिति वास्तव में एक विशेष निर्णय की होती है और प्रेक्षकों में उत्तेजना आ जाती है। इसमें संघर्ष घनीभूत होता है और बाधाएँ अपनी चरमसीमा पर पहुँचती हैं । इसमें चरम उत्कर्ष का क्लाइमेक्स की स्थिति रहती है।

४) उतार या निगति (Denoument) - इसके पश्चात् संघर्ष के ऱ्हास में संघर्ष की तीव्रता और कथावस्तु का तनाव पहले से कम हो जाता है। यहाँ आशा-निराशा का रूप स्थिर होने लगता है और संघर्ष क्षीण हो जाता है। संघर्ष करने वाले दो पक्षों में से एक हीन हो जाता है और दूसरे पक्ष की विजय निश्चित हो जाने से कथावस्तु में उतार आ जाता है।

५) अंत या समाप्ति (Catastrphe) - इस अवस्था में आकर संपूर्ण संघर्ष समाप्त हो जाते हैं।

पाश्चात्य विद्‌वानों द्‌वारा निर्धारित उपर्युक्त कार्यावस्थाएँ भारतीय कार्यावस्थाओं से पर्याप्त साम्य रखती हैं। अंतर केवल इतना है कि भारतीय कार्यावस्थाएँ फल की ओर उन्मुख रहती हैं और पाश्चात्य कार्यावस्थाएँ संघर्ष की ओर। पाश्चात्य और भारतीय नाटकों के उद्‌देश्यों में भिन्नता होने के बावजूद दोनों की कार्यावस्थाओं में अद्‌भुत साम्य है।

२) पात्र और चरित्र चित्रण (Character) -

नाटककार अपने पात्रों के माध्यम से ही अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है; अत: नाटक में पात्र और चरित्र-चित्रण का विशेष महत्त्व है। नाटक चरित्रों के माध्यम से जीवन की सत्य अभिव्यक्ति है। अत: नाटक की कथावस्तु को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए पात्रों के चरित्र चित्रण पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। प्रेक्षक अपने ही जैसा रंग-रूप, रंगमंच पर चाहते हैं। अत: जहाँ तक हो सके प्रत्येक पात्र का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक होना चाहिए।

नाटककार अपने जीवन संबंधी दृष्टिकोण को चरित्र-चित्रण के सहारे ही दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। क्योंकि नाटककार की यह मर्यादा होती है कि वह अपने पात्रों के संबंध में स्वयं कुछ नहीं कह सकता। नाटककार के पास समय तथा स्थान की कमी होती ही है, साथ ही साथ वह पात्रों की चारित्रिक

विशेषताओं को भी स्वयं प्रकाशित नहीं कर सकता। कथावस्तु, घटनाओं और कथोपकथन के द्वारा ही वह पात्रों के चरित्र का उद्घाटन करता है। चरित्र-चित्रण की तीन प्रमुख विधियाँ हैं -

१) **पात्रों के कार्य-कलाप द्वारा -** पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन का यह एक प्रमुख साधन है। कार्य-कलाप के द्वारा ही हम पात्रों की उच्चता और नीचता का अनुभव कर सकते हैं।

२) **पात्रों की बातचीत या कथोपकथन के द्वारा -** मुख्यत: पात्रों के संवाद या कथोपकथन से ही कथावस्तु का विकास होता है। वार्तालाप के समय बातचीत के ढंग से पात्रों की मानसिक प्रवृत्तियों का अनुमान लगाना संभव है। पात्र जब एक-दूसरे के विषय में बातचीत करते हैं, तब वे अनायास ही एक-दूसरे की चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करते हैं।

३) **स्वगत भाषण** - स्वगत कथन में पात्रों के मन की आंतरिक प्रवृत्तियों का प्रकाशन होता है। मन में चलने वाली विचारधारा की साधुता, दुष्टता, चिंता, संघर्ष आदि का बोध इसके द्वारा होता है।

उपर्युक्त चरित्र-चित्रण की प्रमुख तीन विधियों में से प्रथम दो का नाटक की दृष्टि से अधिक महत्त्व है, इनको अप्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण कहा जाता है और तीसरा प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक होता है। विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण के लिए नाटकों में विशेष अवकाश नहीं रहता। स्वगत-भाषण की विधि भी अस्वाभाविक सिद्ध हो गई है। वास्तव में अप्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण उत्तम रहता है। क्योंकि इससे दर्शकों और पात्रों का संबंध सीधा बना रहता है।

नाटक में पात्रों के कार्यों और उनकी तथा उनके विषय से दूसरों की बातचीत के सम्मिलित प्रभाव द्वारा ही हम उनके चरित्र के विषय में कोई धारणा बना सकते हैं। कभी-कभी किसी पात्र विशेष के विषय में लेखक किसी अन्य पात्र के माध्यम से चारित्रिक विश्लेषण उपस्थित करके उस पात्र को समझने में दर्शकों की सहायता करता है। पात्र जैसा भी कार्य करता है, उससे उसके अच्छे-बुरे होने पर समुचित प्रकाश पड़ता है। उसके कार्य-कलाप ही उसके उदात्त या हीन होने पर प्रकाश डालते हैं। कथोपकथन से ही पात्रों के मन के भाव स्पष्ट होते हैं और उनकी विशेषताओं, गुणों या दोषों को उजागर करते हैं।

इस प्रकार नाटक में चरित्र-चित्रण विश्लेषणात्मक न होकर सदैव व्यंग्य होता है। लेखक को यह ध्यान देना पड़ता है कि उसके पात्र स्वाभाविक ढंग से विकसित हो रहे हैं या नहीं। इसके साथ ही चरित्र-चित्रण करते समय नाटककार को संक्षिप्तता, तटस्थता और सुसम्बद्धता का ध्यान रखना भी आवश्यक है। नाटककार को हमेशा निरपेक्ष रहना चाहिए। चरित्र बुरा है या अच्छा, उसे अनात्मिकता से सृजना चाहिए। अर्थात् जैसा चरित्र नाटक में दिखाना है या परिस्थिति के अनुसार जैसा आवश्यक है,उसे वैसा ही प्रदर्शित करें। वह अपने पात्रों को अपने हाथ ही कठपुतली नहीं बना सकता। संक्षेप में, चरित्र-चित्रण की उत्कृष्टता पर ही नाटक की सफलता आधारित होती है।

३) **संवाद या कथोपकथन** (Dialogue) –

पात्रों की पारस्परिक बातचीत का नाम संवाद या कथोपकथन है। नाटककार के भाव और विचार सभी उसकी अभिव्यक्ति के द्वारा ही प्रेक्षक की अनुभूति का विषय बनते हैं। इस अभिव्यक्ति के लिए कथोनकथन या संवाद का सहारा लिया जाता है। नाटक में जीवन का विकास घटना और चरित्र के द्वारा होता है और उसका अधिकांश रूप हमारे सम्मुख अभिनय के साथ कथोपकथन में आता है। संवाद ही अभिनय का मुख्य अंग है। नाटक में कथोपकथन या संवाद का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि नाटककार अपने पात्रों के विषय में स्वयं कुछ नहीं कह सकता।

नाटककार कथोपकथन के माध्यम से कथा का विकास करता है। पात्रों के चरित्रों को उभारने का काम भी संवाद ही करते हैं। इसके द्वारा ही भूत, वर्तमान या संभाव्य कालीन घटनाओं का ज्ञान होता है। संभाव्य घटनाओं के विषय में प्रेक्षकों में मन में एक प्रकार का कौतूहल बनाए रखने का काम भी संवाद ही करते हैं। पात्रों की इच्छाओं, विचारों और वृत्तियों का ज्ञान भी कथोपकथन के द्वारा ही होता है। इससे पात्रों के आचरण, स्वभाव आदि का पता चलता है। नाटक में प्रभावात्मकता और सजीवता लाने का काम भी संवादों के माध्यम से ही होता है। इसके कारण ही नाटक में एक प्रकार की स्वाभाविकता बनी रहती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति, सामाजिक और व्यावसायिक परिस्थितियों को लेकर स्वाभाविक रीति से बोलता रहता है। इससे पात्रों के विषय में दर्शकों के मन में एक प्रकार का विश्वास उत्पन्न होता है। इसी विश्वास के कारण दर्शक पात्रों में रूचि लेने लगते हैं। इस प्रकार कथोपकथन नाटक में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

इन सब कार्यों का सम्पादन सफल संवादों से होता है। इसलिए नाटक के संवाद जितने अधिक नपे-तुले तथा संक्षिप्त होंगे, उनमें व्यर्थ शब्दों का अभाव होगा, नाटक उतना ही अधिक प्रभावशाली होगा। संवाद जिनते ही अधिक चुश्त, फड़कते हुए, प्रभावशाली एवं सूक्ष्म होंगे, नाटक उतना ही अधिक चमत्कारपूर्ण होगा। उत्तम कथोपकथन में सरलता, सुंदरता, धारावाहिकता, संक्षिप्तता, पात्रानुरूपता, सार्थकता, चतुरता एवम् चमत्कारिता के गुण होते हैं। इसके अतिरिक्त संवाद देश, काल, पात्र, परिस्थिति, घटना, भाव आदि के अनुकूल होने चाहिए। संवादों का ध्वन्यात्मक, अभिनयात्मक, तर्कयुक्त, कौतुहलोद्दीपक तथा वक्रोक्ति प्रधान होना भी आवश्यक है। संवाद मार्मिक, जिवंत, बोधगम्य तथा भावात्मक हो। संवादों के मध्य में आवश्यक विराम, गति, यति आदि का भी ध्यान रखना चाहिए। संवाद को नाटक का प्राणतत्त्व माना जाता है। नाटक का समस्त चमत्कार संवादों में ही निहित होता है।

४) **देश–काल–वातावरण** (Time, Place and Atmosphere) –

अन्य साहित्य अंगों या रूपों की अपेक्षा नाटक में रंगमंच के कारण देश-काल-वातावरण का सर्वाधिक महत्त्व है। यह प्रेक्षकों पर एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा अधिक प्रभाव डालने में समर्थ होता है। विशिष्ट काल, विशिष्ट प्रदेश और विशिष्ट वातावरण की पृष्ठभूमि पर ही कथानक की घटनाओं और पात्रों के व्यवहार को दिखाना उपयुक्त होता है। वर्णित कार्यों की वास्तविकता प्रतीत कराने के लिए तथा

उनके घटित होने के स्थान एवं समय का निर्देश करने के लिए देश-काल-वातावरण का चित्रण आवश्यक होता है।

देशकाल के अंतर्गत केवल स्थान और समय ही नहीं, रीति-रिवाज, रहन-सहन के ढंग, पात्रों की वेशभूषा, उनके शिष्टाचार, आचार-व्यवहार, विचार-चिंतन, वार्तालाप की भाषाशैली तथा कथा की प्राकृतिक पृष्ठभूमि आदि सभी बातें आ जाती हैं, जो कथा को स्वाभाविक वातावरण प्रदान करती हैं। देश-काल और वातावरण की स्वाभाविकता पात्रों के अभिनय को जिवंत बनाने एवं कथावस्तु में सजीवता लाने के लिए आवश्यक है। नाटक में इस तत्त्व की अवतारणा तीन प्रकार से की जा सकती है -

१) पात्रों की वेशभूषा द्‌वारा,

२) पात्रों की भाषा द्‌वारा और

३) तत्कालीन अवस्था के चित्रण द्‌वारा।

नाटककार को यह ध्यान देना चाहिए कि जिस स्थान में और जिस काल में लोग जैसे वस्त्राभूषण धारण करते रहे हों, उसके पात्र भी वैसी ही वेशभूषा धारण करें। इसी प्रकार जिस स्थान में और जिस काल में जो भाषा प्रचलित रही हो, उससे सम्बद्‌ध पात्र भी वैसी ही भाषा का प्रयोग करें। ऐसा नहीं कि वैदिक कालीन पात्र 'अंग्रेजी' तथा 'उर्दू' बोलने लगे। ऐसा करने से नाटककार हास्य का पात्र बन जाएगा। इसी प्रकार घटनाचक्र एवं रंगमंचादि की रचना भी वातावरण के अनुकूल होनी चाहिए। दुष्यन्त और शकुंतला का अभिनय करने वाले पात्रों का रंगमंच पर आकर अपने दिन-प्रति-दिन के कपड़ों में ही अभिनय करना अथवा कश्मीर में लू चलते दिखाना वातावरण-चित्रण के विरूद्‌ध माना जाएगा। देश-काल और वातावरण का चित्रण करते समय नाटककार को तत्कालीन परिस्थितियों का ध्यान रखना इसीलिए आवश्यक है। इसी उद्‌देश्य से पाश्चात्य नाटकों में 'संकलन-त्रय' को विशेष महत्त्व दिया गया है।

संकलन-त्रय (Three Unities)

नाटक में स्वाभाविकता की रक्षा के लिए अरस्तू तथा अन्य पाश्चात्य विद्‌वानों ने 'संकलन-त्रय' का निर्देश किया है। इनके पालन से नाटक में स्वाभाविकता आती है और वह अधिक प्रभावोत्पादक भी बन जाता है। संकलन-त्रय के अंतर्गत 'स्थान की एकता', 'काल की एकता' और 'कार्य की एकता' आती है।

१) स्थान की एकता (Unity of Place) - इसका तात्पर्य यह है कि जिस स्थल की जो घटना जिन व्यक्तियों से सम्बद्‌ध हैं, वही वहाँ उपस्थित रहें। जो पात्र एक दृश्य में कहीं अन्यत्र दिखाए गए हों, वे तुरन्त ही दूसरे दृश्य में किसी दूसरे स्थान पर न दिखाए जाए। क्योंकि कुछ ही क्षणों में लंबे स्थान की दूरी तय कर लेना अस्वाभाविक है। एक स्थल आगरे का और दूसरा दृश्य कलकत्ते का दिखाया जाए तो असंगति पैदा होगी।

२) काल की एकता (Unity of Time) - इसका तात्पर्य यह है कि घटनाओं के कालक्रम का ध्यान रखना चाहिए। जो घटना पूर्व घटी हो, उसका चित्रण पूर्व और जो पश्चात् घटी हो उसका चित्रण पश्चात्

होना चाहिए। इसके अतिरिक्त नाटक में प्रदर्शित दो घटनाओं की समय दूरी भी अधिक नहीं होनी चाहिए। काल या समय के अनुसार ही पात्रों की वेशभूषा तथा भाषा का होना आवश्यक है। अगर भगवान राम सूट-बूट और हॅट पहने टेलिफोन पर अंग्रेजी में बातें करते हुए दिखाए जाए, तो वह असंगत होगा।

३) कार्य की एकता (Unity of Action) - नाटक की एकरसता तथा प्रभावात्मकता के लिए नाटककार को इसके अंतर्गत प्रधान कथा और प्रासंगिक कथाओं के समुचित संगठन तथा स्वाभाविक अभिनय का ध्यान रखना आवश्यक है। प्रासंगिक कथावस्तु का न तो इतना विस्तार होना चाहिए कि आधिकारिक कथावस्तु क्षीण लगने लगे और न आधिकारिक कथावस्तु से वह नितांत अलग ही जान पड़े। वस्तुत: नाटक में मुख्य या आधिकारिक कथा की ही प्रधानता रहनी चाहिए; गौण कथाएँ उसकी सहायक बनकर रह सकती हैं। संघर्षयुक्त कार्य को लेकर ही नाटक लिखा जाता है। अत: इस कार्य को ध्यान में रखकर ही सभी क्रियाओं का होना उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त नाटककार को किसी पात्र के चरित्र में आकस्मिक परिवर्तन दिखाते समय उसका मनोवैज्ञानिक कारण भी देना चाहिए, वरना नाटक में अस्वाभाविकता आ जाएगी। इस प्रकार 'संकलन-त्रय' के पालन से ही नाटक अभिनयात्मक बन सकता है तथा उसमें एकरसता और प्रभावात्मक बनी रहती है।

५) भाषाशैली (Diction and Style) -

नाटक एक अभिनयात्मक विधा है और लेखक के अभिनयात्मक दृष्टिकोण का उचित प्रतिपादन, रचना-शैली तथा उसकी भाषा पर ही निर्भर करता है। नाटक में स्वाभाविकता की रक्षा के लिए भाषा का पात्रानुकूल एवं देश-काल-वातावरण के अनुसार होना आवश्यक है। नाटक की भाषा सरल, सरस, रोचक, प्रवाहपूर्ण एवं ओज, माधुर्य तथा प्रसाद गुणों से युक्त हो। इन गुणों के अभाव में नाटक नीरस प्रतीत होने लगता है। वास्तव में भाषाशैली ही नाटक की मूल संवेदना को वहन किए रहती है और नाटक की सफलता भी भाषाशैली पर ही निर्भर रहती है। अत: भाषा के विषय में नाटककार को यह ध्यान रखना जरूरी है कि उसका एक भी शब्द निरर्थक न हो।

भाषा के साथ ही शैली का संबंध है; क्योंकि शैली भी भाषा को लेकर चलती है। नाटक में भावों के प्राण बनके शैली उपस्थित होती है और शैली की सफलता ही नाटक की सफलता में चार चाँद लगाती है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक **स्तान्याल** ने शैली को एक अच्छी रचना का गुण माना है। प्रसिद्ध पाश्चात्य नाटककार **जॉर्ज बर्नार्ड शाँ** का विचार भी इससे मिलता जुलता है - *'प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति ही शैली का अथ और इति है।'*

नाटक मर्मस्पर्शी बनाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया जाता है। काव्यमय वातावरण के लिए नाटककार भावात्मक, प्रतीकात्मक और सांकेतिक शैली का प्रयोग कर सकता है। समाज तथा व्यक्ति संबंधी कुछ असंगत बातों पर जब प्रहार करना होता है, तब नाटककार आवेगात्मक शैली, खंडन-मंडन शैली और व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करता है। कभी-कभी नाटककार केवल हास्य-

व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करके प्रेक्षकों का मनोरंजन भी करता है। वास्तव में शैली रचना का एक गुण है; अत: वह सरस, सरल और प्रभावपूर्ण होनी चाहिए।

६) **उद्‌देश्य** (Aim) –

उद्‌देश्य का अर्थ है लेखक का जीवन-दर्शन अथवा उसकी जीवन दृष्टि। इस तत्त्व के अभाव में साहित्यिक कृति व्यर्थ और प्रयोजनहीन होती है। क्योंकि रचना की सफलता और सिद्‌धि उसमें निहित संदेश या उद्‌देश्य पर ही निर्भर करती है। अत: साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति नाटक भी सोद्‌देश्य रचना है। परंतु नाटककार अपने उद्‌देश्य की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से स्वयं न कर कथोपकथन के द्‌वारा ही करता है। अनेक बार उद्‌देश्य कथानक में ही व्यंजित हो जाता है। परंतु अक्सर नाटककार अपने उद्‌देश्य की अभिव्यक्ति किसी पात्र के माध्यम से ही करता है। हम नाटककार का वास्तविक उद्‌देश्य भली प्रकार तभी जान सकते हैं, जब पात्रों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन कर नाटककार के असली विचारों को समझ सकें। नाटककार द्‌वारा अभिव्यक्त उद्‌देश्य से हमें तीन बातों का ज्ञान होता है –

१. नाटककार द्‌वारा अभिव्यक्त उद्‌देश्य से हमें मालूम होता है कि वह हमारे सम्मुख किस नैतिक आदर्श को उपस्थित करता है? उसका जीवन संबंधी दृष्टिकोण क्या है? नाटक में अभिव्यक्त उद्‌देश्य हमारे जीवन को किस रूप में प्रभावित करता है?

२. नाटककार द्‌वारा चित्रित आदर्श हमारे सामने उसके द्‌वारा वर्णित समाज के नैतिक तथा सामाजिक आदर्शों को प्रस्तुत करता है। इससे हम समझ सकते हैं कि वर्णित देश नैतिक दृष्टि से उन्नत है या पतित?

३. नाटककार द्‌वारा अभिव्यक्त उद्‌देश्य से हमें मालूम होता है कि वह जीवन के प्रति आदर्शवादी या यथार्थवादी दृष्टिकोण रखता है, उसमें निराशा या आशा का आधिक्य है?

पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार नाटक का उद्‌देश्य मनोरंजन के साथ-साथ जीवन की नई व्याख्या करना होता है। नाटककार जीवन संबंधी महत्त्वपूर्ण उद्‌देश्य को ही ध्यान में रखकर विशिष्ट पात्रों, घटनाओं, परिस्थितियों और विशिष्ट भाषाशैली को स्वीकार कर सम्पूर्ण नाटक को एक विशिष्ट आधार देता है। नाटककार उद्‌देश्य की दृष्टि से किसी आदर्श या नैतिकता की स्थापना करता है। वह यथार्थ और आदर्श का समन्वय करता है; इतना ही नहीं, जीवन की समस्याएँ तथा उनका उचित समाधान भी प्रस्तुत करता है। इस तत्त्व की दृष्टि से नाटककार कलाकार कम और दार्शनिक अधिक होता है।

७) **अभिनेयता –**

नाटक में 'अभिनय' ही एक ऐसा तत्त्व है, जो उपन्यास आदि में नहीं पाया जाता। इसीकारण नाटक को 'दृश्यकाव्य' की संज्ञा प्राप्त है। जो नाटक अभिनेय नहीं होते, वे उतने महत्त्वपूर्ण नहीं माने जाते। नाटक का निर्माण रंगमंच पर अभिनित होने के लिए ही होता है। अत: पाश्चात्य लोगों ने 'अभिनेयता' को भी नाट्‌य-तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है।

नाटका का प्रत्येक अंग अभिनय के अनुकूल होना आवश्यक होता है। इस दृष्टि से कथानक का विभाजन आवश्यक अंकों और दृश्यों में किया जाता है। पाश्चात्य विद्वानों ने रंगमंच की सुविधा को ध्यान में रखकर कथानक का विभाजन तीन अंकों और दृश्यों में स्वीकार किया है। प्रत्येक अंक का अंत कौतूहल बढ़ाने का कार्य करता है। पात्रों से संबंधित संघर्ष भी अभिनय के लिए उपयुक्त होता है। कथोपकथन और उसकी भाषा का रंगमंच के लिए सहज और स्वाभाविक होना भी अभिनय के लिए उपयुक्त होता है। नाटक में अभिनय के अंतर्गत कुछ रंग-निर्देश भी होते हैं। पाश्चात्य विद्वान **अरस्तू** ने नाटक के सफल अभिनय के लिए '**संकलन-त्रय**' (Three Unities) का उल्लेख किया है। इस संकलन-त्रय के पालन से ही नाटक अभिनयात्मक बन सकता है तथा उसमें एकरसता और प्रभावात्मकता बनी रहती है।

2.3.3 व्यंग्य का स्वरूप एवं तत्त्व

2.3.3.1 प्रस्तावना

व्यंग्य एक ऐसा शब्द है जिसे अक्सर गलत समझा जाता है और इसके पीछे अच्छे कारण भी हैं। इंटरनेट, सोशल मीडिया और मीम्स (नकल) के आगमन के साथ, यह लेखकों और रचनात्मक लोगों के लिए अपनी सामाजिक और राजनीतिक टिप्पणी देने का मुख्य साधन बन गया है। लेकिन व्यंग्य क्या है और किस चीज़ को व्यंग्य के रूप में वास्तव में क्या परिभाषित करता है? इसे समझने के लिए साहित्य फिल्मों और टीवी में उनका उपयोग कैसे किया जाता है, इस पर गहराई से विचार करेंगे। व्यंग्य एक भाषाई कार्य है। जब से भाषा का जन्म हुआ व्यंग्य का जन्म भी हुआ। हम अपने रोजमर्रा के जीवन में बात करते समय व्यंग्य भी करते हैं, कसते हैं। व्यंग्य 'किया' जाता है, 'कसा' जाता है, व्यंग्य 'मारा' जाता है, व्यंग्य 'बाण चलाया' जाता है। ये मुहावरे व्यंग्य के तीखेपन को दर्शाते हैं। व्यंग्य आरम्भ से बोलचाल भी भाषा में तो रहा लेकिन साहित्य में इसका प्रवेश बहुत बाद में हुआ। साहित्य अपनी परिभाषा में ही सौम्य होता है। सबको साथ लेकर नहीं चलता। वह समाज में व्याप्त विरोधाभासों की मज़ाक उडाता है। पाखण्ड पर चोट करता है। छल-प्रपंच और ऊपर से न दिखाई देने वाली विसंगतियों का परदाफाश करता है। दोगलेपन को धिक्कारता है। उसके उपहास में भी आलोचना का तत्त्व होता है। ऐसे में जब वह साहित्य में सहज ही प्रवेश नहीं कर पाता।

2.3.3.1 व्यंग्य का स्वरूप

व्यंग्य का अर्थ :

यह एक ऐसा शब्द है जिसे आप अक्सर सुनते हैं लेकिन व्यंग्य के विभिन्न प्रकार हैं जिनके अलग-अलग दृष्टिकोण और परिणाम हैं। यह समझने का पहला कदम कि कोई चीज़ व्यंग्यात्मक है या नहीं, यह समझना है कि सामान्य शब्दों में व्यंग्य क्या है। ऐसा करने के लिए, आइए व्यंग्य की परिभाषा पर एक नज़र डालें।

व्यंग्य की परिभाषा

व्यंग्य एक ऐसी विधा है जिसमें अतिशयोक्ति, विडंबना, हास्य या उपहास का उपयोग मानव स्वभाव और व्यवहार में दोषों की आलोचना करने और उन्हें उजागर करने के लिए किया जाता है। अपनी खुद की विधा होने के अलावा, यह एक साहित्यिक उपकरण है जिसका उपयोग अक्सर राजनीति और सामयिक मुद्दों की आलोचना करने के लिए किया जाता है। व्यंग्य का इस्तेमाल फ़िल्म, साहित्य और यहां तक कि संगीत जैसे विभिन्न माध्यमों में किया जाता है। व्यंग्य का उद्देश्य दर्शकों का मनोरंजन करना और उन्हें किसी विषय के बारे में अधिक गहराई से सोचने के लिए प्रेरित करना है। यह अक्सर हास्यप्रद होता है, लेकिन ऐसा होना ज़रूरी नहीं है।

व्यंग्य शब्द लैटिन वाक्यांश ''सैटर'' जिसका अर्थ है ''पूर्ण'' और वाक्यांश ''लैंक्स सैटूरा'' जिसका शाब्दिक अर्थ है ''विभिन्न प्रकार के फलों से भरा एक व्यंजन।'' हालाँकि यह अपने आधुनिक अर्थ से बहुत दूर लग सकता है, लेकिन ''व्यंग्य'' शब्द का इस्तेमाल रोमन आलोचकों द्वारा किया जाता था। इस शैली की उत्पत्ति व्यापक रूप से अरिस्टोफेन्स के ओल्ड कॉमेडी से मानी जाती है।

अधिकतर व्यंग्य साहित्य में मजबूरी में प्रवेश करता है। जब साहित्यकार समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपों, पाखंड को सामाजिक दवाबों या राजनैतिक कारणों से, या कभी कभी अन्यायपूर्ण व्यवस्था का खुद भी जीविका उपार्जन के लिए एक अंग होने की वजह से, प्रत्यक्षतः नहीं रख पाता तो वह उन्हें व्यंग्य के माध्यम से साहित्य को समर्पित करता है। व्यंग्य व्यंजनात्मक भाषा का प्रयोग करता है। व्यंग्य में प्रत्यक्षतः जो कहा गया है, वही उसका अर्थ नहीं होता। वह कुछ अन्य बात व्यंजित करता है। समझदार उसे समझ लेता है। अहंकार में डूबा पाखंडी व्यक्ति अक्सर उसे समझ ही नहीं पाता। व्यंग्य की इसी शक्ति का फ़ायदा उठाकर श्रीलाल शुक्ल, सरकारी सेवा में रहते हुए भी ''राग-दरबारी'' लिख सके। दांते की 'डिवाईन कामेडी' मध्य कालीन व्यंग्य का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इंग्लेंड की तत्कालीन व्यवस्था जिसमे आलोचना के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी, का डिवाईन-कामेडी जम कर मज़ाक उड़ा सकी। साहित्य में व्यंग्य वैचारिक स्वतंत्रता का द्योतक है। जब वैचारिक स्वतंत्रता नहीं होता, बड़े यत्न पूर्वक, साहित्यिकता की रक्षा करते हुए, साहित्यकार व्यंग्य परोसता है। लेकिन जिस समाज में वैचारिक स्वतंत्रता है, वहां अक्सर व्यंग्य साहित्यकार व्यंग का दुरुपयोग करता भी मिल सकता है। वह पूरी तरह स्वच्छंद होकर शालीन व्यंग्य की बजाय गाली गलौज पर उतर आता है। बस चले तो शायद मारने-पीटने भी लग जाए। तर्क उसका लाजवाब है। जब समाज में गाली-गलौज मारपीट होती ही है तो हम तो केवल उसका चित्रण ही कर रहे हैं - साहित्य समाज का दर्पण जो ठहरा! वह भूल जाता है कि समाज के इसी विद्रूप की आलोचना के लिए तो व्यंग किया जाता है ना कि साहित्य में उसे प्रश्रय देने के लिए। व्यंग्य समाज की विसंगतियों का बेशक आईना है, लेकिन इस आईने को ही विसंगत करने के लिए साहित्यिक व्यंग्य नहीं होता। व्यंग्य के साथ अक्सर ''हास्य'' और ''विनोद'' जुड़ा रहता है। हम व्यंग्य-विनोद और हास्य-व्यंग्य जैसे पदों का इस्तेमाल भी करते हैं। ये शब्द समूह स्पष्ट: घोषणा करते हैं कि व्यंग्य केवल व्यंग्य नहीं होता, व्यंग्य की कटुता को दूर करने के लिए विनोद और हास्य की थोड़ी बहुत आवश्यकता रहती है। लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं

है कि हास्य व्यंग्य को कुंठित कर दे। कितना व्यंग्य और कितना हास्य-लेखक को यह तय कर पाना अक्सर मुश्किल हो जाता है। लेकिन इसी अनुपात को ठीक ठीक बरतने में ही व्यंग्य लेकर की प्रतिभा झलकती है। मुझे आज तक ऐसा कोई व्यंग्य लेखक नहीं मिला जिसमे हास्य का पूरी तरह अभाव हो। लेखन में पूरी तरह से हास्य बेशक संभव है।

2.3.3.3 व्यंग्य के तत्त्व :

व्यंग्य साहित्य का एक ऐसा तत्त्व है जिसका इस्तेमाल बदलाव लाने के लिए किया जाता है। व्यंग्य के कई प्रकार इस्तेमाल किए जा सकते हैं, जिनमें से प्रत्येक का एक खास उद्देश्य होता है। व्यंग्य का उपयोग किसी व्यक्ति या चीज़ को किसी विशेष तरीके से उजागर करने और/या आलोचना करने के लिए किया जाता है। यह किसी व्यक्ति, विचार या संस्था का मज़ाक उड़ाता है। या अक्सर किसी को शिक्षित करने, सूचित करने या सोचने के लिए हास्य के साथ ऐसा करता है। राजनीतिक कार्टून व्यंग्य का एक उदाहरण हैं। व्यंग्य में निम्नलिखित चार तत्त्वों में से एक या अधिक का उपयोग किया जाता है:

अतिशयोक्ति : किसी खास बात को स्पष्ट करने के उद्देश्य से हास्यास्पदता की हद तक बढ़ा-बढ़ाकर बताना। अतिशयोक्ति के तत्त्व वाले व्यंग्य का एक उदाहरण राजनीतिक कार्टून में कैरिकेचर होगा। अक्सर किसी बात को स्पष्ट करने या हास्य पैदा करने के लिए किसी शारीरिक विशेषता को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जाता है।

2. असंगति : किसी ऐसी चीज़ या व्यक्ति को प्रस्तुत करना जो किसी स्थिति में अनुपयुक्त हो या किसी ऐसी चीज़ को प्रस्तुत करना जो संदर्भ के अनुसार अप्रत्याशित हो। असंगति के तत्त्व के साथ व्यंग्य का एक उदाहरण एक रोडरनर होगा जो लगातार एक कोयोट को मात देता है।

3. उलटफेर : किसी स्थिति में जो सामान्य होगा उसके विपरीत प्रस्तुत करना। उलटफेर के तत्त्व के साथ व्यंग्य का एक उदाहरण एक बच्चा होगा जो माता-पिता के लिए निर्णय लेता है जैसा कि हम अक्सर आधुनिक स्थिति कॉमेडी में देखते हैं।

4. पैरोडी : किसी व्यक्ति या विचार का मज़ाक उड़ाना, जिसका उद्देश्य हास्य या कोई बात करना हो। पैरोडी के तत्त्व वाले व्यंग्य के उदाहरणों में सैटरडे नाइट लाइव के राजनीतिक नाटक शामिल हैं।

5. व्यंग्य : किसी के शाब्दिक अर्थ के विपरीत प्रस्तुत करना, आमतौर पर जोरदार प्रभाव या हास्य के उद्देश्य से। इसका उपयोग दिखावे और वास्तविकता के बीच अंतर दिखाने के लिए किया जा सकता है। व्यंग्य के तत्त्व के साथ व्यंग्य का एक उदाहरण होगा जब कोई व्यक्ति कहता है, ''हमारे यहाँ मौसम बहुत अच्छा है,'' जब तेज़ हवाओं के साथ बारिश हो रही हो।

6. व्यंग्य : मज़ाक उड़ाने या अवमानना व्यक्त करने के लिए व्यंग्य का इस्तेमाल करना। व्यंग्य के इस तत्त्व का इस्तेमाल अक्सर चिढ़ दिखाने या उपहास करने के लिए किया जाता है। व्यंग्य के तत्त्व वाले व्यंग्य का एक उदाहरण यह होता कि कोई कहे, ''अच्छा, वह बॉक्स में सबसे चमकीला क्रेयॉन नहीं है।''

2.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) कथा साहित्य के दो प्रमुख प्रकार .... है।

अ) एकांकी और नाटक ब) निबंध और कहानी

क) कहानी और उपन्यास ड) उपन्यास और नाटक

2) कथोपकथन के अर्थ में अन्य शब्द .... आते हैं।

अ) कथोपकथन, संवाद, बातचीत ब) कथोपकथन, संवाद, बोलना

क) संवाद, वार्तालाप, बातचीत ड) संवाद, कथोपकथन, विवाद

3) उपन्यास विधा की अनुजा .... विधा को कहा जाता है।

अ) कहानी ब) नाटक क) एकांकी ड) डायरी

4) गल्पसाहित्य को आधुनिकतम रूप प्रदान करनेवाले अमरिका के सुप्रसिद्ध साहित्यकार .... है।

अ) हेनरी ब) बनार्ड शॉ क) फ्रॉईड ड) एडगर एलिन

5) आधुनिक युग की सर्वाधिक प्रसिद्ध विधा .... है।

अ) कहानी ब) उपन्यास क) नाटक ड) निबंध

6) आधुनिक काल में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी साहित्य से सर्वप्रथम .... साहित्य में प्राप्त होता है।

अ) मराठी ब) गुजराती क) बंगला ड) हिंदी

7) बंगाल की पत्रिका .... में 'उपन्यास' शब्द का प्रथम प्रयोग किया गया।

अ) हंस ब) दर्पण क) बंगदर्शन ड) भारत

8) उपन्यास के लिए अंग्रेजी शब्द .... का प्रयोग किया जाता है।

अ) वन ॲक्ट प्ले ब) ड्रामा क) मानोलॉग ड) नॉवेल

9) हिंदी साहित्य में उपन्यास सम्राट .... को कहा जाता है।

अ) बालकृष्ण भट्ट ब) भारतेंदू क) प्रेमचंद ड) जयशंकर प्रसाद

10) उपन्यास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व............... है।

अ) कथावस्तु ब) संवाद क) देश–काल वातावरण ड) उद्देश्ङ्ग

11) उपन्यास में चित्रित चित्रण सामान्यत: .... प्रकार के होते है।

अ) पाँच ब) चार क) तीन ड) छ:

12) उपन्यास में कथोपकथन द्वारा .... विशेषता दृष्टव्य होती है।

अ) एक ब) दो क) चार ड) तीन

13) आत्मकथात्मक शैली में लेखक .... को प्रस्तुत करता है।

अ) दूसरों को   ब) पात्रों को   क) आपबीती   ड) समाज

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. संकलन त्रय - स्थल, काल और कार्य की एकता अथवा अन्विती।
2. एकायामिता - एक आयाम होना।
3. विधा - प्रकार / भेद
4. शैली - पद्धति
5. कथोपकथन - पात्रों की आपसी बातचीत, संवाद
6. मितव्ययता - कम शब्दों में सांकेतिक बातों की अभिव्यक्ति

2.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. कहानी और उपन्यास
2. संवाद, वार्तालाप, बातचीत
3. कहानी
4. एडगर एलिन
5. उपन्यास
6. बंगला
7. बंगदर्शन
8. नॉवेल
9. प्रेमचंद
10. कथावस्तु
11. तीन
12. चार
13. आपबीती

2.7 सारांश :

- संघर्ष और नाटकीयता नाट्य विधा का प्राण है। इसलिए एकांकी नाटक में भी कार्यारंभ और कार्य की समाप्ति में बहुत कम अंतर होता है।
- प्राचीन भारतीय साहित्य में कहानी का मूलरूप, कथा, आख्यान, उपख्यान तथा आख्यायिका के रूप में दिखाई देता है।
- गल्प साहित्य (कहानी) को आधुनिक रूप प्रदान करने का श्रेय पाश्चात्य साहित्यकार एडगर एलिन पो को चला जाता है।
- उपन्यास बृहत आकार की गद्यविधा है। जिसमें मानव जीवन की सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों को यथार्थ और कल्पना के मिश्रण से कलापूर्ण कथात्मकरूप में अभिव्यक्त किया जाता है। जिसके लिए उपन्यासकार दो विधियाँ अपनाया है। 1) प्रत्यक्षविधी और 2) अप्रत्यक्षविधी।
- पाश्चात्य आधार पर उपन्यास के छः तत्त्व है। 1) कथावस्तु, 2) पात्र तथा चरित्र-चित्रण, 3) कथोपकथन या संवाद, 4) देशकाल वातावरण, 5) भाषाशैली, 6) उद्देश्य।

- उपन्यास कथावस्तु वर्णित घटनाओं का वह संग्रह है जिस पर उपन्यास का ढाँचा खडा होता है, जिसके द्वारा उपन्यासकार के विचार सामुहिक रूप में अभिव्यक्त होते हैं।
- उपन्यास में चित्रित घटनाएँ जिनसे संबंधित होती है या जिनको लेकर उन घटनाओं का घटित होना दिखाया जाता है – वे पात्र कहलाते हैं।

2.8 स्वाध्याय :

1) उपन्यास का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2) उपन्यास के तत्त्वों का परिचय चित्रण।
3) नाटक का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
4) नाटक के पाश्चात्य तत्त्व स्पष्ट कीजिए।
5) व्यंग्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
6) व्यंग्य के तत्त्वों का परिचय दीजिए।

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

- जयशंकर प्रसाद की 'चंद्रगुप्त नाटक' पढकर उसमें चित्रित सामाजिक समस्याओं को जानने की कोशिश करे।
- प्रेमचंद्र जी की 'गोदान' उपन्यास पढकर उपन्यास के तत्त्वों के आधार पर उसकी आलोचना लिखने की कोशिश करे।
- हरिशंकर परसाई जी का 'व्यंग्य' उपन्यास पढकर भारतीय समाज में नारी की स्थिति पर चर्चा किजिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) साहित्य विवेचन – क्षेमचंद्र 'सुमन' योगेंद्रकुमार मल्लिक
2) साहित्यशास्त्र – डॉ. नारायण शर्मा
3) काव्यशास्त्र – डॉ. भगीरथ मिश्र
4) हिंदी एकांकी और एकांकीकार : डॉ. रमा सूद
5) हिंदी एकांकी – सत्येंद्र
6) कहानी और कहानीकार – प्रो. जिज्ञासू मोहनलाल
7) हिंदी उपन्यास कला – डॉ. प्रताप नारायण टंडन

❑❑❑

इकाई –3

संस्मरण, साक्षात्कार, रितोर्पाज

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय–विवेचन

3.3.1 संस्मरण

3.3.1.1 स्वरूप

3.3.1.2 विशेषताएँ

3.3.2 साक्षात्कार

3.3.2.1 स्वरूप

3.3.2.2 विशेषताएँ

3.3.3 रिपोर्ताज

3.3.3.1 स्वरूप

3.3.3.2 विशेषताएँ

3.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.6 सारांश

3.7 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

1. संस्मरण नामक साहित्यिक लेखन प्रकार के बारें में जानेंगे।
2. संस्मरण के विशिष्ट शैली को समझ सकेंगे।
3. साक्षात्कार के द्वारा विभिन्न कालखंडों की समस्याओं से परिचित होंगे।

4. साक्षात्कार की विभिन्न लेखन शैलियों से परिचित हो जायेंगे।

5. हिंदी साक्षात्कार साहित्य का परिचय प्राप्त होगा।

6. रिपोर्ताज लेखन के लिए प्रवृत्त होंगे।

3.2 प्रस्तावना

प्राचीन काल से साहित्य लिखा जा रहा है। प्राचीन काल के साहित्य में पद्य की अधिकता देखने को मिलती है। लेकिन आधुनिक काल की विविध परिस्थितियों – सामाजिक, राजकीय, सांस्कृतिक आदि के कारण हिंदी गद्य साहित्य का विकास होता हुआ दिखाई देता है। पत्र–पत्रिका के माध्यम से भी हिंदी गद्य का विकास हुआ है। हिंदी गद्य साहित्य के विकास में अनेक लेखकों का योगदान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इन्होंने गद्य में मौलिक साहित्य का निर्माण किया है। उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण में भारतेंदु हरिश्चंद्र का कार्यकाल आता है। उसके पश्चात् महावीर प्रसाद द्विवेदी, तत्पश्चात आचार्य शुक्ल का कार्यकाल आता है। भारतेंदु के समय याने भारतेंदु युग में भाषा का कोई परिमार्जन नहीं हुआ था। भाषा की निश्चित शैली भी तय नहीं हुई थी। इस काल में दो धाराएँ दिखाई देती हैं –

1) सामान्य लोगों की बोलचाल की भाषा को प्रधानता देनेवाली।

2) शुद्ध हिंदी को अपनानेवाली।

भारतेंदु ने दो धाराओं का समन्वय किया। महावीर प्रसाद के कार्यकाल में याने द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता की भावना बढ़ गई। अंग्रेजों के प्रति असंतोष निर्माण हुआ, स्वाधीनता की प्रेरणा निर्माण हुई। इस युग में अनेक विधा में साहित्य सृजना हुई। तत्पश्चात आ. रामचंद्र शुक्ल का समय जो 'शुक्ल युग' नाम से जाना जाता है। इस युग में बौद्धिकता का विकास हुआ। शुक्ल युग के पश्चात गद्य विधा का विकास शीघ्र गति से हुआ। छायावादी युग में भावना और विचार की प्रधानता दिखाई देती है। इस प्रकार गद्य विधा का विकास होता हुआ दिखाई देता है। संस्मरण, साक्षात्कार, रिपोर्ताज आदि आधुनिक काल की महत्त्वपूर्ण विधाएँ हैं। इन विभिन्न विधाओं की परिभाषाएँ, तत्त्व, प्रकार आदि की दृष्टि से हम प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करेंगे।

3.3 विषय–विवेचन

यहाँ आधुनिक काल की महत्त्वपूर्ण गद्य विधाओं का विषय–विवेचन प्रस्तुत है –

3.3.1 संस्मरण

3.3.1.1 संस्मरण – स्वरूप

संस्मरण आधुनिक हिंदी गद्य की एक महत्त्वपूर्ण, नूतन एवं रोचक विधा मानी जाती है। संस्मरण और रेखाचित्र में कुछ बातों को लेकर परस्पर भिन्नता प्रतीत होती है। परंतु संस्मरण एक प्रकार का रेखाचित्र ही है। संस्मरण में लेखक आत्मनिष्ठ अधिक होता है। इसमें 'स्व' की भावना अधिक रहती है। इसमें 'स्मृति'

की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसमें लेखक ने जो क्षण स्वयं भुगत लिए हैं, उन्हीं का चित्रण किया जाता है। इसमें अपने प्रिय व्यक्ति के जीवन में होनेवाली रोचक घटनाओं का चित्रण किया जाता है। संस्मरण के अंतर्गत बहुधा लेखक का वैयक्तिक जीवन या वैयक्तिक संपर्क में आए हुए व्यक्तियों का जीवन होता है। संस्मरण में जीवन के अंश रूप को चित्रित किया जाता है।

'संस्मरण' शब्द सम + स्मरण इन दो शब्दों के मेल से बना है जिसका अर्थ है, सम्यक् स्मरण। अत: संस्मरण का अर्थ हुआ किसी व्यक्ति के संबंध में रमणीय घटनाओं का उल्लेख। संस्मरण के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'मेमायर्स' (Memoirs) है। संस्मरण में लेखक प्रत्यक्षदर्शी रहता है। वह जिन दृश्यों, घटनाओं, व्यक्तियों से प्रभावित होता है, कालान्तर में उन्हें अपनी स्मृति के आधार पर कलात्मक ढंग से लिखता है। इसमें इतिहास और सत्यता होती है साथ ही कल्पना का अंश भी रहता है। संस्मरण बहुधा परिचित और असाधारण व्यक्ति के असाधारण व्यक्तित्त्व पर आधारित होता है।

संस्मरण की परिभाषा करने का प्रयास कई विद्वानों ने किया है। संस्मरण की महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ इस प्रकार हैं -

* **बृहद हिंदी कोश** - ''स्मृति के आधार पर किसी व्यक्ति या विषय के संबंध में लिखित लेख को संस्मरण माना जाता है।''
* **डॉ. गोविंद त्रिगुणायत** - ''भावुक कलाकार जब अतीत की अनंत स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अतिरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त कर देता है, तब उसे संस्मरण कहते है।''
* **ओमप्रकाश शास्त्री** - संस्मरण में व्यक्तित्व के साथ-साथ प्रतिभा तथा यथार्थता की अनिवार्यता को स्वीकारते हुए कहते हैं कि ''अतीत की अनंत घटनाओं में से कलाकार अधिक स्मरणीय और अधिक रमणीय को चुन संस्मरण लिखता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर संस्मरण की निम्न विशेषताएँ बताई जा सकती हैं -

* संस्मरण में स्मृति के आधार पर अतीत को चित्रित किया जाता है।
* संस्मरण में इतिहास, सत्यता और कल्पना का समन्वय होता है।
* इसमें आपबीती या अनुभवों का चित्रात्मक कथन किया जाता है।
* संस्मरण लेखन में भाव, राग और संवेदना की त्रिवेणी होती है।

संस्मरण के तत्त्व

संस्मरण के स्वरूप को समझने के लिए संस्मरण के तत्त्वों का अध्ययन करना आवश्यक है। संस्मरण के निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं -

1. वर्ण्य विषय –

संस्मरणकर्ता अपने युग से प्रभावित होता है। वह अपने समय के इतिहास को व्यक्त करना चाहता है। इतिहासकार और संस्मरणकर्ता दोनों की दृष्टि एक दूसरे से अलग होती है। इतिहासकार वस्तुपरक दृष्टि से अपना अध्ययन प्रस्तुत करता है और संस्मरणकर्ता स्वयं के अनुभव ही संस्मरण में चित्रित करता है। इतिहासकार तटस्थ होकर लिखता है, लेकिन संस्मरणकर्ता अपने मन के भावों को भी चित्रित करता है। कोई व्यक्ति, घटना या यात्रा–प्रसंग को संस्मरणकर्ता अपना वर्ण्य–विषय बना सकता है।

2. यथार्थ का चित्रण –

संस्मरण में यथार्थ चित्रण महत्त्वपूर्ण होता है। यथार्थ का चित्रण भावना की गहनता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। व्यक्ति से अधिक वर्णित घटना अथवा व्यवहार को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करना ही संस्मरण लेखक का ध्येय होता है। लेखक संस्मरण में किसी महत्त्वपूर्ण विषय को चित्रित करता है तथा जो अज्ञात तथ्य हैं, उन्हीं का साक्षात्कार करता है। संस्मरण में जिस अंश का चित्रण किया जाता है वह लेखक के जीवनादर्श का सूचक होता है।

3. पात्र एवं चरित्रचित्रण –

यह संस्मरण का महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है। संस्मरण में लेखक तथा जिस व्यक्ति को लेकर संस्मरण लिखा जाता है वह व्यक्ति दोनों महत्त्वपूर्ण होते हैं। संस्मरण सामान्य व्यक्ति तथा महान व्यक्ति पर भी लिखा जाता है। सामान्य व्यक्ति महान व्यक्ति का संस्मरण लिख सकता है और महान व्यक्ति भी सामान्य व्यक्ति को लेकर संस्मरण लिख सकता है। महान व्यक्तियों में – सामाजिक कार्यकर्ता, नेता, राजनीतिज्ञ लोग, समाजसुधाकर का समावेश हो सकता है। महात्मा गांधी, विनोबाजी, पं. नेहरू पर संस्मरण लिखे गए हैं। सामान्य व्यक्तियों में समाज के मध्य, निम्न वर्ग के पात्र आ सकते हैं। लेकिन अधिकतर संस्मरण महान व्यक्तियों के महान व्यक्तित्त्व पर ही लिखे जाते हैं।

4. देशकाल –

साहित्यकार अपनी तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होता है। राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव उस पर होता है। इसीकारण वह जिस काल के पात्र को लेकर लिखता है, उस काल की युगीन परिस्थितियों का प्रभाव उसके साहित्य पर दिखाई देता है। युग का अपना एक प्रभाव होता है। इससे पात्र कार्यान्वित होते हैं। चरित्र का प्रेरणा स्थल तत्कालीन युग होता है। युग को प्रभावित करने का काम भी चरित्र ही करता है।

5. उद्देश्य –

प्रारंभ में साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन था, लेकिन आज मनोरंजन के साथ ज्ञान प्राप्ति भी साहित्य का उद्देश्य माना जाता है। संस्मरण में चित्रित व्यक्ति के गुणों पर प्रकाश डालना तथा इन गुणों से पाठक को एक प्रकार की प्रेरणा देना, जो जीवन सफल बनाने में सहायक होती है; संस्मरण का उद्देश्य

होता है। सामान्यत: समाज में महान व्यक्ति के प्रति श्रध्दा उत्पन्न करना ही संस्मरण का प्रमुख उद्देश्य होता है।

6. शैली –

संस्मरण लेखन की अनेक शैलियाँ हैं। विद्वानों के मतानुसार निम्नलिखित शैलियाँ महत्त्वपूर्ण हैं–

1. आत्मकथात्मक शैली
2. निबंधात्मक शैली
3. पत्रात्मक शैली
4. डायरी शैली

संस्मरण के प्रकार

संस्मरण में व्यक्ति के जीवन का चित्रण किया जाता है। व्यक्ति के जीवन को नई दिशा देनेवाले प्रसंग का चित्रण संस्मरण में किया जाता है। संस्मरण के विषय का चुनाव जिस क्षेत्र से किया जाता है उसी के आधार पर संस्मरण के निम्न भेद माने जाते हैं –

1. सामान्य व्यक्तियों के संस्मरण
2. महान नेताओं के संस्मरण
3. साहित्यकारों के संस्मरण
4. देशप्रेमियों के संस्मरण
5. पत्रकारों के संस्मरण
6. राजनीतिज्ञों के संस्मरण।

3.3.1.2 संस्मरण की विशेषताएँ

संस्मरण की विशेषताओं पर विचार करते समय, कथा की शैली को सबसे पहले ध्यान में रखना चाहिए। संस्मरण लगभग विशेष रुप से प्रथम–व्यक्ति दृष्टिकोण से लिखे जाते हैं। इसका मतलब है कि यह एकवचन सर्वनाम परिप्रेक्ष्य से आता है। कहानी ''आप'' या ''हम'' के बजाय ''मैं'' की कथा से आती है। संस्मरण लिखते समय विचार करने के लिए यहाँ कुछ अतिरिक्त विशेषताएँ दी गई हैं।

1. इसका एक विशिष्ट फोकस है।

संस्मरण वस्तुत: किसी भी चीज पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। कई लोग विशिष्ट रिश्तों या घटनाओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं जो घटित हुई हैं, लेकिन वास्तव में ऐसा कोई नियम नहीं है जिसका पालन करने की आवशकता है। जब तक चर्चा की जा रही घटना या रिश्ते का महव स्पष्ट रुप से संप्रेषित किया जाता है ताकि अधिकांश पाठकों को एक सामान्य धारणा मिले, तब एक विशिष्ट फोकस प्राप्त हो जाएगा।

2. यह विषय को जीवंत बना देता है।

जब कोई व्यक्ति संस्मरण पढता है, तो उसे ऐसा महसूस होना चाहिए कि वह लेखक को व्यक्तिगत रुप से जानता है। यह व्यक्तिगत और सम्मोहक प्रकृति का होना चाहिए, जिसमें मुख्य विवरण शामिल हों जो केवल लेखक के दृष्टिकोण से ही आ सकते हैं। अजनबियों के बीच अजीब छोटी–मोटी बातचीत के

बजाय, कथा एक आरामदायक कहानी की तरह होनी चाहिए जो एक पति या पत्नी अपने महवपूर्ण दूसरे को सुनाते हैं।

3. इसमें एबीसी कहानी होनी चाहिए।

संस्मरणों को यादृच्छिक यादों के संग्रह से कहीं अधिक होना चाहिए। उनमें एक निश्चित कहानी होनी चाहिए, जिसका समग्र उद्देश पाठक को समझ में आ सके। ऐसा करने का सबसे आसान तरीका कहने के अइउ डिजाइन का पालन करना है। अ परिचय है। यह पाठक को बताता है कि कहानी से क्या अपेक्षा करनी है। इ कहानी का मुख्य भाग है, जहाँ परिचय में दिए गए सभी विवरण पूरे होते हैं। उ निष्कर्ष है, जो पहले पेश की गई सभी बातों को एक ऐसे पैकेज में समेटता है जो अच्छा और साफ-सुथरा है।

''संस्मरणों को यादृच्छिक यादों के संग्रह से कहीं अधिक होना चाहिए।

4. संस्मरण प्राय: सीमित प्रकृति के होते हैं।

संस्मरण जीवन का पूरा कालक्रम नहीं है - आत्मकथा इसी के लिए होती है। संस्मरण समय के विशिष्ट स्नैपशॉट के बारे में होते हैं जो पाठक को सबक देते हैं वे अत्याधिक वर्णनात्मक भी होते हैं, पाठक को प्रत्येक स्मृति या कहानी में सीधे ले जाते हैं जैसे कि वे वास्तव में वहां मौजूद हों, घटनाओं का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हों।

5. कहानी 100% **सटीकता से अधिक महवपूर्ण है।**

संस्मरण सुनाने का लाभ यह है कि कथा लेखक के व्यक्तिगत दृष्टिकोण से आती है। दो लोग किसी घटना को घटते हुए देख सकते हैं और उसे दो अलग-अलग तरीकों से याद कर सकते हैं। यही कारण है कि संस्मरण का विवरण, हालांकि महवपूर्ण है, प्रभावी होने के लिए बिल्कुल सटीक होने की आवशकता नहीं है। यहाँ लक्ष्य पाठक को इतिहास का पाठ देने के बजाय एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण देना है।

6. संस्मरण लेखन का स्वरुप जानबूझकर लिखा गया होता है।

एक संस्मरण में कोई भी अनावशक जानकारी नहीं होनी चाहिए। यदि आप इस बारे में संस्मरण लिख रहे हैं कि आप कैसे लेखक बने, तो इस बार में बात करना कि आपको अपने कुाों को टहलाना और पोकेमॉन गो खेलना कितना पसंद है, बहुत मायने नहीं रखता। दूसरी ओर, यदि आप एक लेखक के रुप में विचारों और रुपरेखाओं को विकसित करने के लिए अपने कुो को टहलाते हैं और पोकेमॉन गो खेलते हैं, तो इसे अपने संस्मरण में शामिल करना समझदारी होगी - जब तक कि लेखन पर जोर दिया जाए न कि आपके पोकेडेक्स में क्या है

7. संवाद पत्रकारितापूर्ण न होकर स्वाभाविक होना चाहिए।

संस्मरण लिखते समय यह सबसे कठिन विशेषता हो सकती है। याददाश्त के लिए विवरण सही करने की इच्छा होती है, इसलिए बातचीत पढते समय कथा एक अखबार के लेख की तरह लगती है। संवाद के

दौरान होने वाले विचारो और भावनाओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करने की कोशिश करें, जहाँ तक संभव हो क्रियाविशेषणों से दूर रहें, सर्वोम परिणामों के लिए। पाठकों को यह पता नही चलेगा कि संवाद पूरी तरह से सही है या अधिकांशत: सही है, जब तक कि वे चर्चा की जा रही बातचीत को न देख लें।

8. संस्मरण की गति धीमी होती है।

कई कहानियों को आगे बढने के लिए एक्शन की जरुरत होती है। यह जरुरी नही है कि संस्मरण के मामले में भी ऐसा ही हो यहाँ लक्ष्य विस्फोटों और मौत को चुनौती देने वाली परिस्थितियों से ज्यादा मनोरंजन के तौर पर सूचना हस्तांतरण पर है। अगर पाठक हर पल को उसी तरह जी सकता है जैसे लेखक ने उसे अनुभव किया है, तो यह एक सफल संस्मरण है।

संस्मरण की विशेषताओं में कालक्रम के बजाय कहानी सुनाना, व्याख्यानों के बजाय आमंत्रण और इतिहास के लंबे खंडो के बजाय क्षणिक झलकियाँ शामिल हैं। संस्मरण लिखते समय इन बातों को ध्यान में रखें और आप पाएंगे कि ऐसी कहानी बनाना बहुत आसान हो जाएगा जो पाठकों को सार्थक लगे ।

3.3.2.2 साक्षात्कार की विशेषताएँ

साक्षात्कार की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं

1. साक्षात्कार मे अनुसंधानकर्ता और सूचनादाता के बीच आमने–सामने के संबंध प्रत्यक्ष रुप से स्थापित होते है।
2. इस पद्धति के द्वारा अनुसंधान के लिए अनुसंधानकर्ता और सूचनादाता के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क का होना अनिवार्य हैं।
3. साक्षात्कार सामाजिक अनुसंधान की एक पद्धति है।
4. साक्षात्कार पद्धति द्वारा सामाजिक जीवन और सामाजिक घटनाओं के बारे मे जानकारी प्राप्त की जाती है।
5. यह जानकारी व्यक्तिगत सम्पर्क और वार्तालाप के द्वारा प्राप्त की जाती है।
6. इस वार्तालाप के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना जरुरी हैं।
7. साक्षात्कार मे इस वार्तालाप का एक विशेष उद्देश होता है।

3.3.3.2 रिपोर्ताज की विशेषताएँ

1. कथात्मक प्रस्तुति

रिपोर्ताज में एक या उससे अधिक घटनाओं का चित्रण होता है। घटनाओं को कथात्मक रुप में प्रस्तुत करना इस विधा की एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है। रिपोर्ताज में कोई न कोई कहानी अवश होती है। रिपोर्ताज को मर्मस्पर्शी बनाने में कथातत्व का योगदान महवपूर्ण होता है। ध्यान देने की बात यह है कि इसमें

वर्णित कहानी वास्तविक तो होती है लेकिन वह न तो किसी समस्या को उठाती है और न ही कोई समाधान प्रस्तुत करती है। बल्कि वह एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करती है जिसके द्वारा पाठक जीवन में चेतना भरने वाले मानवीय मूल्यों के संबंध में विचार करने लगता है।

2. ऐतिहासिकता

घटनाओं की प्रस्तुति द्वारा अपने युग के इतिहास को प्रस्तुत करने के कारण रिपोर्ताज का ऐतिहासिक महव भी कम नहीं है। इसमें किसी घटना के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक आयामों को कलात्मक रुप में प्रस्तुत किया जाता है। रिपोर्ताज में वर्णित घटना स्वयं लेखक द्वारा देखी गई होती है इसलिए वह उस घटना के सभी पहलुओं से अच्छी तरह अवगत होता है। लेखक घटनाचक्र में फँसे व्यक्ति की वीरता, साहस और संकल्प की ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करता है कि पाठक की संवेदना जाग उठती है। ऐसी घटना विशेष का सम्पूर्ण इतिहास रिपोर्ताज में निहित होता है, इसीलिए उसे अपने युग का जीवंत कलात्मक इतिहास माना जाता है।

3. चित्रात्मकता

चित्रात्मकता रिपोर्ताज की महवपूर्ण विशेषता है। इसी विशेषता के कारण रिपोर्ताज रेखाचित्र के निकट खडा हो जाता है। प्रभावूपर्ण चित्रों के रुप में छोटी-छोटी घटनाएँ आकार ग्रहण करती हैं और पाठक के मन में चित्र अंकित कर देती है। इस तरह समूची घटना चित्रपट की भाँति आँखों के सामने घूमने लगती है। भाव और संवेदना चित्रात्मकता को और अधिक सजीव एवं प्रभावशाली बना देते हैं।

4. विश्वसनीयता

घटनाओं का लेखक से साक्षात्कार होने के कारण रिपोर्ताज में विश्वसनीयता अधिक होती है। इसे प्रसंग-चित्र भी कहते हैं। किसी घटना, युद्ध, भूचाल अथवा मनोरंजक वृांत का रिपोर्ताज तैयार करते समय लेखक का अपना दृष्टिकोण प्रधान रहता है। एक साधारण समाचार को कलात्मक रुप देने से रिपोर्ताज की सृष्टि होती है, यह बहुत ही रोचक तथ्य है। इसमें एक महवपूर्ण बात यह है कि पाठक को रचना (रिपोर्ताज) से वह संतुष्टि या आनंद मिलना चाहिए जिसे घटना को देखते समय लेखक ने खुद महसूस किया हो। ऐसी अनुभूति रिपोर्ताज को विश्वसनीय बनाती है। कहना न होगा कि लेखक की सहदाता रिपोर्ताज को विश्वसनीय बनाने में महवपूर्ण भूमिका अदा करती है।

5. शैली

घटना की तत्कालीन प्रतिक्रिया के रुप में लिखे जाने कारण रिपोर्ताज की शैली सामान्यत: भावावेश-प्रधान होती है। इसके अलावा रिपोर्ताज निबंध शैली अथवा पत्र एवं डायरी शैलियों में भी लिखे जाते हैं। यह लेखक पर निर्भर करता है। जिस शैली में वह अपने को समर्थ रुप में अभिव्यक्त कर पाता है, उसी को वह अपना लेता है। असली चीज, है घटना की प्रामाणिक और आत्मीय अभिव्यक्ति। इसके आकार की कोई सीमा नहीं होती। यह गद्यगीत की तरह छोटा भी हो सकता है औरं कहानी-उपन्यास की तरह बडा भी।

लेखक की संवेदना का प्रसार ही इसकी सीमा का निर्धारण करता है। रितोर्ताज में आत्मकथा की भाँति व्यक्ति के जीवन-संघर्ष की भावनात्मक प्रस्तुति नहीं मिलती। यह एक बहिर्मुखी विधा है जो वाहा घटना पर आधारित होती है। इसकी सफलता परिस्थिति के सूक्ष्म अध्ययन एवं लेखकीय तल्लीनता में निहित रहती है।

3.3.2 साक्षात्कार

3.3.2.1 स्वरूप

जिज्ञासा मानव की सहज वृत्ति है। वह बाह्य-सृष्टि के विषय तथा अन्तर्जगत् के विषय को जान लेना चाहता है। मनुष्य दूसरे के अनुभवों का लाभ उठाना चाहता है तथा अपने अन्तर्जगत् को उद्‌घाटित करना चाहता है। वैचारिक आदान-प्रदान में उसे तृप्ति मिलती है। दूसरों को जानने और स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए मनुष्य ने अनेक साधनों का अवलंब किया है। साक्षात्कार इनमें से एक है। साक्षात्कार गद्य की एक नवविकसित, स्वतंत्र और महत्त्वपूर्ण विधा है।

साक्षात्कार के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त है - भेंटवार्ता, बातचीत आदि। साक्षात्कार के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द Interview है। इण्टरव्यू शब्द 'इण्टर' तथा 'व्यू' इन दो शब्दों से मिलकर बना है। 'इण्टर' उपसर्ग है। 'व्यू' हा अर्थ देखना, परीक्षण, निरीक्षण है। इण्टरव्यू लेने वाले को **'इन्टरव्युकार'** और इण्टरव्यू देने वाले को **'इण्टरव्यू-पात्र' (लक्ष्य व्यक्ति)** कहा जाता है।

परिभाषा

साक्षात्कार की परिभाषा करने का प्रयास कई विद्‌वानों ने किया है। उनमें से महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं -

1. **डॉ. गोविंद त्रिगुणायत** - ''इण्टरव्यू उस रचना को कहते हैं जिसमें लेखक किसी व्यक्ति-विशेष से प्रथम भेंट में अनुभव होनेवाली उसके संबंध में अपनी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को अपनी पूर्व-धारणाओं और आस्थाओं एवं रूचियों से रंजित कर सरस, भावपूर्ण ढंग से व्यंजना-प्रधान शैली में बंधे हुए शब्दों में व्यक्त करता है।''

2. **डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त** - ''प्रत्यक्ष वार्ता में व्यक्ति की चर्चा को महत्त्व दिया जाता है। लेखक के मन में वार्ता के समय जो विचार या भावनाएँ उठीं, जो उसकी धारणा बनी, जो भी वार्ता हुई, उसी का चित्रण उसमें दिया जाता है।''

3. **डॉ. नगेन्द्र** -''इण्टरव्यू से अभिप्राय उस रचना से है, जिसमें लेखक व्यक्ति-विशेष के साथ साक्षात्कार करने के बाद प्राय: किसी निश्चित प्रश्नमाला के आधार पर उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के संबंध में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करता है और अपने मन पर पडे प्रभाव को लिपिबद्‌ध कर डालता है।''

4. **डॉ. सत्येन्द्र** - ''इण्टरव्यू में किसी व्यक्ति से मिलकर किसी विशेष दृष्टि से प्रश्न पूछे जाते हैं। इसमें इण्टरव्यू लेखक जीवन का पुट देता है और उत्तरों के द्‌वारा-इण्टरव्यू के द्‌वारा नायक के बाह्य के साथ आंतरिक स्वरूप का विशेष अध्ययन भी हो जाता है।''

साक्षात्कार के तत्त्व

1. **संवाद –** संवाद इण्टरव्यू का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। बिना संवाद इण्टरव्यू नहीं लिया जा सकता। संवाद से इण्टरव्यू-पात्र व्यक्ति के विचारों को निकलवाया जाता है और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की जाती है। इण्टरव्यू में संवाद का महत्त्व देखकर श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने इण्टरव्यू को **'संवाद–विधा'** कहा है।

2. **भाषा –** 'भाषा' यह भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है। इण्टरव्यू की भाषा जन-भाषा होना आवश्यक है। सामान्य-पात्र की भाषा को दुरूह बना देने से इण्टरव्यू की स्वाभाविकता तथा रस नष्ट हो जाता है। ऐसा इण्टरव्यू सफल नहीं हो जाता। इण्टरव्यू-पात्र जिस प्रकार की भाषा बोलता है, वैसी ही भाषा उसके कथनों में आनी चाहिए।

3. **व्यक्तित्व–चित्रण –** यह भी इण्टरव्यू का महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है। जिस व्यक्ति का इण्टरव्यू लिया जाता है उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का चित्रण इसमें अपेक्षित होता है। प्राय: इण्टरव्यूकार पात्र के बाह्य-व्यक्तित्व को रेखाचित्र-सा खींच देते हैं। यह परंपरा अभी तक चली आ रही है।

4. **देशकाल–वातावरण –** इण्टरव्यू में देशकाल-वातावरण का अंकन आवश्यक होता है। इण्टरव्यू का पात्र जिस देश-काल वातावरण में होता है, उसका चित्रण आवश्यक होता है। साथ ही पात्र की अवस्था, मन:स्थिति का चित्रण भी सूक्ष्मता और सजीवता के साथ करना आवश्यक है। उससे ही इण्टरव्यू को सजीवता प्राप्त होती है।

5. **पात्र की भाव–भंगिमाओं का अंकन –** इण्टरव्यू में पात्र की भाव-भंगिमाओं का अंकन महत्त्वपूर्ण होता है। प्रश्न की प्रतिक्रियाओं का भी समावेश किया जाता है। जब उत्तर समाप्त होता है, उत्तर के पर्यवसान पर कुछ भाव मुख पर अंकित रह जाते हैं। उनका अंकन भी इण्टरव्यू में उपयोगी होता है। इण्टरव्यूकार को इसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है।

6. **शैली –** इण्टरव्यू में इण्टरव्यूकार शैली पर अवश्य ध्यान देता है। कहाँ प्रश्नोत्तर दिये जायें, कहाँ विचार-विमर्श,कहाँ परिचयात्मक और आलोचनात्मक टिप्पणी, तो कहाँ देश-काल वातावरण आदि का वर्णन। इन सब का शैली के अंतर्गत विचार करना आवश्यक है। शैली में लेखक का व्यक्तित्व समाविष्ट रहता है। इण्टरव्यू की शैली में हास्य-विनोद को भी विशेष स्थान रखना होता है। शैली यह एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

7. **टिप्पणी –** इण्टरव्यू लिखते समय इण्टरव्यूकार स्थान-स्थान पर टिप्पणी देता जाता है। ये टिप्पणियाँ इण्टरव्यू के विकास, रोचकता तथा महत्त्व-वृद्धि में सहायक रहती हैं। टिप्पणी के द्वारा ही वह पात्रों का वर्णन करता है। वार्ता के घात-प्रतिघातों की व्याख्या करता है।

8. **उद्देश्य –** साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति इण्टरव्यू उद्देश्यपूर्ण विधा है। यह इण्टरव्यू का अपरिहार्य तत्त्व है। इसमें संबंधित व्यक्ति के व्यक्तित्व का उद्घाटन किया जाता है। इण्टरव्यू मनबहलाव के

लिए नहीं होता, बल्कि अज्ञात को ज्ञात बनाना इण्टरव्यू का उद्देश्य होता है। आन्तरिक विश्लेषण, विचारों का विवेचन करना भी इण्टरव्यू का उद्देश्य है।

9. **प्रभाव –** व्यक्तित्व का प्रभाव अनेक रूपों में पडता है। प्रभाव के सभी रूपों का चित्रण करना भी कला है। इस कला में वस्तुत: अपने-आपका चित्र इण्टरव्यूकार खींचता है। उस चित्र का मूल कारण लक्ष्य व्यक्तित्व होता है। इण्टरव्यूकार को प्रभाव का चित्रण करना तीन कारणों से अभीष्ट है –

1) इससे लक्ष्य-व्यक्ति की शक्ति प्रकट हो जाती है।

2) उन विशेषताओं का उद्घाटन हो जाता है जो लक्ष्य-व्यक्तित्व के मूल में हैं।

3) इण्टरव्यू की कला में सजीवता आ जाती है।

इण्टरव्यू के कारण इण्टरव्यू पात्र व्यक्ति के व्यक्तित्व, कृतित्व और विचारों का जो प्रभाव इण्टरव्यूकार पर पडता है, उसकी अभिव्यक्ति वह वार्तालाप में करता है।

10. **उपयोगिता –** इण्टरव्यू में उपयोगिता का होना आवश्यक है। ज्ञानप्राप्ति करना इसका उद्देश्य है। इसके द्वारा नवीन साहित्यकार अथवा महत्त्वपूर्ण, विशेष व्यक्ति के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त हो जाती है। इसके द्वारा पात्रों के जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व, रहन-सहन, प्रेरणा, रूचि, विचार आदि के विषय में उपयोगी सामग्री प्राप्त हो जाती है।

11. **अभिव्यक्ति –** 'अभिव्यक्ति' इण्टरव्यू का आवश्यक तत्त्व है। इण्टरव्यू-पात्र व्यक्ति से अपेक्षित जानकारी प्राप्त की या नहीं, इण्टरव्यूकार ने स्वयं अपने पक्ष को ठीक प्रकार से प्रस्तुत किया या नहीं, यह सब देखना सफलता के लिए अपेक्षित है। यदि अभिव्यक्ति सफल है, तो इण्टरव्यू भी सफल है।

साक्षात्कार के प्रकार

अनेक आधारों पर साक्षात्कार के निम्न भेद माने जाते हैं –

1. **स्वरूप के आधार पर –**

   1) विषयनिष्ठ, 2) व्यक्तिनिष्ठ।

2. **शैली के आधार पर –**

   1) विवरणात्मक, 2) वर्णनात्मक, 3) विचारात्मक, 4) प्रभावात्मक,

   5) हास्य व्यंग्यात्मक, 6) भावात्मक, 7) प्रश्न उत्तरात्मक।

3. **औपचारिकता के आधार पर –**

   १) औपचारिक, २) अनौपचारिक।

4. **संपर्क के आधार पर –**

   1) प्रत्यक्ष भेंट द्वारा, 2) पत्र व्यवहार द्वारा,

   3) फोन-वार्ता, 4) काल्पनिक।

5. **आकार के आधार पर –**

1) लघु, 2) दीर्घ ।

6. **विषय के आधार पर –**

1) साहित्यिक, 2) साहित्येतर ।

7. **पात्रों के आधार पर –**

1) विशिष्ट अथवा उच्च पात्र, 2) साधारण अथवा निम्न पात्र।

8. **प्रकाशन – प्रसारण के आधार पर –**

1) प्रकाशित, 2) प्रसारित ।

3.3.3 रिपोर्ताज

3.3.3.1 रिपोर्ताज : स्वरूप, परिभाषा

रिपोर्ताज पत्रकारिता से संबंधित विषय है। द्‌वितीय महासमर के समय यह स्वतंत्र विधा के रूप में जाना जाने लगा। यह गद्य की साहित्यिक विधा है। इसे साहित्यिक महत्त्व है। सभी देशों में इस विधा के विकास के बारे में प्रयास किए जा रहे हैं। साहित्य और पत्रकारिता का मधुर संबंध है। रिपोर्ताज पत्रकारिता से संबंधित साहित्य की एक नई और महत्त्वपूर्ण विधा है। रिपोर्ताज पत्रकारिता से जुड़ी विधा है, फिर भी वह जीवनी परक विधाओं से समांतर है। रिपोर्ताज में घटनाओं का वर्णन, विवरण और विश्लेषण होता है। इसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य को जोडा जाता है, साथ ही गद्य-पद्य का प्रचुर समावेश होता है। इसमें उपदेश नहीं होता। छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि पाठक इसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। रिपोर्ताज लघु विधा है। इसमें व्यापक आशय की अभिव्यक्ति नहीं होती। युद्ध-वर्णनों में इस विधा का मुक्त रूप से उन्मेषण देखा जा सकता है।

रिपोर्ताज की परिभाषा करने का प्रयास कई विद्‌वानों ने किया है। इनमें से महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ इस प्रकार हैं –

1. **डॉ. नगेंद्र के शब्दों में** –''रिपोर्ताज फ्रान्सीसी भाषा का शब्द है। इसकी गणना नव्यतम साहित्य-रूपों के अंतर्गत की जाती है। जिस रचना में वर्ण्य विषय का आँखों-देखा तथा कानों सुना ऐसा वर्णन - विवरण प्रस्तुत किया जाय कि पाठक की हृदयतंत्री के तार झंकृत हो उठे और वह उसे भूल न सके, उसे रिपोर्ताज कहते हैं।''

2. **हिंदी साहित्य कोश–''**रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं।''

3. लेखक जिस घटना को प्रत्यक्ष देखकर उसका यथातथ्य वर्णन ललित शैली में करता है, गद्य की इस विधा को रिपोर्ताज कहा जाता है।

4. रिपोर्ट को कल्पना, कला एवं प्रतिभा के रंग से रंगकर जब साहित्यिक रूप दिया जाता है, वह रिपोर्ताज कहलाता है।

रिपोर्ताज के तत्त्व

यह पत्रकारिता से संबंधित साहित्यिक विधा है। रिपोर्ताज में तथ्य और भाव प्रवणता का समावेश होता है। इसमें लेखक यथार्थ को कल्पना के माध्यम से प्रस्तुत करता है। इसमें घटना मुख्य होती है। प्रभावपूर्ण ढंग से इसे अभिव्यक्त किया जाता है। रिपोर्ताज के निम्नलिखित तत्त्व माने जाते हैं-

1. **घटना का विवरण –** रिपोर्ताज काल्पनिक विधा न होकर कलात्मक विधा है। इसमें घटना और घटना स्थल का विवरण होता है। लेखक अपनी चिंतन की डोर ढीली छोडकर उसके कारणों की खोज करने के बहाने घटना को अतीत से और परिणामों की कल्पना के बहाने भविष्य से जोड सकता है। इसमें बीता हुआ कल, आज और आने वाले कल का संकेत होता है। इसमें प्रात:काल, मध्याह्न, और संध्या का संकेत होता है। रिपोर्ताज में अतीत, वर्तमान और भविष्य को जोडा जाता है।

2. **सत्यकथन –** रिपोर्ताज में सत्यकथन को महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इसमें गद्य-पद्य का समावेश होता है। इसमें अवलोकन, चिंतन और प्रभाव ग्रहण होने के कारण इसमें चित्रित सत्य प्रभावी होता है। लेखक स्वयं घटित घटनाओं को देखता है। उसे भूत, भविष्य की कडियों से जोडता है। रिपोर्ताज में उपदेश की अपेक्षा सत्यकथन किया जाता है। इससे आनंद की प्राप्ति होती है और पाठक को प्रेरणा भी मिलती है। रिपोर्ताज में आँखों देखी और कानों सुनी घटनाएँ होती हैं। इसीकारण इसमें कल्पना का कोई स्थान नहीं होता। वस्तुगत सत्य का ही चित्रण किया जाता है।

3. **उद्देश्य –** साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति रिपोर्ताज का उद्देश्य महान होता है। रिपोर्ताज का अर्थ केवल खबर देना या केवल खबर प्राप्त करना नहीं है। रिपोर्ताज समाज, संस्कृति तथा राजनीति की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है। रिपोर्ताज को लोकतंत्र का महत्त्वपूर्ण आधार माना जाता है। बाढ़, अकाल, अग्निकांड, भूकंप, भीषण दुर्घटना, विस्फोट, युद्ध, उत्सव, मेले आदि का सत्य चित्रण करना भी रिपोर्ताज का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माना जाता है। पाठकों को अधिक व्यवस्थित रूप में सामग्री उलपब्ध करा देना भी इसका उद्देश्य है।

4. **शैली –** यह तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। रिपोर्ताज की भाषा सरस, सरल, सहज, सुबोध और सजीव होनी चाहिए। इसमें एक विशिष्ट शैली का प्रयोग किया जाता है। रिपोर्ताज के शीर्षक अलग-अलग होते हैं परंतु उनकी एक विशिष्ट शैली होती है। इसमें अन्य विधाओं की शैली को भी अपनाया जाता है और रिपोर्ताज को सजीव, सरस बनाने का प्रयास किया जाता है।

रिपोर्ताज के प्रकार

विषय – विविधता की दृष्टि से रिपोर्ताज के निम्न प्रकार माने जाते हैं-

1. राष्ट्रीय रिपोर्ताज

2. सांस्कृतिक रिपोर्ताज

3. साहित्य विषयक रिपोर्ताज

4. सामाजिक रिपोर्ताज

3.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न

प्रश्न 1 – अ) निम्नलिखित वाक्यों में से दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) रेखाचित्र किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा .... पर आधारित होता है।

(क) घटना (ख) युग (ग) काल (घ) वातावरण

2) रेखाचित्र शब्द .... से संबंधित है।

(क) पत्रकारिता (ख) चित्रकला (ग) ललित कला (घ) साहित्य

3) रेखाचित्र में .... द्वारा मनोगत भावों का चित्र प्रस्तुत किया जाता है।

(क) रेखाओं (ख) रंगों (ग) वाक्यों (घ) तूलिका

4) पोप के अनुसार मनुष्य के अध्ययन का उचित विषय .... ही है।

(क) साहित्य (ख) जीवनी (ग) मनुष्य (घ) समाज

5) पश्चिम में .... विधा को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है?

(क) रेखाचित्र (ख) संस्मरण (ग) जीवनी (घ) आत्मकथा

6) संस्मरण में .... के आधार पर अतीत को चित्रित किया जाता है।

(क) कल्पना (ख) बुद्धि (ग) प्रतिभा (घ) स्मृति

7) समाज में महान व्यक्ति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने के उद्देश्य से ही .... लिखा जाता है।

(क) रेखाचित्र (ख) संस्मरण (ग) रिपोर्ताज (घ) साक्षात्कार

8) यात्रा के कारण मनुष्य को .... की प्राप्ति होती है।

(क) यश (ख) आनंद (ग) सम्पत्ति (घ) ज्ञान

9) यात्रा-लेखक का स्वयं .... होना अनिवार्य है।

(क) साहित्यकार (ख) यायावर (ग) कल्पक (घ) इतिहासकार

10) .... स्वयं का स्वलिखित इतिहास है।

(क) जीवनी (ख) संस्मरण (ग) आत्मकथा (घ) रेखाचित्र

11) आत्मकथा में .... तत्त्व की प्रधानता होती है।

(क) बुद्धि (ख) कल्पना (ग) शैली (घ) आत्म

12) दूसरों के जानने और स्वयं को अभिव्यक्त करने का महत्त्वपूर्ण साधन .... है।

(क) आत्मकथा (ख) जीवनी (ग) साक्षात्कार (घ) यात्रा-वर्णन

13) इंटरव्यू लेने वाले को .... कहा जाता है।

(क) इंटरव्यू-पात्र (ख) लक्ष्य-व्यक्ति (ग) इंटरव्युकार (घ) परीक्षक

14) रिपोर्ताज .... से संबधित विधा है।

(क) साहित्य (ख) राजनीति (ग) चित्रकला (घ) पत्रकारिता

15) रिपोर्ताज .... भाषा का शब्द है।

(क) मराठी (ख) हिंदी (ग) अंग्रेजी (घ) फ्रांसीसी

16) आँखों देखा, कानों सुना विवरण .... विधा में किया जाता है।

(क) जीवनी (ख) साक्षात्कार (ग) रिपोर्ताज (घ) यात्रा-वर्णन

प्रश्न 1 – आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

1) संस्मरण के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द कौनसा है?
2) साहित्य की कौनसी विधा में लेखक अधिक आत्मनिष्ठ रहता है?
3) संस्मरण का प्रमुख उद्‌देश्य कौनसा होता है?
4) यात्रा-वर्णन कौनसी शैली में लिखा जाता है?
5) साक्षात्कार के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द कौनसा है?
6) इंटरव्यू देनेवाले को क्या कहते हैं?
7) चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी ने इंटरव्यू के लिए कौनसा शब्द प्रयुक्त किया है?
8) हिंदी साहित्य कोश के अनुसार रिपोर्ताज किसे कहते है?
9) रिपोर्ताज का महत्त्वपूर्ण उद्‌देश्य कौनसा है?

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

मर्मस्पर्शी = हृदयस्पर्शी

मुखरित होना = स्पष्ट होना

बेतकल्लुफ = नि:संकोच, बेधड़क

दृष्टान्त = उदाहरण

उत्थान = विकास

पतन = ऱ्हास

क्षुधा = भूख

गरिमा = श्रेष्ठत्त्व

बेबाक = निडर, निर्भय

पर्यवसान = समाप्ति, अंत

इंटरव्युकार = इंटरव्यू लेने वाला व्यक्ति

भ्रमण = घूमना-फिरना,विचरण, यात्रा, सफर

परिमार्जन = दोष दूर करना, शुद्धि करना, अच्छी तरह साफ करना।

लक्ष्य–व्यक्ति = इंटरव्यू-पात्र व्यक्ति (इंटरव्यू देने वाला व्यक्ति)

यायावर = वह जो किसी एक स्थान पर टिककर न रहता हो, बराबर घूमता-फिरता हो।

3.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1 अ)

1) घटना	2) चित्रकला	3) रेखाओं	4) मनुष्य
5) जीवनी	6) स्मृति	7) संस्मरण	8) ज्ञान
9) यायावर	10) आत्मकथा	11) आत्म	12) साक्षात्कार
13) इंटरव्युकार	14) पत्रकारिता	15) फ्रांसिसी	16) रिपोर्ताज़

प्रश्न 1 आ)

1) संस्मरण के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द मेमायर्स (चशोळीी) है।
2) साहित्य की संस्मरण विधा में लेखक अधिक आत्मनिष्ठ रहता है।
3) समाज में महान व्यक्ति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना संस्मरण का प्रमुख उद्देश्य होता है।
4) यात्रा-वर्णन संवाद शैली या डायरी शैली में लिखा जाता है।
5) साक्षात्कार के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द इंटरव्यू (Interview) है।
६) इंटरव्यू देने वाले को इंटरव्यू-पात्र या लक्ष्य-व्यक्ति कहते हैं।
7) चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी ने इंटरव्यू के लिए 'संवाद विधा' शब्द प्रयुक्त किया है।
८) हिंदी साहित्य कोश के अनुसार रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को 'रिपोर्ताज कहते हैं।
9) बाढ़, अकाल, अग्निकांड, भूकंप, भीषण दुर्घटना, विस्फोट, युद्ध, उत्सव, मेले आदि का सत्य चित्रण करना रिपोर्ताज का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होता है।

3.7 सारांश

1) संस्मरण में लेखक आत्मनिष्ठ अधिक होता है। संस्मरण में स्मृति के आधार पर अतीत को चित्रित किया जाता है। संस्मरण प्राय: महान व्यक्तियों के असाधारण व्यक्तित्त्व पर आधारित होते हैं। समाज में महान व्यक्ति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना ही संस्मरण का प्रमुख उद्देश्य होता है।
2) दूसरों को जानने और स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए मनुष्य ने अनेक साधनों का अवलंब किया है। साक्षात्कार इनमें से एक है। साक्षात्कार के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द खपींर्शीींळशु है। इंटरव्यू लेनेवाले को 'इंटरव्युकार' और इंटरव्यू देने वाले को 'इंटरव्यू-पात्र' या 'लक्ष्य-व्यक्ति' कहा जाता है। गुलेरी जी ने इंटरव्यू को 'संवाद-विधा' कहा है।

3) रिपोर्ताज पत्रकारिता से संबंधित विधा है। इसमें आँखों देखा तथा कानों सुना वर्णन ही किया जाता है। रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को रिपोर्ताज कहते हैं। बाढ़, अकाल, अग्निकांड, भूकंप, भीषण दुर्घना, विस्फोट, युद्ध, उत्सव, मेले आदि का सत्य चित्रण करना रिपोर्ताज का महत्त्वपूर्ण उद्‌देश्य होता है।

3.8 स्वाध्याय

1) संस्मरण की परिभाषाओं के आधार पर संस्मरण का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2) संस्मरण के तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।
3) रिपोर्ताज की परिभाषाओं के आधार पर रिपोर्ताज का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
4) रिपोर्ताज के तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।
5) साक्षात्कार की परिभाषाओं के आधार पर साक्षात्कार का स्वरुप स्पष्ट कीजिए।
6) साक्षात्कार के तत्त्वों पर प्रकाश डालिए ।

3.9 क्षेत्रीय कार्य

1) मानव तथा मानवेतर प्राणियों पर रेखाचित्र लिखें।
2) अपने गाँव तथा शहर के एखाद् सामान्य व्यक्ति पर रेखाचित्र लिखें।
3) स्वयं की आत्मकथा का अंश लिखने का प्रयास करें।
4) आपके गाँव के किसी प्रसिद्‌ध व्यक्ति के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करें और उस पर जीवनी लिखने का प्रयास करें।
5) देश-विदेश की यात्रा करें और यात्रा साहित्य लिखने का प्रयास करें।
6) नजदीक के किसी तीर्थक्षेत्र की यात्रा करें।
7) किसी स्वातंत्र्य सेनानी तथा महिला समाजसेविका से भेंट-वार्ता करें।
8) आँखों देखी एखाद् रोमांचकारी घटना पर रिपोर्ताज तैयार करें।
9) आपके शहर के किसी महत्त्वपूर्ण उत्सव पर रिपोर्ताज तैयार करें।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1) माटी के मूरतें - रामवृक्ष बेनीपुरी
2) क्या भूलूँ क्या याद करूँ - हरिवंशराय बच्चन
3) रसीदी तिकट - अमृता प्रितम
4) अतीत के चलचित्र - महादेवी वर्मा
5) अरे यायावर रहेगा याद - स्वदेश भारती

6) पंछी की लाश – फणीश्वरनाथ रेणु

7) आधुनिक हिंदी का जीवनीपरक साहित्य – शांति खन्ना

8) हिंदी का स्वातंत्र्य प्राप्त्युत्तर यात्रा साहित्य – डॉ. इरेश स्वामी

9) यशपाल का कथेतर साहित्य – डॉ. बलीराम धापसे

10) हिंदी आत्मकथा स्वरूप एवं साहित्य – डॉ. कमलेश सिंह

11) हिंदी रेखाचित्र : उद्‌भव और विकास – डॉ. कृपाशंकर सिंह

12) काव्यशास्त्र – डॉ. भगीरथ मिश्र

❑❑❑

इकाई –4
आलोचना : स्वरूप, गुण एवं प्रकार

अनुक्रम

4.1 उद्‌देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 विषय – विवेचन
    4.3.1 आलोचना : स्वरूप
    4.3.2 आलोचक के गुण
    4.3.3 आलोचना के प्रकार
        4.3.3.1 समाजशास्त्रीय आलोचना
        4.3.3.2 निर्णयात्मक आलोचना
        4.3.3.3 तुलनात्मक आलोचना
        4.3.3.4 ऐतिहासिक आलोचना
4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न
4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ
4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 स्वाध्याय
4.9 क्षेत्रीय कार्य
4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्‌देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरांत आप

1. आलोचना एवं उसके पर्यायवाची शब्दों से परिचित होंगे ।
2. आलोचना के स्वरूप से अवगत होंगे ।
3. आलोचक के लिए आवश्यक गुणों से परिचित होंगे।
4. आलोचना के कुछ प्रमुख प्रकारों से परिचित होंगे।
5. किसी भी साहित्य कृति की आलोचना करने की क्षमता प्राप्त करेंगे।
6. साहित्य की अन्य विधाओं का अध्ययन करने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

4.2 प्रस्तावना :

जीवन और साहित्य के साथ आलोचना का घनिष्ठ संबंध है। यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या माने, तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना होगा। साहित्य के क्षेत्र में आलोचना से अभिप्राय है, किसी साहित्यिक कृति का सांगोपांग निरीक्षण। आलोचना के अंतर्गत किसी कृति का प्रभाव, आस्वाद, उसकी व्याख्या और उसका शास्त्रीय तथा नैतिक मूल्यांकन आदि सभी बाते आ जाती हैं। आलोचना से संबधित जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हम आलोचना का अर्थ, स्वरूप, आलोचक के गुण तथा आलोचना के कुछ मुख्य प्रकारों का अध्ययन करेंगे।

4.3 विषय – विवेचन :

'आलोचना' शब्द संस्कृत के 'लोच्' धातु से बना है, 'लोच्' का अर्थ है – देखना अत: आलोचना का अर्थ है 'देखना'। किसी वस्तु या कृति की सम्यक व्याख्या, उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है। आलोचना के लिए हिंदी में अनेक शब्द प्रचलित हैं – विवेचना, समीक्षा, समालोचना आदि स्थूल दृष्टि से इन तीनों शब्दों को समानार्थक कहा जा सकता है किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखने से तीनों कुछ अपना अलग-अलग अर्थ व्यंजित करते प्रतीत होते हैं। साहित्य के क्षेत्र में पहले 'आलोचना' शब्द का प्रचार अधिक था किंतु अब कुछ दिनों से समालोचना और समीक्षा शब्द अधिक प्रचलित हो चले हैं। आलोचना में पहले सम उपसर्ग जोड़ने से 'समालोचना' शब्द बनता है। अत: समालोचना का अर्थ है – संतुलित दृष्टि से किसी रचना के गुण-दोषों का कथन करना किंतु विद्वानों को इतने से भी तुष्टि नहीं हुई तो समालोचना के लिए 'समीक्षा' शब्द का प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया। समीक्षा में कृति के बाह्य गुण – दोष कथन से आगे बढ कर कृतिकार के अंत:करण की छानबीन होती है। किसी बात या कार्य के गुण और दोष आदि के संबंध में प्रकट किया जाने वाला विचार आलोचना है।

4.3.1 आलोचना का स्वरूप :

साहित्य के क्षेत्र में 'आलोचना' से अभिप्राय है, किसी साहित्यिक कृति का सांगोपांग निरिक्षण। लेकिन कुछ लोग रचनात्मक साहित्य के अतिरिक्त साहित्य से संबधित अन्य समस्त बातों को आलोचना का हिस्सा समझते हैं। वे अनुसंधान, काव्य का इतिहास और काव्यशास्त्र एवं काव्यसिद्धांतों को भी आलोचना के अंतर्गत सम्मिलित करते हैं। परंतु आलोचना का स्वरूप इनसे भिन्न है जिसे हम निम्न रूप में स्पष्ट करेंगे।

अनुसंधान और आलोचना :

अनुसंधान का मुख्य कार्य अज्ञात तथ्यों की खोज अथवा ज्ञात तथ्यों की नवीन व्याख्या है। जब तक तथ्यों या दृष्टिकोन संबधी नवीनता न हो, तब तक उसे अनुसंधान की कोटि में नहीं रखा जा सकता। परंतु आलोचना का कार्य किन्ही मानदंडो के आधार पर विशेषताएँ बताना, व्याख्या करना अथवा मूल्यांकन करना है। अत: अनुसंधान की समस्त कृतियाँ आलोचना नहीं हो सकती और न ही आलोचना की समस्त कृतियाँ अनुसंधान हो सकती हैं।

इतिहास और आलोचना :

साहित्येतिहास और आलोचना भी एक नहीं है। इतिहास का प्रमुख ध्येय कालक्रम में लेखक और कृति की व्यवस्था और उसका स्थूल परिचय है। तो आलोचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का ध्यान रखती हुई लेखक के महत्त्व का प्रकाशन, कृति की मूल्यांकन संबंधी विवेचना, कृति की व्याख्या और उसकी विशेषताओं का स्पष्टिकरण करती है। ऐतिहासिक आलोचना इतिहास की पृष्ठभूमि ग्रहण करती है । पर वह इतिहास नहीं है। इतिहास तथ्यों के अनुसंधान के अनुसार अपनी व्यवस्था और मान्यताओं में परिवर्तन और संशोधन करता है।

काव्यशास्त्र और आलोचना :

काव्यशास्त्र या काव्यसिद्धांत समस्त काव्य में व्याप्त उसके स्वभाव, सौंदर्य प्रक्रिया, प्रभाव आदि से संबधित नियमों और सिद्धांतों का विश्लेषण और विवेचन करता है। आलोचना उन सिद्धांतों और नियमों को मानदंड या कसौटी के रूप में स्वीकार करती है। आलोचना में नियमों और सिद्धांतो की खोज नहीं करती, बल्कि कवि की कृति की व्याख्या का मूल्यांकन करती है।

आलोचना की परिभाषाएँ :

विद्वानों ने आलोचना की परिभाषाएँ निम्नानुसार की हैं-

रिचर्ड्स : "To set up as a critic is to set up as a judge of values." अर्थात् आलोचक की नियुक्ति करना निर्णायक की नियुक्ति करना है।

कार्लाइल : "Literary criticism is nothing and should be nothing but the recital of one's personal adventures with a book." अर्थात् आलोचना पुस्तक के प्रति उद्भूत आलोचक की मानसिक प्रतिक्रिया का परिणाम है।

डॉ. शामसुंदर दास : ''साहित्य क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है।''

डॉ. गुलाबराय : ''आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना तथा उनकी रूचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है।''

उपरोक्त परिभाषाओं का ध्यान से अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि विद्वानों ने आलोचना संबंधी अपने दृष्टिकोणों के अनुरूप ही उसके स्वरूप की व्याख्या की है।

4.3.2 आलोचक के गुण :

आलोचक समाज का प्रतिनिधि बनकर कृति को देखता है, समाज को उसके मूल्यतम तथ्यों से परिचित कराता है और लोकहित की दृष्टि से उसका मूल्यांकन कर लेखक को भी दिशा-निर्देश करता है। आलोचक लेखक और पाठक के बीच में दुभाषिए-जैसा-सा काम करता है तथा समाज और कलाकारों को

पारस्परिक संपर्क में लाकर नए विचारों और भावों के आदन-प्रदान में सहयोग प्रदान करता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि आलोचक को आलोचना कर्म में निरत होते समय विषय-बोध, व्याख्या-विश्लेषण तथा मूल्यांकन या निर्णय प्रतिपादन के साथ-साथ तटस्थ एवं निष्पक्ष रहना भी नितांत अपेक्षित है। अत: विद्वानों ने आलोचक के कुछ आवश्यक गुणों का निर्धारण किया है जो निम्नानुसार हैं-

1) सहृदयता :

सहृदयता आलोचक का आवश्यक गुण है क्योंकि भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना सहृदय हुए काव्य का रसास्वादन नहीं कर सकता। सहृदय होने से ही वह कृति का सही विवेचन कर सकता है। मुक्त हृदय से काव्य कृति में तन्मय होकर, गुणों पर रिझता हुआ जो आलोचक अपनी आलोचना प्रस्तुत कर सके, वह सहृदय आलोचक है। आलोचक के मन में रचनाकार तथा रचना के प्रति श्रद्धा, सहानुभूति एवं आदर की भावना होनी चाहिए।

2) विस्तृत ज्ञान :

यदि आलोचक को आलोच्य विषय तथा लोक और शास्त्र का व्यापक एवं सूक्ष्म ज्ञान होगा, तो वह वर्ण्य विषय की बारीकियों को समझ ही न पाएगा; उनमें गुणदोष निकालना तो दूर की बात है। आलोचक का इतिहास, दर्शन, काव्यशास्त्र, समाजशास्त्र आदि का विस्तृत ज्ञान ही उसे आलोचना की विविध भूमियाँ प्रदान कर सकता है और कृति की विशेषताओं का विवेचन करने में सहायक हो सकता है। अत: विषय का सांगोपांग विवेचन करने के लिए आलोचक का ज्ञान विस्तृत होना आवश्यक है।

3) प्रतिभा :

काव्य का मूल कारण प्रतिभा है और यह प्रतिभा व्युत्पत्ति और अभ्यास के सहारे प्राप्त की जा सकती है। हमारे यहाँ प्रतिभा को काव्योत्पादन और काव्यालोचन दोनों में बहुत महत्त्व दिया गया है । प्रतिभा के दो भेद मने गए हैं कारयत्री और भावयत्री। कारयत्री प्रतिभा का संबंध कवि से होता है और भावयत्री प्रतिभा का संबंध भावक या पाठक से होता है।

4) अंतर्दृष्टी :

आलोचक में अंतर्दृष्टी का होना बहुत जरुरी होता है। अंतर्दृष्टी की विशेषता बहुत कुछ जन्मजात कही जा सकती है किंतु शिक्षा और अभ्यास आदि से आलोचक की यह विशेषता विकसित हो सकती है। आलोचक अपनी इसी विशेषता के कारण सच्ची आलोचना में समर्थ हो सकता है, क्योंकि आलोचक का कर्तव्य है कि कवि के द्वारा की गई जीवनाभिव्यक्ति पाठकों तक पहुँचा दे।

5) निष्पक्षता :

आलोचक का निष्पक्ष होना बड़ा जरुरी होता है। यदि आलोचक में यह गुण वर्तमान न हो तो आलोचना दूषित हो सकती है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जीवन में किसी न किसी प्रकार के राजनीतिक,धार्मिक या सामाजिक पक्षपातों से प्रेरित रहता है। आलोचना करते समय यदि वह तनिक भी इन प्रेरणाओं से

प्रभावित हो गया तो उसका निर्णय दूषित हो जाएगा। दूषित निर्णय साहित्यिक पाप होने के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टि से भी हेय समझा जाएगा अतएव आलोचक को निष्पक्ष होना चाहिए।

6) वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का होना :

वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक ज्ञान आज की आलोचना के आवश्यक उपादान है। वैज्ञानिकता का अर्थ है वस्तुओं का निष्पक्ष भाव से विश्लेषण। इस प्रकार का विश्लेषण तभी संभव हो सकता है जब आलोचक में सच्चाई और निष्पक्षता हो। यह दोनों गुण आलोचक में तभी आ सकते हैं जब वह स्वाभाव से वैज्ञानिक हो। वैज्ञानिकता के साथ-साथ मनोविज्ञान का ज्ञान भी आलोचक के लिए नितांत आवश्यक है।

आलोचक पाठकों को इस प्रकार का आनंद और प्रेरणा तभी प्रदान कर सकता है जब उसे मानव-मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान हो, क्योंकि साहित्य मानव जीवन की अभिव्यक्ति है।

7) दार्शनिक वृत्ति का होना :

आलोचक में दार्शनिक वृत्ति का होना भी आवश्यक माना है, क्योंकि वैज्ञानिक वृत्ति केवल वर्गीकरण आदि की ओर प्रेरित करती है, किंतु दार्शनिक वृत्ति के सहारे आलोचक सत्य और असत्य के बीच विभेद भी स्थापित करने में समर्थ होता है।

8) शिक्षा :

मम्मट ने काव्योत्पत्ति हेतुओं का परिगणन करते हुए लिखा है कि कवि को लोकशास्त्र ज्ञान तथा काव्यशिक्षा अभ्यास भी होना चाहिए। अतएव आलोचक को भी उसी के समान शिक्षित होना चाहिए। जेम्स स्टाक के मतानुसार आलोचक को उसी भूमिका तक पहुँचना चाहिए जिस भूमिका पर कवि रहता है। यह तभी संभव हो सकता है जब कि आलोचक भी कवि के सामान शिक्षित हो।

आलोचक को आलोचना करते समय नवीनतम ज्ञान की खोज कर पाठकों तक पहुँचा देना चाहिए। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए भी आलोचक का सर्वशास्त्र पारंगत होना नितांत आवश्यक होता है। इसके लिए उसे शिक्षा और गूढ़ अध्ययन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

9) व्यक्तित्त्व :

आलोचक को साहित्य-सृष्टा कहा जा सकता है। साहित्य पर व्यक्तित्व का मौलिक प्रभाव पड सकता है। हडसन ने कहा है विशिष्ट व्यक्तित्व से हमारा अभिप्राय कुछ विशेष बातों से है व्यक्तित्व भी प्राय: दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो दूसरों से स्वयं प्रभावित होते हैं, दूसरे वे जो दूसरों को स्वयं प्रभावित करते हैं। आलोचक का व्यक्तित्व वास्तव में इन दोनों के मध्य कोटि का होना चाहिए। उसका दृष्टिकोण विस्तृत हो, स्वभाव गंभीर हो, विचार उदार हो, साथ-साथ सहानुभूति भी हो।

10) सहानुभूति :

सहानुभूति आलोचक का आवश्यक कर्तव्य है। लौंगफ़ेलो ने इस बात का समर्थन किया है। किसी ने ठीक ही कहा है-

''गुणदोषो बुधौ ग्रहणन इन्दुवद महेश्वर:,

शिरसा श्लाघते पूर्व परकण्ठे नियच्छति''

अर्थात् शिवाजी की भांति बुधजन गुण और अवगुण दोनों ग्रहण करते हैं किंतु चंद्रमा की भांति गुणों को सीर पर रख कर प्रकाशित करते हैं और दोषों को विष की भांति गले के भीतर ही रखते हैं। इस लक्ष्य तक आलोचक तभी पहुँचा सकता है जब उसमें सहानुभूति का विशेष गुण हो।

11) प्रेषणीयता :

आलोचक में अपनी अनुभूति को दूसरों तक प्रेषित करने की क्षमता होनी चाहिए। उसका कार्य केवल यह नहीं है कि वह स्वयं किसी कलाकृति का आनंद ले; अपितु उस आनंद को पाठकों तक प्रेषित करे। कैलेट ने कहा है परिष्कृत रूचि और मनोविज्ञान के साथ-साथ आलोचक में भावप्रेषण की क्षमता भी होनी चाहिए।

12) युग विधान करने की शक्ति :

साहित्यकार युग का सृष्टा ही नहीं होता, नवयुग का प्रवर्तक भी होता है। नवयुग प्रवर्तन का यह कार्य केवल कवि का ही नहीं होता। इसका उत्तरदायित्व आलोचक और पाठक पर भी होता है। आलोचक भविष्य निर्माण करने की क्षमता रखता है अतएव उसमें युगविधान करने की शक्ति होनी चाहिए।

13) औचित्य ज्ञान :

आलोचक को किसी रचना के गुण दोषों के विवेचन में औचित्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। आ. क्षेमेंद्र ने काव्य के औचित्य को बहुत ही महत्त्व दिया है वास्तव में उसका महत्त्व आलोचना में भी कम नहीं है। औचत्य-ज्ञान उसी समालोचक में हो सकता है,जो सत्यप्रिय और ईमानदार है, जिसमें धीरता और स्थिरता आदि स्वाभाविक गुण हैं

14) छिद्रान्वेषी प्रकृति का निरीक्षण :

यद्यपि काव्य की समालोचना के लिए जब समालोचक प्रवृत्त होता है, उस समय सम्यक विवेचन के लिए गुणों के साथ-साथ दोषों को भी प्रदर्शित करता है; पर इसमें सुधार भावना होनी चाहिए, न कि छिद्रान्वेषी प्रवृत्ति। टी. रायमर ने कहा है, ''किसी श्रेष्ठ कलाकार के दोषों का प्रदर्शन और गुणों पर परदा अच्छे आलोचक का गुण नहीं।''

15) निर्णयात्मक शक्ति :

आलोचक का कर्म निर्णय प्रधान होता है। अत: उसका यह सर्वोपरी गुण है कि वह स्पष्ट और सही निर्णय ले सके। सही विषय-बोध, अपने व्यक्तित्व की सशक्तता एवं अभिव्यक्तित्व की स्पष्टता से ही समालोचक सही निर्णय ले सकता है।

सारांश :

इससे स्पष्ट होता है कि एक सफल समालोचक होने के लिए उपरोक्त सभी गुणों का होना आवश्यक है। साथ ही आलोचक में कुछ तो स्वभावगत शक्तियाँ और विशेषताएँ होनी चाहिए और कुछ अभ्यासमूलक और प्रयत्नज विशेषताएँ होनी चाहिए।

4.3.3 आलोचना के प्रकार :

आलोचना की विभिन्न प्रवृत्तियों को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। सैद्धांतिक आलोचना और व्यावहारिक आलोचना । सैद्धांतिक आलोचना के अंतर्गत काव्यशास्त्रीय मूल्यों का निर्धारण तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं का निरूपण समाहित है; अत: इसे काव्यशास्त्रीय समीक्षा भी कह सकते हैं । व्यावहारिक आलोचना के अंतर्गत शास्त्रीय आलोचना इसी सैधांतिक आलोचना पर निर्भर होती है । किंतु वर्तमान समय में आलोचना की विभिन्न प्रवृत्तियाँ विकसित हो चुकी हैं । इनमें से पाठ्यक्रम में निर्धारित केवल व्याख्यात्मक, तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक आलोचना पद्धतियों का ही समावेश किया गया है, जो निम्नानुसार है–

4.3.3.1 समाजशास्त्रीय आलोचना :

इस आलोचना प्रकार में साहित्य को सामूहिक कर्म माना जाता है। जिसका उद्देश्य समाज की भौतिक कल्याण भावना है। यह आलोचना साहित्य के सामाजिक महत्त्व तथा प्रभाव का मूल्यांकन, निर्धारण तथा व्याख्या करती है। इस आलोचना का दृष्टि एकांगी होती है, क्योंकि इसमें व्यक्तिगत प्रतिभा स्फूरण तथा आन्तरिक कलापक्ष की उपेक्षा करके केवल सामाजिक तत्त्वों को ही परीक्षा की विवेचना की जाती है। डॉ. कृष्णदेव शर्मा ने इसका दूसरा नाम प्रगतिवादी आलोचना दिया है। इनकी मान्यता है इस पद्धति का जन्म रूस के गोर्की द्वारा माना जाता है। इसका आधार समाजवादी यथार्थ है। तो अधिकांश विद्वान समाजवादी तथा प्रगतिवादी आलोचना का आधार कार्ल मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को मानते है। डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त ने इसे इसी आधार पर मार्क्सवादी समीक्षा कहा है।

समाजशास्त्रीय आलोचना साहित्यिक आलोचना है जी साहित्य की उसके व्यापक सामाजिक संदर्भ में समझने के लिए निर्देशित होती है; यह सामाजिक संरचनाओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए नियोजित की जाती हैं। समाजशास्त्रीय आलोचना साहित्य में सामाजिक कार्य कैसे होते हैं और साहित्य समाज में कैसे काम करता है। साहित्यिक आलोचना के इस रूप को २० वीं सदी के साहित्यिक और आलोचनात्मक सिद्धांतकार केनेथ बर्क ने पेश किया था। वे कलाकारों और लेख कों द्वारा उपयोग की जानेवाली विधियों के मानकीकरण का सुझाव देते हैं ताकि सामाजिक संदर्भ में कला के कार्यों पर विचार किया जा सके। समाजशास्त्रीय आलोचना एक सैद्धांतिक दृष्टिकोन है जो समाज और इसकी व्यवस्था रिश्तो और संस्थाओं का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोन से विश्लेषण और व्याख्या करता है।

4.3.3.2 निर्णयात्मक आलोचना

प्रस्तुत आलोचना में आलोचक साहित्य संबंधी विभिन्न शास्त्रीय या सैद्धांतिक नियमों का आश्रय ग्रहण करके आलोच्य कृति के गुण–दोष विवेचित करता हुआ उसका साहित्यिक दृष्टि से मूल्य निर्धारित करता है। आलोचक का दृष्टिकोण न्यायाधीश जैसा होता है और वह एक निश्चित मानदंड के अनुसार कलाकार की रचना पर अपना निर्णय देता है। निर्णायात्मक आलोचना के अनुसार आलोचक तीन प्रकार से किसी कृति का मूल्यांकन कर सकता है – (१) प्रामाणिक मानदंडों के आधार पर, (२) सौंदर्यबोध संबंधी–मानदंडों के आधार पर और (३) सुधारवादी एवं नैतिकवादी नियमों के आधार पर।

इसके अनुसार यदि कोई कलाकृति उपर्युक्त नियमों पर ठीक बैठती है तो श्रेष्ठ है, अन्यथा नहीं। निर्णयात्मक आलोचक की आँखें सदैव काव्य संबंधी पुरातन नियमों, विशेषत: ग्रीक नियमों पर लगी होती हैं। उकसे पास इन मानदंडों का एक शिकंजा होता है, जिसमें वह किसी कलाकृति को कसकर उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त घोषित करता है। आलोचक अन्वेषक के रूप में किसी कृति का अध्ययन न कर न्यायाधीश के रूप में करता है और यह देखता है कि काव्य एक निश्चित आधार के अनुसार है या नहीं। इस प्रकार की आलोचना व्याख्यात्मक आलोचना के ठीक विपरीत होती है। कुछ आलोचक अपनी साहित्याभिरूचि के मानदंड से कृति को देखते हैं। वे साहित्यिक कृतियों को अपनी विचार–पद्धति के मेल में रखने का प्रयत्न करते हैं।

इस प्रकार की आलोचना करने वाले समालोचक तीन प्रकार के होते हैं – पहले वे, जो अपनी रूचि और भावानुभूति के अनुसार निर्णय करते हैं, वे नियम नहीं जानते। दूसरे वे, जो केवल नियमों को मिलाकर सम्मति स्थिर करते हैं और तीसरे वे, जो नियमों के विशेषज्ञ भी होते हैं, पर रहते हैं नियमों के परे। इस प्रकार के आलोचक सबसे बड़े निर्णायक माने जाते हैं।

इस प्रकार की समालोचना में दो बातें स्मरणीय हैं। एक तो ऐसी समालोचना व्याख्या के बिना न्यायपूर्ण और उचित नहीं हो सकती। ऐसी समालोचना में हमें आलोच्य कृति का उतना परिचय नहीं होता, जितना कि समालोचक की व्याख्या से। दूसरे, इस प्रकार दिए गए निर्णय व्यक्तिगत निर्णय होते हैं, जो एक–दूसरे के विपरीत भी हो सकते हैं। इससे एक से अधिक समालोचकों के निर्णय देखने पर हम उनके भिन्न मतों के कारण आलोच्य कृति को उसके वास्तविक स्वरूप में समझ ही नहीं पाते।

वास्तव में ऐसी समालोचना साहित्य की प्रगति में बाधक होती है। यह एक भ्रांतिपूर्ण समालोचना है। **डॉ. मोल्टन** ने इस आलोचना प्रणाली का खंडन किया है। **डॉ. नगेंद्र** ने भी समालोचक का कार्य निर्णय देना न मानकर व्याख्या–विश्लेषण ही माना है। उनका विचार है कि यदि समालोचक निर्णय देता है, तो वह अपने कर्म से च्युत हो जाता है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है – *''रत्न की खोज या परख करने वाला रत्न की मूल्यवत्ता का कारण नहीं हो सकता। इसी अर्थ में बडे से बडा आलोचक भी कवि को बनाने–बिगाडने का गर्व नहीं कर सकता।''* **ड्राइडन** ने भी इस प्रकृति की कटु आलोचना की थी और कहा था कि साहित्य को युगीन मानदंडों के परिप्रेक्ष्य में देखना उचित होता है। इस आधार पर जो कुछ ग्रीस के लोगों को अरस्तू के युग में अच्छा लगता था, आवश्यक नहीं कि हमें भी वह उतना ही उचित जान पड़े। निर्णयात्मक आलोचना

इस मूल तथ्य को भूलकर चलती है, इसलिए इससे साहित्य को जितनी हानि होती है, उतना लाभ नहीं होता।

4.3.3.3 तुलनात्मक आलोचना :

इस प्रकार की आलोचना को अंग्रेजी में 'Comparative Criticism' कहा जाता है। इसका प्रादुर्भाव जोसेफ एडिसन की आलोचना से हुआ। तुलनात्मक मूल्य निर्धारण ही इस आलोचना का लक्ष्य होता है। साहित्य के सामाजिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व की प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी इसका महत्वपूर्ण योगदान रहता है। इस प्रकार की आलोचना के अंतर्गत एक ही विषय के दो कवियों की व्यापक रूप से तुलना कर दोनों की विशेषताओं का उद्घाटन किया जाता है अथवा कभी-कभी एक कवि की विभिन्न कृतियों की तुलना की जाती है। एक ही विषय के छंदों का तुलनात्मक अध्ययन पं. पद्मसिंह शर्मा की बिहारी सतसई तथा कवियों की तुलना कृष्ण बिहारी मिश्र की देव और बिहारी कृति में मिलती है।

इस आलोचना पद्धति में आलोचक अपने विषय के प्रतिपादनार्थ दोनों की रचनाओं का अध्यङ्कन कर उसके विविध अंगों पर प्रकाश डालता है। इस कोटि की आलोचना में मूल्य निर्धारण की भावना विद्यमान रहती है। साधारणतः तुलनात्मक दृष्टि आलोचना में तभी श्रेयस्कर सिद्ध होती है, जब कि वह पूर्ण वैज्ञानिक हो और आलोचक अनासक्त भाव से दोनों पक्षों की सामान सहानुभूति से समीक्षा करें।

यह पद्धति उन स्थलों पर उपयोगी होती है, जहाँ हमें तुलनात्मक दृष्टि से किसी को छोटा या या बड़ा सिद्ध नहीं करना होता, वरन एक ही प्रकार की विषेशताओं, नियमों और सिद्धांतो के प्रभाव को स्पष्ट करना होता है। इस तथ्य का ध्यान न रखने पर प्रय: इस अलोचना का परिणाम कटू विवाद होता है। हिंदी में बिहारी और देव की आलोचना और उस संबंध में उत्पन्न विवादास्पद स्थिति इसका ज्वलंत उदाहरण है। शांतिप्रिय द्विवेदी और शशीरानी गुर्टू के कुछ लेख इस आलोचना के भीतर आते हैं। पंडित पद्मसिंह शर्मा की आलोचना भी इसी प्रकार की है।

इसके अतिरिक्त बाबू गुलाबराय की निम्नलिखित पंक्तियाँ तुलनात्मक समीक्षा का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है-

''सूर और तुलसी के उपासना भेद से उनकी भक्ति-भावना में भी अंतर था। सूर ने अपने भगवान के माधुर्य पक्ष को अपनाया था तो तुलसी ने अपने इष्टदेव के ऐश्वर्य पक्ष को। सूर ने नियम और मर्यादा की अपेक्षा प्रेम को प्रधानता दी, तुलसी ने नीति और मर्यादा को सूर ने भगवान के लोकरंजक रूप पर अधिक बल दिया तो तुलसी ने उसके लोकरक्षक रूप को। दोनों ने भगवान की शरणागत वत्सलता पर विश्वास किया, दोनों ने भी भगवत कृपा का आश्रय लिया है। दोनों में समानताएँ आवश्य हैं किंतु दोनों के दृष्टिकोण में भेद है।'' (अध्याय और आस्वाद पृष्ठ 207)

4.3.3.4 ऐतिहासिक आलोचना :

इस आलोचना प्रकार में कवि का मूल स्रोत ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों में खो जाता है। जब किसी कृति की आलोचना कृतिकार की युगीन परिस्थितियों के पारिप्रेक्ष्य में की जाती है, तब उसे

'ऐतिहासिक आलोचना' की संज्ञा दी जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि साहित्य की प्रवृत्ति विशेष में लेखक के योगदान का ऐतिहासिक विकास क्रम के अनुसार विश्लेषण किया जाता है। इसमें इस तथ्य की खोज की जाती है कि युग और साहित्य परस्पर किस रूप में सम्बद्ध हैं और एक दूसरे को किस रूप में प्रभावित करते हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक आलोचना में युगचेतना की पृष्ठभूमि को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया जाता है।

ऐतिहासिक आलोचना का सूत्रपात फ्रांसीसी टेन (Hippolyte Taine) से हुआ। उसने यह बतलाया कि कवि या लेखक अपनी जाति (Race), परिस्थिति (Milieu) तथा काल (Moment) की उपज होता है। हिंदी आलोचना के इस वर्ग में मुख्यत: आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. भगीरथप्रसाद मिश्र प्रभृति आते हैं। आ. द्विवेदी ने अपने 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य का आदिकाल', 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास', आदि ग्रंथों द्वारा हिंदी साहित्य के विकास पर नूतन आलोक प्रसारित करते हुए अनेक नूतन स्थापनाएँ स्थापित की। विशेषत: संत साहित्य एवं वैष्णव भक्ति आंदोलन के संबंध में उन्होंने अनेक नए तथ्यों का उद्घाटन किया। डॉ. रामकुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास में आदिकाल एवं भक्तिकाल का विवेचन अत्यंत विस्तार से किया है तथा अनेक कवियों का मूल्यांकन साहित्यिक शैली में प्रस्तुत किया है। डॉ. भगीरथप्रसाद मिश्र ने 'हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास' एवं 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' के द्वारा हिंदी के विकास को स्पष्ट किया है।

प्रस्तुत उदाहरण ऐतिहासिक आलोचना का ज्वलंत उदाहरण है – ''हिंदू और मुसलमान यद्यपि अलग-अलग बने रहें,परंतु उनमें भावों और विचारों की एकता अवश्य स्थापित हुई। ... कबीर ने मेल की बड़ी प्रेरणा दी थी। उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि हमको उत्पन्न करनेवाला परमात्मा एक ही है, केवल नाम भेद से अज्ञानवश हम उसे भिन्न-भिन्न समझा करते हैं । धार्मिक विवाद व्यर्थ हैं, सब मार्ग एक ही स्थान को जाते हैं।'' (श्यामसुंदरदास – हिंदी भाषा और साहित्य, पृष्ठ-165)

आधुनिक आलोचक किसी कवि की आलोचना करते समय उन तमाम परिस्थितियों का ऐतिहासिक विवरण देते हैं जिनमें पड़कर कवि ने अपनी कृति लिखी होगी। साथ ही साथ परंपरा निर्देश की ओर भी सच्चे आलोचक का ध्यान रहता है क्रोचे ने भी अपने दार्शनिक सिद्धांत के विवेचन में इतिहास को बहुत अधिक महत्त्व दिया है।

इस प्रकार हिंदी आलोचना का विकास विभिन्न क्षत्रों में नये-नये रूप से हो रहा है।

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) .... की समस्त कृतियाँ आलोचना नहीं हो सकती।

(अ) अनुसंधान (ब) इतिहास (क) काव्य (ड) कथा

2) .... के अनुसार आलोचक की नियुक्ति करना निर्णायक की नियुक्ति करना है।

(अ) कार्लाइल (ब) रिचर्ड्स (क) मोल्टन (ड) ड्राइडन

3) समाजशास्त्रीय आलोचना को कृष्णदेव शर्मा ने .... आलोचना नाम दिया है।

(अ) प्रगतिवादी (ब) ऐतिहासिक (क) तुलनात्मक (ड) निर्वाचात्मक

4) तुलनात्मक आलोचना को अंग्रेजी में .... Criticism कहा जाता है।

(अ) Theoretical (ब) Comparative (क) Critical (ड) Historical

5) सहृदय होने से ही आलोचक कृति का सही .... कर सकता है।

(अ) पठन (ब) निर्धारण (क) निरिक्षण (ड) विवेचन

6) काव्योत्पत्ति हेतुओं का परिगणन .... ने किया है।

(अ) अभिनव गुप्त (ब) मम्मट (क) रुद्रट (ड) वामन

7) तुलनात्मक आलोचना का प्रादुर्भाव .... की आलोचना से हुआ।

(अ) काडवेल (ब) वर्डस्वथ (क) क्रोचे (ड) एडिसन

8) हिंदी में 'बिहारी सतसई' नामक कृति की आलोचना .... ने की है।

(अ) पं. पद्मसिंह शर्मा (ब) रामकुमार वर्मा (क) रामचंद्र शुक्ल (ड) नामवर सिंह

9) 'बिहारी और देव' की आलोचना .... आलोचना की कोटि में आती है।

(अ) व्याख्यात्मक (ब) मनोवैज्ञानिक (क) तुलनात्मक (ड) ऐतिहासिक

10) .... आलोचना में युगचेतना की पृष्ठभूमि को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया जाता है।

(अ) व्याख्यात्मक (ब) मनोवैज्ञानिक (क) तुलनात्मक (ड) ऐतिहासिक

11) निर्णायक आलोचना में आलोचक का दृष्टीकोन .... जैसा होता है।

(अ) मनोवैज्ञानिक (ब) डॉक्टर (क) न्यायाधीश (ड) शिक्षक

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. धातु – क्रिया का मूल रूप
2. उद्भृत – उत्पन्न
3. परिमार्जित – सुधरा या सुधरा हुआ, प्रशस्त
4. उपादान – प्राप्ति, मिलना
5. बुधजन – विद्वत जन
6. जिजीविषा – जीने की इच्छा
7. प्रभृति – इत्यादि, वगैरह
8. प्रतिभा – बुद्धि, समझ
9. छिद्रान्वेषी – दोष ढूंढनेवाला

10. उपसर्ग – वह उपशब्द जो किसी शब्द के पहले लगकर उसमें किसी अर्थ की विशेषता लाता है।

11. सौंदर्यबोध – कला के सूक्ष्म सौंदर्य का ज्ञान।

12. भौतिकवाद – यथार्थवाद

4.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. (अ) अनुसंधान	2. (ब) रिचर्ड्स	3. (अ) प्रगतिवादी	4. (ब) Comparative
5. (ड) विवेचन	6. (ब) मम्मट	7. (ड) एडिसन	8. (अ) पं.पद्मसिंह शर्मा
9. (क) तुलनात्मक	10. (ड) ऐतिहासिक	11. (क) न्यायाधीश	

4.7 सारांश :

- आलोचना के लिए हिंदी में अनेक शब्द प्रचलित हैं – विवेचना, समीक्षा, समालोचना आदि स्थूल दृष्टि से इन तीनों शब्दों को समानार्थक कहा जा सकता है किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखने से तीनों कुछ अपना अलग–अलग अर्थ व्यंजित करते प्रतीत होते हैं।
- साहित्य के क्षेत्र में आलोचना से अभिप्राय है, किसी साहित्यिक कृति का सांगोपांग निरिक्षण । आलोचना के अंतर्गत किसी कृति का प्रभाव, आस्वाद, उसकी व्याख्या और उसका शास्त्रीय तथा नैतिक मूल्यांकन आदि सभी बाते आ जाती हैं।
- कुछ लोग रचनात्मक साहित्य के अतिरिक्त साहित्य से संबधित अन्य समस्त बातों को आलोचना का हिस्सा समझते हैं। वे अनुसंधान, काव्य का इतिहास और काव्यशास्त्र एवं कव्यसिद्धांतों को भी आलोचना के अंतर्गत सम्मिलित करते हैं। परंतु आलोचना का स्वरूप इनसे भिन्न है।
- आलोचना की परिभाषाओं का ध्यान से अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि विद्वानों ने आलोचना संबंधी अपने दृष्टिकोणों के अनुरूप ही उसके स्वरूप की व्याख्या की है।
- एक सफल समालोचक होने के लिए आलोचक के व्यक्तित्व में – सह्रदयता, विस्तृत ज्ञान, प्रतिभा, अंतरदृष्टि, निष्पक्षता, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति, दार्शनिक वृत्ति, शिक्षा, व्यक्तित्व, सहानुभूति, प्रेषणीयता, युग–विधान की शक्ति, औचत्य ज्ञान, छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति, निर्णयात्मक शक्ति आदि सभी गुणों का होना अनिवार्य है। साथ ही आलोचक में कुछ तो स्वभावगत शक्तियाँ और विशेषताएँ होनी चाहिए और कुछ अभ्यासमूलक और प्रयत्नज विशेषताएँ होनी चाहिए।
- निर्णयात्मक आलोचना, समाजशास्त्रीय आलोचना के सामान निश्चित नियमों के पालन में विश्वास करती है और निश्चित कसौटी पर कसी जाती है। तुलनात्मक मूल्य निर्धारण ही तुलनात्मक आलोचना का लक्ष्य होता है। जब किसी कृति की आलोचना कृतिकार की युगीन परिस्थितियों के पारिप्रेक्ष्य में की जाती है, तब उसे ऐतिहासिक आलोचना की संज्ञा दी जाती है।

4.8 स्वाध्याय :

निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिए।

1. आलोचना का स्वरूप 2. समाजशास्त्रीय आलोचना

3. तुलनात्मक आलोचना 4. निर्णयात्मक आलोचना

5. ऐतिहासिक आलोचना 6. आलोचक के गुण

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

- विभिन्न समिक्षकों की समीक्षाओं का अध्ययन कीजिए और देखिए कि उन्होंने किन किन समीक्षा पद्धतियों का उपयोग किया है?
- हिंदी के किसी ग्रंथ को पढ़कर उसकी समीक्षा करने का प्रयास कीजिए।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) काव्यशास्त्र - डॉ. भागीरथ मिश्र
2) शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत - डॉ. गोविंद त्रिगुणायत
3) भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. कृष्णदेव झारी
4) काव्य के रूप - बाबू गुलाबराय
5) भारतीय काव्यशास्त्र - डॉ. मानवेंद्र पाठक
6) भारतीय साहित्यशास्त्र - डॉ. बलदेव उपाध्याय
7) साहित्यशास्त्र - डॉ. चंद्रभान सोनवणे
8) भारतीय काव्यशास्त्र - डॉ. योगेंद्र प्रताप सिंह
9) हिंदी आलोचना के बीज शब्द - डॉ. बच्चन सिंह
10) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. त्रिलोकनाथ श्रीवास्तव, डॉ. गंगासहाय प्रेमी

❑❑❑